कामयोग द्वारा आत्ममुक्ति
भाग द्वितीय
थलचर
जलचर
से मुक्ति के
कामक्षेत्र के
साधन
नभचर
मनुष्ययोनि
सहज उपाय

गुरुदेव अर्पण शिष्य

ॐ

सुधिजन ! चुको मत !

यह महानतम्, मानव योनि तुम्हें मुफ्त में नहीं मिली है ! जन्मों-जन्मों के योनिगत चक्रवात को झेलकर, लाखो वर्ष बाद- ऋषितुल्य, देवतुल्य स्वरूप प्राप्त करने हेतु संस्कारवान माता-पिता का कोख एवं स्वरूप तुम्हें मिला है। जहाँ इस मानव योनि के यंत्रवत् शरीर में तुम्हें कुण्डलिनी शक्ति, ईश्वर हो जाने के स्वरूप में प्राप्त है! यह गाड़ी, बंगला, प्रेम अह्लादित पत्नी, उच्च गरिमा प्राप्त करने हेतु पुत्र-पुत्री का वरदान, तुम्हे इस संस्कारवान मानव योनि को कृतार्थ करने हेतु प्राप्त है !

सम्भलो ! इस ईश्वरीय वरदान को बर्बाद मत जाने दो ! समागम के काम-क्रीड़ा के ईश्वरीय वरदान को, काम-कामेश्वरी के देवालय में स्थापित कर, उच्च संस्कारवान समाज की नींव डालो !

ध्रुव

सप्रेम भेंट
आदरणीय प्रणव पाण्ड्या

२९/३/२५ II
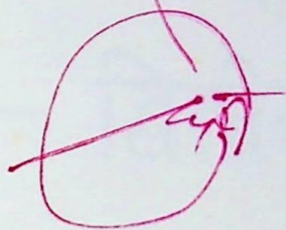
कामयोग द्वारा आत्ममुक्ति
भाग - द्वितीय

कुण्डलिनी जागरण आधार है
प्राणशक्ति एवं सम्मोहन
भाग-द्वितीय

कामवासना ईश्वरीय मूलकेन्द्र
इस प्रकृति के मैथुनी जगत में कामरूपा
शक्ति का प्राण ऊर्जा का गमन प्राणवायु द्वारा हम मानव प्राप्त कर,
एक प्रकृति पुरूष बनें !
थलचर, जलचर, नभचर के योनिगत चक्रवात से
मुक्त होकर अवतारीय नर-नारी का स्वरूप पकड़ें !

ध्रुव नारायण

कामयोग द्वारा आत्ममुक्ति
भाग - द्वितीय

सचित्र वर्णन

कुण्डलिनी जागरण आधार है
प्राणशक्ति एवं सम्मोहन
भाग - द्वितीय

प्रकाशन : प्राप्ति

सुरभि प्रकाशन

इन्टरनेशनल

मो०+पो०-बहेड़ी, जिला-दरभंगा (बिहार)

पिन-847105

दूरभाष–(06272) 283232

मो0–09473066260 ध्रुव

09234579759

Email-surabhiprakashan@gmali.com

I.S.B.N. No-978-81-923274-0-2

न्याय क्षेत्र दरभंगा (बिहार)

प्रथम संस्करण 2013

मूल्य : 350/-

कम्प्यूटरीकृत पृष्ट सज्जा :

माणिक

चन्दन प्रिन्टर्स, कटिहार

मो०-8298963515

सहयोग : सिंकू

कटिहार प्रिंटिंग प्रेस, कटिहार

कम्प्यूटरीकृत चित्र सज्जा :

चन्दन-राजीव

आर० के० स्टूडियो, बहेड़ी

मुद्रक :

प्रीतिका आफसेट प्रिन्टर्स, न्यू दिल्ली

मो0- 09810546567

पाठकों

प्रिय पाठक !

हमारा नैसर्गिक पारिवारिक परिवेश, मैथुनात्मक सृष्टि में चौरासी लाख योनि के मूलबिन्दु पर है। जहाँ हमें थलचर, जलचर एवं नभचर योनियों से मुक्ति के लिए कुण्डलिनी शक्ति दी गयी है।

आज हमारे कई संत आर्ट आफ लिभिंग से प्रेम थपकी, पातंजलि योग पद्धति से स्वास्थ्य थपकी एवं भक्ति भावना से ओतप्रोत, भाव थपकी दे रहे हैं।

लेकिन यह पुस्तक इन संतों के इन थपकी (थेरापी) योग के समन्वय बिन्दु पर, काम थपकी (थेरापी) के रूप में प्रेम, योग, भक्ति, स्वास्थ एवं काम-कामेश्वरी के मनका रूपी माला का पुष्पमाल्य स्वरूप में आत्मगति पाने के स्वरूप में लिखी गयी है।

जहाँ से हम मनुष्य योनि के ताप से भी निकल, ऋषि योनि एवं देवत्व योनि प्राप्तकर, अर्द्धनारीश्वर के शिव-शक्ति स्वरूप में ईश्वरीय स्वरूप प्राप्त कर सकते हैं।

जिस काम को हम वासनात्मक, धृर्णात्मक दावानल में जलाकर कर्मबंधन की श्रृंखला कायम कर रहे हैं, वही हमारे अधोगति की योनि से मुक्ति का कारण है।

द्वैत ही हमारे अद्वैत में प्रवेश का मुक्तिदायक मार्ग है। जो हमारे दाम्पत्य जीवन के प्रेममय भावदशा का स्वरूप है।

घृणा, द्वेष, अहंकार, मोह को अपने दाम्पत्य जीवन के प्रेमरस में डूबो, इस काम कामेश्वरी की उन्मुक्त, उद्धाम, सहजता की भावदशा में प्रेम और आस्था का स्वरूप पकड़, ईश्वरीय मूल का केन्द्रक बनें!

भर डालें अपने राष्ट्र को !

अमृतमय जीवन से सरावोर, नर-नारी के अद्वितीय प्रतिभा से उत्पन्न

आत्मप्रकाश से !

लेखक

ध्रुव

अनुक्रमणिका

क्र०	विषय का नाम	पृष्ठ सं०

शैक्षणिक प्रकरण

शैक्षणिक उद्धरण एवं कविता

शुभाशंसा

गुरु कृपा प्राप्त साधक-शिरोमणि श्री ध्रुव नारायण जी द्वारा विरचित यह ग्रन्थ अत्यन्त पठनीय है । इसके अवलोकन से मैं स्वयं को धन्य मानते हुये लेखक को धन्यवाद देना चाहता हूँ, कि इन्होंने इसकी समीक्षा का सुअवसर मुझे प्रदान किया।

गुरु कृपा के अहोभाव से ओत-प्रोत होकर श्री ध्रुव नारायण जी ने स्वानुभूत तथ्यों को सुन्दर सरल दृष्टान्तों से समझा कर गम्भीर सिद्धान्तों का प्रतिपादन बड़े ही अनूठे ढंग से किया है । इष्ट के प्रति भाव की प्रवलता साधक के लिये कितना आवश्यक है, इस तथ्य को समझाने के लिये आपने यह दृष्टान्त प्रस्तुत किया कि "घर के सभी नलों को एक साथ खोल देने पर पानी के प्रवाह में तीव्रता की कमी हो जायेगी!" ठीक इसी प्रकार अपने भाव को गुरु के प्रति पिरोये बिना इसे विभिन्न विषयों से जोड़कर अपेक्षित परिणाम प्राप्त करने में देरी और दूरी की सम्भावना बनी रहेगी ।

तंत्रविद्या के सिद्धान्तों एवं शब्दावलियों का प्रयोग करते हुये भी लेखक तांत्रिक या मांत्रिक बनने-बनाने की युक्ति नहीं देते ! अपितु अपने पाठकों को कृष्ण, महावीर, बुद्ध, कबीर, मीरा, चैतन्य, रामकृष्ण परमहंस तथा विवेकानन्द सरीखे मानवता की मुकुट मणियों की चेतना के स्तर से, एक रूप करने की युक्ति बतलाते हैं । इस युक्ति में गृहत्याग नहीं अपितु गृहस्थाश्रम को ही सफलता का द्वार सिद्ध किया गया है ।

जिस युक्ति से सोलह हजार एक सौ आठ पत्नियों के साथ रहकर भी कृष्ण बने योगेश्वर सन्यासियों के अग्र पूजा के प्रिय पात्र बनते रहे ! हम भी वैसी ही नर से नारायण बने! राजा जनक अपनी पत्नी के स्तन पर हाथ रखकर भी, की गई साधना से विदेह की अवस्था को सदेह ही प्राप्त कर लिया! उस युक्ति को वैज्ञानिक एवं तार्किक विवेचन से जन-जन को श्रेष्ठ भावदशा में प्रतिष्ठित कर शिव-शक्ति सायुज्य को साकार करना ही लेखक के प्रयत्न का अथ एवं इति है ।

ग्रन्थ के आमुख में ही अपने पाठकों को अन्धानुकरण से बचकर आगे बढ़ते रहने की सत्प्रेरणा प्रदान करते हुये लेखक ने उनकी मौलिकता का बखूबी बोध कराया है । लेखक के ही शब्दों में "हम राम, कृष्ण के अवतारीय स्वरूप में उच्चतम यात्रा शुरू कर सकते हैं ! " चौरासी लाख योनियों के मध्य में खड़े मनुष्यों को ऊपर

की श्रेष्ठ योनियों में प्रवेश करने की पात्रता प्राप्त करने का पुनः-पुनः स्मारण करा कर, लेखक ने उपनिषद् के ऋषियों की शैली में जैसा आह्वाहन किया है; वह देखते ही बनता है- ''उठो! सम्हलो! प्रकृति प्रदत्त अपने उपादान को समझो और ब्यालिस लाख निकृष्ट योनियों की शृखंला को छोड़कर व्यालिस लाख ऊपर की योनियों की यात्रा पर निकल पड़ो !''

अपने पाठकों की पातंज्जलि प्रतिपादित मुदिता की अंजलि मात्र का आकांक्षी, इस लेख में, लेखक ने काम कामेश्वरी की अर्चना से कुण्डलिनी जागरण के लोमहर्षी और अमृतवर्षी प्रयोग में ब्रह्मचर्य व्रत की अनदेखी नहीं की है ।

उन्होंने मनसा, वाचा, कर्मणा में रहकर कम से कम छह माह के कठोर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन पति-पत्नी को साथ रहकर करने का निर्देश देते हुये ही कम से कम 20 वर्ष की पत्नी और 25 वर्षीय पति; काम क्रीड़ा के द्वारा अपनी महत्तम सम्भावना के द्वार को खोलें- कुण्डलिनी को जागृत कर ऋणात्मक ध्रुव से परम पुरुषार्थ को प्राप्त करें । महावीर, बुद्ध सरीखे महामना ने घनात्मक ध्रुव से जो प्राप्त किया; उसे गृहस्थ धर्म में रहकर ही उपार्जित करने के लिये लेखकीय निष्कर्ष को समुद्र मन्थन के चौदह रत्नों से भी समझाने का यत्न किया गया है ।

स्वयं शिव शक्ति स्वरूपा काली के एक चरण मूलाधार तो दूसरा चरण अनाहत पर पड़ रहे हैं । शिवा के शंकर के तात्पर्य को समझाते हुये कहा गया है कि काली के दोनों पैर में सर्प के लिपटे शृंगार का अर्थ है, मूलाधार की सर्पिणी का ब्रह्मचक्र के सर्प से मिलन की उत्सुकता । काली के विभिन्न उपादानों के आध्यात्मिक तात्पर्य को स्पष्ट कर लेखक ने इस संबंध में मेरे विचार को भी समृद्ध कर दिया है ।

सृष्टि विज्ञान के अन्तर्गत रहस्य के आध्यात्मिक भावभूमि पर लेखक द्वारा प्रस्तुत प्रायोगिक निष्कर्ष को अंतिम सत्य के रूप में स्वीकार करने में भले ही विमति हो; पर सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम, के साँचे में कामशक्ति को ढालकर गार्हस्थ्य को नाटकीय बनाने से बचाने में, लेखकीय युक्ति निश्चय ही कारगर सिद्ध होगी; इसमें कोई संदेह नहीं ! इतने मात्र से ही इस पुस्तक के अस्तित्व में आने का औचित्य सुसिद्ध हो जाता है ।

पुस्तक का प्रत्येक पृष्ठ न केवल पठनीय है! अपितु गागर में सागर के

कहावत को चरितार्थ करते हुये, प्रत्येक पाठकों के लिये मननीय भी है ।

हस्त मुद्रा सम्बन्धी चिकित्सा की चर्चा से मैं इतना अभिभूत हुआ हूँ कि इसके लाभ को आजमा कर इसका भरपूर प्रचार अपने भागवत श्रोताओं एवं छात्रों के बीच करने का मन बना लिया है । ज्ञान मुद्रा से लेकर प्राण मुद्रा तक महज हाथों की अंगुलियों के विविध विन्यास से नाना प्रकार के रोगों में जिन-जिन लाभों को गिनाया गया है, वे ऋषिशोध निष्पन्न हैं । अतएव बिना किसी प्रत्यवाय (रियक्सन) के सर्वजन द्वारा स्वयं करने योग्य है।

पौराणिक तथ्यों के रस-रहस्य को वैज्ञानिक विवेचनों से समझाने में पुस्तककार का प्रयास सराहनीय है । मुख्य मस्तिष्क (सेरिब्रम) की संरचना को समझाते हुये आप लिखते हैं कि "यमराज का चित्रगुप्त कहीं नहीं बैठा है । आपका न्यूरान सेल ही आपका चित्रगुप्त है ।" उल्लेखनीय है कि सात करोड़ न्यूरॉन सेल जो गाढा सा सेरब्रेटा नामक तरल पदार्थ में होता है । जो मस्तिष्क के संरेब्रल कैभिटी में भरा होता है ।

गीतोक्त साम्यावस्था की महत्ता का प्रतिपादन लेखक से कई स्थलों पर अपने विचारों को सिद्ध करने के लिये किया है । इसी क्रम में इनका यह उद्‌गार सर्वथा द्रष्टव्य है-

"यही साम्यावस्था मन की स्थिति को चित्त की स्थिति में बदल कर आत्मस्थिति में ले आती है ।" पाँच हजार न्यूरान सेल प्रतिदिन टूटकर अमृत का एक बूंद बन जाता है तथा कंठ के ऊपर स्थित ललना चक्र पर गिरता है, जो आज्ञा चक्र के नीचे है । जब प्रगाढ निद्रा में मन शुद्ध साम्यावस्था में होता है; तभी यह अमृत क्षरण होता है । जो पूरे दिन हमें नई जीवनी शक्ति और ताजगी से ओत-प्रोत रखती है ।

इस पुस्तक के पाठकों को बिल्कुल साधारण भाषा में असाधारण ज्ञान के अनेक सूत्र सरलता से प्राप्त होंगे । बानगी के तौर पर आज्ञा चक्र की साधना से संकल्पशक्ति के सम्बर्द्धन की कला के रस रहस्य को खोलते हुये लेखक ने आज्ञा चक्र को मन का सिंहासन बताया है ।

मन को साम्यावस्था में लाने के लिये आज्ञाचक्र पर ध्यान करने से एक ऐसी स्थिति आती है कि मन मित्रवत् शान्त सहयोगी बन जाता है ।

ऐसा होते ही हमारा तीसरा नेत्र खुल जाता है । वह बन्द नेत्रों से भी विश्व ब्रह्माण्ड के सभी तत्वों का साक्षी हो जाता है । वह जिन दृश्यों को देखने की इच्छा करे, देख लेते हैं । उस साधक का संकल्प बल इतना समृद्ध हो जाता है कि उसके दिये वरदान या शाप निरर्थक नहीं होते ।

जब तीसरा नेत्र खुलता है, तो उससे नीला प्रकाश निकलने लगता है । यह कौस्तुम मणि के प्रकाश के समान होता है । तिब्बती लामा गुरु इस तीसरे नेत्र को आपरेशन द्वारा भी खोल देते हैं । यदि साधक कम से कम सात वर्षों तक यह साधना कर लिया हो ।

कर्मफल सिद्धान्त के काट के रूप में कुण्डलिनी जागरण ही एक मात्र उपाय बतलाते हुये; श्री ध्रुव नारायण जी लिखते है, कि सामान्यतः मनुष्य के ऊर्जा का प्रवाह निम्नगामी है । किन्तु यदि वह पुस्तक द्वारा निर्दिष्ट प्रक्रिया से अपनी ऊर्जा को ऊर्ध्वगामी बना लें! तो उसके सारे कर्मबन्धन क्षण में शिथिल हो सकते हैं । कुण्डलिनी गति को प्रकाश से भी तीव्रतर बताया गया है । लेखक ने मानव काया को दो भागों में बाँटा है-

(1) काम क्षेत्र (आधा नाभिचक्र तक)

(2) ज्ञान क्षेत्र (राम क्षेत्र, आधे नाभि चक्र से सहस्त्रार तक)

वस्तुतः पुस्तक का प्रत्येक पृष्ठ प्रकाश क्षेत्र बन गया है जिससे पाठक के अज्ञानान्धकार तिरोहित होते चले जाते हैं ।

मैं सुधी पाठकों से इसके प्रत्येक पंक्ति को सावधनीपूर्वक पढ़ने का परामर्श देता हूँ ताकि वे सभी मंत्रों से अचकर मृत्युभय को हँसते हँसते पार कर ले-

''तमेव विदित्वा अपहाय मृत्योः । नान्यः पन्थाः विद्यते अयनाय ।।

अर्थात् स्वयं को सर्वांशतः जानकर ही मृत्यु को पार किया जा सकता है । इसके अतिरिक्त निर्भयता का कोई मार्ग नहीं । एतदर्थ लेखकीय प्रयास सर्वथा स्तुत्य एवं दिव्य है ।

जयशंकर झा
(डॉ० जय शंकर झा)
रीडर, स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग
ल० ना० मिथिला विश्वविद्यालय,
दरभंगा - 846004
न्यासी, माँ श्यामा मंदिर न्यास समिति
दरभंगा
मो०: +919431405360

दो शब्द

यह पुस्तक, भोगवाद से तृप्त होकर कुण्डलिनी जागरण के व्यावहारिक ज्ञान को तो दर्शाती ही है, साथ ही साथ हमारी मानवीय काया के अपरमित प्राण शक्ति की प्राण ऊर्जा को नियंत्रित करने के संकेत भी करती है। कैसे हम समाज का विशिष्ट अंग हो एवं समाज कल्याण कर सकें ! इसका भी व्यवहारिक एवं प्रयोगात्मक ज्ञान, प्राण शक्ति एवं सम्मोहन की गहराई का प्रस्तुतिकरण इस पुस्तक में है।

हमारी प्राण ऊर्जा इस स्थूल शरीर में संचारित है, जो पंचतत्व निर्मित है। जो अंतरिक्ष, जल, अग्नि, आकाश और वायु के संयोग में बना है। वह तो प्राण शक्ति के ही केन्द्रीभूत ऊर्जा का संकलन है। ये लाखों योनिओं का चक्रवात भी प्राण शक्ति के नियंत्रण में है। यह प्राण शक्ति मनुष्य के चौथे शरीर में स्थित है। जो नाभिचक्र से तीन अंगुल ऊपर सुषुम्ना नाड़ी के दाहिने भाग, सूर्यचक्र के रूप में, पूरे शरीर से अंतरिक्ष तक का नियंत्रण रखे हुए है।

षट्चक्रों की साधना में प्राण शक्ति ही कुण्डलिनी को, आत्मस्वरूपा लक्ष्मी, एवं ब्रह्मरंध्र पर शेषनाग रूपी सर्प एवं कुण्डलिनी रूपी सर्पनी को, एकाकार कर अर्द्धनारीश्वर का स्वरूप दे देती है।

यही प्राण शक्ति जब आज्ञा चक्र पर बैठे चेतन, अवचेतन मन द्वारा केन्द्रीभूत हो बहिर्गमन करती है, तो किसी भी प्राणी के चेतन मन को सुलाकर अवचेतन मन को अपने प्रभाव क्षेत्र में ले आती है और अगला प्राणी मनुष्य हो या पशु-पक्षी, साधक की अवज्ञा नहीं कर सकते! उनके सम्मोहन क्षेत्र से सम्मोहनकर्ता के आदेश बगैर बाहर नहीं निकल सकते!

साधक अपने साधना के बल पर कुण्डलिनी जागरण द्वारा, जब प्राण ऊर्जा को उर्ध्वगति दे देता है, तो केन्द्रीत प्राण ऊर्जा हाथ एवं मानसिक गति से, अगले रूग्न प्राणी के मन के व्यतिरेक पर आघात कर, उसे पूर्ण स्वस्थ कर देता है। हमारा हस्ताक्षर भी इसी प्राण ऊर्जा का अलग कम्पन्न क्षेत्र बनाने के कारण, एक जैसा नहीं मिलता।

हमारे सामने बैठे गुरूदेव भी स्थूल शरीर के यांत्रिक रूप में, हमसे कोई अलग-थलग नही हैं। वे भी भोजन करते हैं, परिवार में रहते हुए कर्त्तव्य का निर्वाहन करते हैं।

लेकिन क्या स्वरूप है?

जो जनसमूह उनके आगे नतमस्तक होने को आतुर रहता है?

यह उनकी प्राण ऊर्जा ही है, जो कई जन्मों के शोध से अति विकसित रूप में उनके शारीरिक एवं मानसिक गति से विकिरण हो रहा है। जो अपने प्रभाव के विकिरण परिधि में हमारे मानसिक गति को भी शुद्ध करने का प्रयास कर रहा है।

हमें भी इसका भान होना चाहिए, कि गुरूदेव को भी राम-कृष्ण, गौतम, महावीर से ऊपर के प्राण क्षेत्र में जाना है। और हमें भी उनसे ऊपर की प्राण ऊर्जा का व्योम पकड़ना है।

ब्रह्माण्ड की सारी ऊर्जा का पूर्ण कम्पन्न क्षेत्र का नियंत्रण प्रत्येक जागृत मानव में है। जो कुण्डलिनी जागरण द्वारा उर्ध्वगति पकड़ लेने से, हमें नर से नारायण बना रही है।

इसलिए बन्धुओं !

उठो! जागो!

समझो अपनी प्राण शक्ति को !

कुण्डलिनी जागरण, प्राण शक्ति एवं सम्मोहन के उर्ध्वगमन के सिद्धान्त को समझ, एक आचरणवान साधक का प्राकृतिक स्वरूप पकड़,

बना डोलो !

राष्ट्र को देवताओं के आनन्दमय स्वरूप का आंगन!

जहां दया, प्रेम, आस्था और विश्वास का क्षीर सागर हो! हो जाओ अपने ब्रह्मरंध्र पर केन्द्रीत होकर पालनकर्ता विष्णु स्वरुपा!

आत्म निवेदक

ध्रुव

रव9/324॥

पत्र

बाबा साहब

चरणस्पर्श।

यह पुस्तक 40 प्रतिशत काम ऊर्जा, 30 प्रतिशत प्राण ऊर्जा, 20 प्रतिशत विज्ञान के सूत्र से मनुष्य के जीवन का प्रतिपादन एवं 10 प्रतिशत ऋषि-मुनियों, की तपचर्या का विषय जान लिखी गयी है। सारे सूत्र तो ऋषि-मुनियों, वैज्ञानिक एवं महामना के द्वारा ही कालान्तर में, बराबर प्रायोगिक एवं भावनात्मक रूप से प्रस्तुत किये गये। प्रकृति तो नियमबद्ध है।

लेकिन सूत्र हमेशा बनता मिटता रहा एवं युग और काल परिवर्तन होते-होते, हमेशा किसी न किसी प्राकृतिक सूत्र को पकड़कर, समाज और प्राणीमात्र के कल्याण एवं विनाश का कारण बनता रहा।

परमात्मा की रूचि हमेशा नियमवद्धता में है। व्यक्ति पक्षपाती हो सकता है। लेकिन शक्ति सर्वदा निष्पक्ष होता है। निष्पक्षता तो उसकी रूचि है। परमात्मा, व्यक्ति में निहित का नाम है। परमात्मा, शाश्वत नियमानुसार अविराम एवं अविरल गतिमान है! एवं यही तो धर्म है!

अणु और परमाणु का प्रयोग तो महाभारत काल में बहुत प्रखरता से किया गया। लेकिन उनका आधार आध्यात्मिक था और मनशा, वाचा, कर्मना का नियंत्रित, एकाग्रता और सहजता का प्रतिफल था।

वही प्रयोग जब आईन्सटीन के परमाणु विखंडन एवं क्वान्टम के सिद्धान्त में प्रतिपादित किया गया, तो विश्व के समाज में एक क्रान्ति पैदा हो गयी। इस परमाणु युग में अगर परमाणु विखंडन से शान्ति के कार्य लिए जाते हैं, तो आज विश्व विनाश के कगार पर भी खड़ा है।

पहले भी परमाणु के प्रयोग ध्यान के केन्द्रीभूत ऊर्जा से संकलित ऊर्जा का प्रयोग कर, ध्वंस एवं शान्ति के कार्य किये गये। आज भी परमाणु को नंगी आँखों से नहीं देखा जा सकता है। सिद्धान्त के प्राकृतिक सूत्र से ही, भौतिकवादी तरीके से परमाणु विखंडन का कार्य किया जाता है।

उसी तरह इन तीनों भाग सैद्धान्तिक एवं प्रायोगिक पुस्तक में आईन्सटीन के परमाणु विखंडन की तरह, मानवीय शक्ति के काम स्रोत, एवं प्राण स्रोत के

सफलतम सैद्धान्ति एवं प्रायोगिक रूप को, समझाने का प्रयास किया गया है।

अपने विद्वान मित्रों एवं पढ़े-लिखे समाज में हेडिंग की चर्चा एवं पुस्तक पढ़ा कर उनकी अभिव्यक्ति जाननी चाही! तो ऐसा महसूस हुआ, कि कुण्डलिनी जागरण के बारे में हजार में कोई एक इसके शब्दावली से परिचित है। साधक तो कोई मिले नहीं! हो सकता है, लाखों साधक में कोई एक हों!

क्योंकि साधना के तो विभिन्न मार्ग हैं। लेकिन हेडिंग के दूसरे पंक्ति ''द्वारा है गृहस्थी'' से तो विश्व की मानव जाति, प्रायोगिक एवं भावनात्मक रूप से जरूर परिचित है।

लोलुप समाज इस प्राण ऊर्जा की अधोगति स्वरूप को जान, सृष्टि संचालन का मशाल जरूर थामे हुए है! लेकिन इसकी उर्ध्वगति की सारी सम्भावनाओं से मुख मोड़ लिया है। केवल शान्ति का आनन्ददायक आधार मान जीवन शैली को बिल्कुल भौतिकवादी कर लिया है।

जबकि इस काम ऊर्जा का प्राण ऊर्जा में परिवर्तन ही, हमें उर्ध्वगति की बिस्तृत योनियों के श्रृंखलावत् आत्मस्वरूपा होने के स्वरूप को दर्शाता है।

विष ही विष की औषधि है। सर्पदंश के विष का, अचूक इलाज, सर्प का विष ही है। उसी तरह इस कामांध और वासना में लिप्त समाज के सामने गृहस्थी सम्हालते, संवारते हुए, कैसे हम थलचर, जलचर, नभचर के अधोगति योनियों से मुक्त हो जायें, इसका प्रायोगिक एवं सैद्धान्तिक तथा क्रियारूप इस पुस्तक में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

पत्नीरूपा भैरवी के सम्मानित प्रेम, आस्था और विश्वास की अनन्त परिधि को जान, कैसे हम राधा-कृष्ण, सीता-राम और पार्वती-शंकर की अवर्चनियाँ अवस्था को प्राप्त कर लें! उसी का सिद्धान्त काम ऊर्जा एवं प्राण ऊर्जा के संकलन के रूप में दर्शाने का प्रयास किया गया है।

हम पुस्तकालय के हजारों पुस्तकों को मानवीय समय में हजारों दिन और घंटा में पढ़ सकते हैं। कोई देश-विदेश जाने के लिए यांत्रिक विधि से दस-बीस घंटे तो लगेंगे ही।

लेकिन जब हम कुण्डलिनी जागरण के सप्त आयामी क्षेत्र में आते हैं, तो

इस समय और घंटा का कोई महत्व नहीं रह जाता है। एक पल के हजार वें भाग में भी कोई अवर्चनिय सिद्धान्त को प्रतिपादित किया जा सकता है। स्वीच दबाने के एहसास से पहले हम अंतरिक्ष के किसी कोने में मनःशक्ति से आत्मशक्ति के रूपान्तरण में पहुँच सकते हैं।

आज दूरदर्शन, मोबाइल एवं कम्प्यूटर ने विश्व के सारे घेरे को छोटा कर दिया है। लेकिन हम जब कुण्डलिनी जागरण की उपलब्धि मनस शरीर, जो मनुष्य का स्वगृह है, वहाँ से ऊपर अनाहत में पहुँच जाते हैं। तो इस ब्रह्माण्ड का घेरा भी छोटा पड़ने लग जाता है। ब्रह्माण्ड का पुस्तकालय भी, जागृत मानव के आत्म शरीर के रूप में प्रवेश करने पर, छोटा पर जाता है।

जागृत पुरूष में मूर्ख कालीदास का नाम आता है। जिसने रात भर में ही सारा पुस्तकालय का अध्ययन कर, वे एक विद्वान पुरूष के रूप में समाज में उपस्थित हो, सम्मानित किये गये! तुलसीदास में, पत्नी प्रेम का रूपान्तरण ही, उन्हें गोस्वामी तुलसीदास बना दिया।

नाम की समीक्षा के लिए हम ऊहा पोह में रहते हैं। लेकिन नाम तो इस भौतिकवादी युग के सम्बोधन की शब्दावली है। हम उन्हीं साधु-संतों, ऋषि-मुनियों, वैज्ञानिकों का नाम अमरता में जोड़ते हैं ।

जिन्होंने अवतरित पुरूष का मानवीय स्वरूप हमारे सामने उपस्थित किया! अपने विचार क्रान्ति की मशाल को जलाने में अपना बलिदान दिया या सूली पर चढ़ाये गये। लेकिन वे इस समाज को कुछ देकर ही, अपनी यात्रा उर्ध्वगति की योनियों में कर, नाम की श्रृंखला से बहुत ऊपर चले गये !

एक सम्राट की शैक्षणिक कहानी आती है कि, जब मृत्यु प्राप्त कर सम्राट गर्व से स्वर्ग के द्वार पर गये, तो स्वर्ग के द्वारपाल ने रोका और कहा कि "सामने फैले पहाड़ी पर वे अपने सम्राट होने का हस्ताक्षर कर आये!

फिर स्वर्ग में उन्हें प्रवेश मिलेगा!" सम्राट खरिया लेकर हस्ताक्षर करने उस हजारों मील में फैले लम्बी पहाड़ी पर हस्ताक्षर का जगह ढूंढते रहे, तो बड़ी मुश्किल से एक छोटा स्थान हस्ताक्षर के लिए मिला।

इसलिए "बाबा साहब"

जब ज्ञान की जलती मशाल हाथ में आ जाती है !

तो नामकरण की श्रृंखला के साथ,

धन-वैभव की चाहत भी पीछे छूटने लगती है।

हजार रूपये का नोट तो कागज का ही एक टुकड़ा है। लेकिन विनिमय क्षमता के कारण वह मनुष्य के जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग हो जाता है। उसी तरह मानव जीवन का जागृत अंश, ही समाज कल्याण एवं ईश्वरीय स्वरूप का प्रतीकात्मक रूप है।

प्रयोगात्मक रूप में "कुण्डलिनी जागरण द्वार है गृहस्थी" भाग- प्रथम एवं "कुण्डलिनी जागरण आधार है प्राणशक्ति एवं सम्मोहन" भाग- द्वितीय एवं "कुण्डलिनी जागरण उपहार है दिव्य भावदशा" भाग- तृतीय के रूप में !

आपके सामने प्रस्तुतिकरण, इस अकिंचन का क्रान्तिकारी कदम है !

शिष्य

ध्रुव

वासना

इस यंत्रबत् शरीर को चलाने के लिए वासना शरीर , जो सूक्ष्म शरीर की ही प्रतिछाया है, पूर्ण ऊर्जास्रोत का उत्तरदायी है।हमारा आरोमंडल काम, क्रोध, लोभ, मोह के व्यात्तिक्रमण का बर्तुत लिए मुखमंडल के चारो ओर परिधिगत विकिरण के स्वरूप में प्रतिभाषित होता रहता है। वासना शरीर की ही प्रतिक्रिया, बचपन जवानी, बुढ़ापा है।

युवा में वासना - जाग्रत अवस्था में

बुढ़ापा में - स्वप्नवत् वासना भुलकड़ की प्रवृत में

मृत्यु में - सुषुप्ति अवस्था में होती है, लेकिन वासना तो साथ ही जाती है। जो प्रेतयोनी में सूक्ष्म शरीर में स्थिर रहकर नर्क और स्वर्ग भोग का एहसास अपने बीते कर्मबंधन के अनुरूप देती रहती है। नया जन्म भी सुषुप्ति में होता है। इसलिए अगर मृत्यु होश पूर्वक हो, तो जन्म भी होशपूर्वक होगा। उर्ध्वगति से मनुष्ययोनि की गरिमा को पार करते हुए, मेरा ओरामंडल सुनहला उजला का समिक्रण लेकर विश्वस्तरीय हो जायगा।

निजता

प्रभू मुझे दे निजता का ज्ञान!

जब हम स्वयं में स्थापित होंगे, तो ! जब ही मेरा **'मैं'** मजबूत होगा। तो **'तू'** का अलग होना असंभव है। चूँकि किसी भी बिन्दु एवं परिस्थिति में ऋण एवं घन विद्युत अलग नही रह सकता है।

यही स्वरूप हमारें भक्ति और प्रेम का अमरत्व बिन्दु है।

इसलिए अगर हमें अपने निजता का बोध हो जाय, तो प्रभू जो ईश्वर स्वरूप में कण-कण में व्याप्त हैं, हमसे दूर कहाँ जा सकते हैं! हमारे प्रेम और भक्ति के परिधि में ही उनका स्वरूप है। हमारे "**स्व**" की स्थिति ही प्रभू के स्वयंभू के अहम् की स्थिति है। अतः "जो तुम हो, **वह मैं ही हूँ**"। इस उक्ती का कृष्ण का सम्बोधन, हमें निजता का बोध कराते हुए हमारे **'स्व'** की स्थिति में हैं।

कोई भी तथाकथित भगवान या महापुरूष अथवा विश्व का कोई भी मानव के शारीरिकी यांत्रिक विधि में, हमसे कभी भी-न बड़े थे! और न आज भी बड़े हैं!

जबकी इन सारी विभूतियों की केन्द्रीभूत ऊर्जा हमारे 'स्व' में समायी हुई है। जब हम अपने इस **'स्व'** की स्थिति को जान लेगें ! तो वही हमारी निजता है!

आकाश के तारे, नक्षत्र, ग्रह, उल्का पिण्ड स्वरूपा पिण्ड, अपना-अपना, अलग-अलग चुम्बकीय क्षेत्र एवं विद्युतिय क्षेत्र बनाये हुए है। लेकिन उनका केन्द्रीभूत ऊर्जा क्षेत्र का केन्द्र बिन्दु अपने अलग-अलग स्वरूप में भी, सबका अलग-अलग है। यही केन्द्रीभूत प्राण संचरण की ऊर्जा कम्पन्न गति-चेंतन, अचेतन स्वरूप में भी अपना स्वरूप पकड़ते हुए, उन्हें **'स्व'** की स्थिति में कायम कर नियंता की श्रेणी में डाले हुए है।

हम भी जब अपने 'स्व' की स्थिति में आत्मकेन्द्रीत होगें! तो निजता का बोध ही, हमें ईश्वरीय परिधि के कील में समाकर ईश्वर तुल्य कर देगा! हम अपने मालिकियत को समझ, पशु भावदशा से वीर भावदशा की श्रेणी में अपना अस्तित्व कायम कर पायेगें!

बस ! हमारे सोच का ही तो फर्क हैं! हमारी भावदशा से, हमारी दिशा बदल जायगी एवं दिशा का बदलाव ही, हमारे आन्तरिक दशा के बदलाव का कारण होगा!

भावदशा

हम अपनी साधना कर रहे होते हैं, तो गुरु के सूक्ष्म शरीर को अपने शरीर और हृदय गति में रखकर साधना करें तो गुरु की भावदशा में शीध्र चले आयगें। शरीर गुरु का हो या अपना यांत्रिक ही तो है!

सबों के सूक्ष्म शरीर में निवास करने वाली कारण शरीर से ही, प्रार्णाऊर्जा मिलती है। गुरु की साधना शरीर, अतिउच्च अवस्था में होने से सूक्ष्म शरीर काफी ऊर्जावान एवं सक्रिय रहता है। सूक्ष्म शरीर की आत्मगति प्रकाश की गति की तरह 1,86000 मील प्रति सेकेन्ड है।

लेकिन कुण्डलिनी जागृत गुरु की सूक्ष्म शरीर की गति 345000 मील प्रति सेकेन्ड हो सकती है। जो हमारे लिए क्षण-पलक का समय भी कुछ ज्यादा हो जायगा। इसलिए गुरु को अपने भावदशा में समाहित करने पर हम भी गुरु के भावदशा एवं ओरामंडल की परिधि में आ सकते हैं।

एकलब्य ने तो गुरु की प्रतिमा ही बनाकर शर साधना की एवं अर्जुन से भी बड़ा धुनर्धर हो गयें। व्यालिस लाख नीचे के योनि को स्वाँस प्रश्वाँस की जरूरत है। लेकिन ऊपर की व्यालिस लाख योनि तो प्रेतयोनी से प्रारम्भ होकर केवल पाँच प्राण के अणुओं से बनी होती है।

उनतक पहुँचने के लिए हमारी भावदशा ही प्रशस्त मार्ग है। हम अपने पितरों को भी अपनी भावदशा से ही श्रद्धांजलि देकर तृप्त कर सकते हैं। ईश्वर की भी भूख हमारी भावदशा में, आने पर ही शान्त होगी।

चूंकि उनके तरंगक्षेत्र में आने के लिए, हमारी भावनामय ध्यान की जरूरत है। हमारी भावना का उपादान ही, हमें सत्य, अहिंसा, क्षमा, प्रेम के उच्चतर शिखर से जोड़ेगा। भावना तो हृदय से ही उठेगी। लेकिन प्रवेश का मार्ग तो मूलाधार से ही है। जो षट्चक्र भेदन की श्रृंखला में नाभिकुण्ड की श्रृंखला तक कामक्षेत्र तक एवं वासना जगत से वासना शरीर द्वारा प्रवेश द्वार है।

स्त्रीयों में आकर्षण तो नैसर्गिक है लेकिन जिस तरह सूर्य से निकले सातो ग्रह, सूर्य के रंगों से रंग अलग-अलग लेता है। उसी तरह स्त्री के रूप का आकर्षण तो होता है! लेकिन कुण्डलिनी जाग्रत लोग उसमें माँ का रूप, काली, दुर्गा, सरस्वती का रूप ढूढ़ने लगते है।

कामवासना ईश्वरीय मूलकेन्द्र

पुस्तक में बराबर चर्चा कि गयी है की, जब-जब हममें काम वासना जागती है; तब-तब मूलाधार पर कुण्डल मारे सर्पनी की मुर्छा टूटती है । वह अपना फन उठा लेती है एवं अपना वासनात्मक तमस् स्वरूप पकड़, हमारी मानसिक चेतना की सारी ऊर्जा को केन्द्रीभूत कर लेती है। इसके कामात्मक वेग में मुर्छा टूटना प्राकृतिक सिद्धान्त है।

चूँकि ईश्वर को सृष्टि चलानी है। समागम से प्राप्त सुख की कामना में अपना चुम्बकत्व क्षेत्र खोते हुए, एक बार बिरक्ती की भावना हममें आ जाती है। जो चुम्बक्तव का आकर्षण था, वह विकर्षण में बदल जाता है ।

कुण्डलिनी रूपी सर्पनी, वीर्य रूपी अपना फेन उगल, मुर्छावस्था में आकर, अपना सिर अपने कुण्डल में छुपा लेती है एवं हमारे सूक्ष्म शरीर के सूक्ष्म तत्व में प्रवेश करने के सुषुम्ना मार्ग को बन्द कर देती है।

यह चुम्बकत्व केवल हम मानव में ही नहीं है! बल्कि सृष्टि के कण-कण में एलेक्ट्रॉन-प्रोटॉन के गति के कारण, सभी जीव-जन्तू एवं चेतन, अचेतन सबमें व्याप्त है।

पृथ्वी क्या !

सभी ग्रह, नक्षत्र एंव आकाषिय पिण्ड का अपना-अपना चुम्बकीय क्षेत्र है। जब ही गति या सूक्ष्म सें सूक्ष्म कम्पन्न तरंग होगा, तो उसका अपना चुम्बकीय क्षेत्र भी होगा एवं प्रकाश तरंग के रूप में विद्युत तरंग भी होगा!

चूँकि कम्पन्न ही तो, सृष्टि को मैथुनात्मक स्वरूप दिय हुए है! बैखरी वाणी, मध्यमा वाणी, पश्यन्ति वाणी, परा वाणी सब अपने कम्पन्न तरंग पर जलतंरग वाद्यय यंत्र की तरह अपने भारीय तत्व का स्वरूप बदलते हुए, अपना कम्पन्न तरंग बदल कर, ईश्वरीय स्वरूप ले लेता है। जो परा वाणी के विद्युत तरंग के प्रकाश तरंग में बदल जाने से अनन्तगामी हो जाता है।

हमारे शरीर के कोषा-कोषा में जीवाष्म है एवं सबका अपना-अपना चुम्बकत्व एवं विद्युतीय गति है। जब हम श्वॉसायाम, प्राणायाम की ध्यानावस्था में जाते हैं, तो हमारा कोषा-कोषा धनात्मक कार्वनडायऑक्साइड छोड़ते हुए ऋणात्मक ऑक्सीजन ग्रहण कर अपना चुम्बकत्व क्षेत्र बदल

लेता है। ऋण विद्युत एवं धन विद्युत के परस्पर आकर्षण में हमारे पूरे शरीर का चुम्बकत्व एक अलग शक्तिशाली परिधि बना लेता है।

दूरदर्शन, कम्प्यूटर, मोबाइल का स्वीच (बटन) दबाते ही हम चैनल (श्रृखला) पर केवल एक ही प्रोगाम देख पाते हैं। लेकिन उसके चारो तरफ, तार (वाइर) द्वारा प्रवाहित चुम्बकीय क्षेत्र से प्राप्त, ध्वनी प्रसारण एवं चित्र प्रसारण, विद्युतिय स्वरूप के ईथर कम्पन्न गति में, हमेशा लाखो, करोड़ों, वाद-संवाद को संजोये रहता है।

लेकिन हम जिस कम्पन्न पर स्वीच आन (बटन दबाते) करते हैं, उसी कम्पन्न का स्वर एवं चित्र हमारे यंत्र पर आता है।

उसी तरह हमारे आस-पास करोड़ों ध्वनियॉ एवं चित्र का आकर्षण-बिकर्षण क्षेत्र है। लेकिन हम अपने चुम्बकत्व क्षेत्र के विद्युतीय गति में ही किसी चित्र को देख पाते हैं या ध्वनि सुन पाते हैं।

इन चित्रों और ध्वनियों में भी हमारे कोषा-कोषा के समूह की तरह उनके आकार स्वरूप में बिन्दुबार-अणु-अणु, परमाणु-परमाणु का व्यवस्थित स्वरूप होता है। जो अपने कम्पन्न तरंग के समागम बिन्दु पर तरंगायित होकर अपना स्वरूप पकड़ लेता है।

इन्ही सिद्धांत के स्वरूप में हमारे मनिवियों ने देवभाषा के अक्षरब्रह्म के स्वरूप को जान संस्कृत के शब्द उच्चारण की शैली कायम की।

जिस तरह वैज्ञानिक आज-मोबाइल, दूरदर्शन, कपन्न तरंग एवं प्रकाश तरंग को जान, उसके समागम बिन्दु द्वारा, उपग्रह के नियंत्रण तक, अपने सैटेलाइट विज्ञान को परिष्कृत करते हुए, चॉद और मंगल ग्रह की यात्रा कर रहे हैं।

जितने अक्षर हैं, सब हमारे सूक्ष्म शरीर में अवस्थित षट्चक्र पर, कमलदल के रूप में कम्पन्न तरंग के स्वरूप में हैं।

ऋणात्मक स्वरूप में प्रकृति के अन्यलोगों से देवी स्वरूप में, आज्ञा चक्र के शिवा स्वरूप में, धनात्मक टंकार का अनुस्वार पड़ जाने से, एक विद्युतीय सर्किट कायम हो जाती है। उसके आकर्षण में जिस देवी के लोक का कम्पन्न होता है, वहाँ से हमारा सम्पर्क हो जाता है।

यह होता है तब !

जब हमारा अपना वैचारिक एवं मानसिक कम्पन्न तरंग जब उस अक्षरब्रह्म के शब्दटंकार के समभाव (एक फ्रिक्वेन्शी) में समागम की स्थिति जैसी साम्यरस में आती है।

वैज्ञानिक आज जीवन की खोज में कई यांत्रिक उपग्रह अन्य ग्रहों पर भेज रहे हैं। लेकिन हमारे मनिषियों का अध्यात्मिक विज्ञान इतना ऊँचा था, की तैतीस करोड़ देवी-देवता के लोको की कम्पन्न तरंग को खोज कर, उनसे सम्बन्ध स्थापित करने के विज्ञान को, इस यंत्ररूपी शरीर को संचालित करने वाली सूक्ष्म शरीर के सूक्ष्म गति में, प्रकम्पित होते जान लिया एवं तंत्र-मंत्र विज्ञान द्वारा इसकी पराकाष्टा तक पहूँच गये!

बराबर हम अपने पौराणिक कथाओं में देव लोक, ऋषि लोक, गो लोक, विष्णु लोक, किन्नर लोक, गन्दर्भ लोक, वैश्वानर लोक, हाकनी, राकनी, काकनी, साकनी, डाकनी वगैरह लोको से सम्पर्क की कथानक सूनते आये हैं।

इन लोको से आज भी सम्पर्क के विज्ञान, तंत्र-मंत्र के रूप में हमारे शरीर रूपी यंत्र में वाणी के प्रकम्पन्न द्वारा व्यवस्थित हैं।

विज्ञान द्वैत तक है। जो चौथे शरीर की अभिव्यक्ति में मनस शरीर तक है। लेकिन मनिषियों का विज्ञान अद्वैत से उतरा है। जो चौथे शरीर से ऊपर की अभिव्यक्ति में सहस्त्रार तक है। अतः विज्ञान का इतनी गहराई तक पहुँचना सम्भव नहीं हैं।

लेकिन कुण्डलिनी जागरण के इन तीन भाग पुस्तकों में जो दैत से अद्वैत तक की यात्रा कुण्डलिनी गति एंव आत्मगति में व्याख्या की गयी है, वह हम मनुष्य तन के नर-नारी, धन विद्युत एवं ऋण विद्युत के शक्ति प्रवाह में, स्थितिप्रज्ञ होकर ब्रह्मानन्द हो जाने के स्वरूप में है।

चूँकि हम नर-नारी कामात्मक वेग के सृष्टिगत सिद्धांत को कायम करते हुए, एक दूसरे के पूरक में हैं एवं विशुद्ध प्रेम और ममत्व एवं करूणा में सृष्टि के मूलबिन्दु पर हैं। जहाँ से हमारा निर्मल शिशुवत स्वरूप से लेकर-बचपन, जवानी, बुढ़ापा अपना विद्युतीय तरंग बदलते हुए, चुम्बकीय कम्पन्न तरंग पर, मानव जीवन की जन्म-मरण से, योनिगत सृष्टि को कायम किये हुए है।

इसी तरह शरीर की नीद्रावस्था, ठोस से तरल स्वरूप में स्वत्न है एवं मन की नीद्रावस्था वाष्प रूप में सुषुप्ति है और मन की गैसावस्था में समाधि की तुर्यावस्था है। सुषुप्ति की गहन अवस्था में मन बिलकूल निष्क्रिय होकर शान्त हो जाता है और हम आत्मा के चेतन राज्य में मन और आत्मा के गतिय समकम्पन्न (ऐडजेक्ट फ्रिक्वेन्शी) बिन्दु पर एकाकार हो, आत्म स्वरूपा हो, स्थितिपज्ञ या अर्द्धनारीश्वर होने लगते हैं।

यह स्थिति हमारे चुम्बकीय गति के स्वरूप बदलने के कारण होता है। मन तो वही है !

लेकिन उसके चेतन में अचेतन राज्य के समन्वय बिन्दु से साम्यावस्था में आ जाने से कम्पन्न तरंग का चुम्बकीय क्षेत्र ही बदल जाता है, एवं उसका स्वरूप-ठोस, तरल, वाष्प, गैस, की तरह बदलते हुए-बैखरी वाणी, मध्यमा वाणी, पश्यन्ति वाणी एवं परा वाणी के स्वरूप में अनन्त कम्पन्न तरंग एंव चुम्बकीय क्षेत्र बदलते हुए, ज्योति पुंज के, एकाकार बिन्दु पर समाकर, ईश्वरीय स्वरूप ले लेता है। हम देख रहे हैं, कि सबो के समन्वय बिन्दु से ऊर्जा का स्वरूप बदलता चला जाता है। जिसका विस्तार यह सृष्टि है।

अन्वेषण से ऐसा पता चलता है कि समागम की स्थिति में लिंग का स्पर्श गर्भाशय के नीचले भाग से होने से, काम बवंडर एवं ध्यान के बिन्दुगत आकर्षण में विद्युतिय सर्किट कायम कर कुण्डलिनी त्वरित बेग में ऊर्ध्वगमन कर जाती है।

चूँकि स्त्री का गर्भाशय कुण्डलिनी का प्रतिनिधित्व तो करती है ! लेकिन इस मैथुनी सृष्टि को कायम रखने में वह अपने अतुलित शक्ति का प्रयोग कर, निष्क्रिय एवं कमजोर पड़ जाती है। कुण्डलिनी का ऊर्ध्वगमन तो मूलाधार द्वारा सुषुम्ना नाड़ी प्रवाह में मेरूडण्ड होकर ही है !

लेकिन काम का संवाहक ऊर्जा गर्भाशय ग्रीवा पर अण्डकोष, स्वाधिष्ठान स्वरूप में एवं प्रेम का संवाहक हृदय केन्द्र, अनाहत चक्र के स्वरूप में, ज्यादा शक्तिशाली हो जाता है एवं ध्यान के केन्द्र बिन्दु पर आज्ञा चक्र के सक्रिय होने से चित् शक्ति मजबूत हो जाती है।

काम ऊर्जा एवं ध्यान ऊर्जा का केन्द्र बिन्दु प्रेम स्वरूप में हृदय पर बनता है। जो स्त्री के उर्ध्वगमन का कारण है।

कुण्डलिनी गति तो अनाहत तक ही है। योनिगत चक्रवात तो प्रेम बिन्दु अनाहत पर, चित् की स्थिति सबल होन से ही, टूटेगे जरूर !

लेकिन ऊर्ध्वगमन में स्त्री आज्ञा चक्र से ऊपर नहीं जा पाती है। इसलिए स्त्री का निर्वाण में जाना सम्भव नहीं हैं एवं मुक्ति भी नहीं है। स्त्री के रज्स्वला धर्म में चद्र भ्रमण का बहुत बड़ा नियंत्रण है। चन्द्र भम्रण में पन्द्रह दिन चन्द्र घटन में अमावास्था का पूर्ण चन्द्र धटन हो जाता है एवं पूर्णिमा तक में चन्द्रहास में क्रमवार बढ़ोतरी होती रहती है।

चन्द्र बढ़न एवं घटन का उसके काम शक्ति से नितसर्गित ऊर्जा पर बहुत प्रभाव पड़ता है एवं रजस्वला धर्म के अनुरूप उच्च आत्माओं एवं पुत्र-पुत्री का आकर्षण कायम होता है।

इस चन्द्र घटन एवं बढ़न के संयोग के अनुपात में ही स्त्री के कामवासना सामयिक (पेरीयोडिक) होती है और कुण्डलिनी जागरण के पद्धति में इसका ध्यान रखते, हुए पूर्णिमा के आस-पास ऐसा प्रयोग करने का संविधान है।

लेकिन पुरूष में कामशक्ति सामयिक नहीं है। मनोदश एवं मनोभाव के अनुसार स्वाधिष्ठान पर काम ऊर्जा जमा होकर मूलाधार पर सोई कुण्डलिनी को, कभी भी फन उठाने को मजबूर कर देती है।

इसलिए प्रयोग में बराबर चर्चा की गई है की हमें काम शक्ति के नियंत्रण हेतु ध्यान की प्रणाली स्वाधिष्ठान पर अपनानी है !

क्योंकि मूलाधार पर कुण्डलिनी स्वभागत रूप से हमेशा फन उठाकर पौरूष ग्रन्थि (प्रोस्टेट ग्लैण्ड) पर अपना तमस् फुंफकार छोड़ने को सतत् तैयार ही रहती है। जो प्राकृतिक है।

पत्नी जिसे भैरवी के रूप में स्वीकार करना है, उसका निष्टावान एवं संयमी होना अति आवश्यक है। चूँकि ज्यादा समागम से चुम्बकत्व की शक्ति टूटती एवं घटती है। जब तक स्त्री में संयम न हो, तो पुरूष कैसे संयम से अपने ब्रह्मचर्य को स्थिर रख सकता है!

चूँकि ब्रह्मचर्य व्रत एवं सहजता से ही पुरूष का चुम्बकत्व भी मजबूत हो सकता है। ब्रह्मचर्य व्रत तो नियमबद्धता से, उम्र अनुपात में संयम का नियोजित अनुपात रखते हुए, शान्तचित एवं वासना रहित होकर ही रखा जा सकता है। ताकि

हमारा चुम्बकत्व एवं विद्युत शक्ति तीव्रतर और शक्तिशाली हो !

हम प्रायोगिक भौतिक जीवन में भी जानते हैं, कि बिजली के मोटर के सिद्धानत में जितना शक्तिशाली चुम्बकत्व पर, जितना अधिक तार का फिल्ड (घुमावदार) डालते हैं, उतनी शक्तिशाली बिजली हमें प्राप्त होती है।

उसी तरह हमें भी अपना चुम्बकत्व और विद्युत शक्ति को शक्तिशाली बनाना है। ताकि हमारा शारीरिक एवं मानसिक ओरामंडल का वलय काफी शुद्धतम एवं निर्मल बने।

प्रायोगिक रूप से देखा गया है कि गर्भिणी स्त्री अगर प्याज और लहसून गर्भधारण करते ही त्याग देती है, तो उसका बच्चा भी कामवासना या क्रोध के प्रति बहुत संयगी होता है।

इसलिए हमारा भोजन भी संतुलित एवं फलाहार स्वरूप का होना चाहिए। स्त्री में व्रत, उपवास की मानसिकता ही नहीं ! प्रेमपूर्ण व्यवहार एवं सहवास की इच्छाशक्ति हो !

चूँकि हमारा प्रेमपूर्ण व्यवहार ही सहवास की स्थिति में उच्च आत्मा को निमंत्रण दे सकता है। हम अपने बच्चो को जुआरी, शराबी, बलात्कारी, कामी, अन्यायी होने के लिए कोसते हैं।

लेकिन उसके जिम्मेवार हम स्वयं हैं ! चूँकि हमारे आस-पास तो कण-कण, रेणु-रेणु में अपने कर्मबंधित भोग को लिए असंख्य उच्च एवं निम्न आत्माएँ पृथ्वी पर जन्म लेने के लिए, गर्भधारण करने के लिए उचित कोख की तलाश में सतत् मौजूद ही रहता है।

हमारी मनोदशा, मनोभाव एवं शारीरिक चक्रो की जैसी स्थिति रहेगी; वैसी आत्मा गर्भ में डिम्भकोष को सिंचित कर गर्भ धारण करेगी।

इसलिए हम एक नया संस्कारवान समाज बनाने के लिए उच्च वर्ग के आमंत्रण में वैज्ञानिक राजनीतिज्ञ, डाक्टर, गायक, चित्रकार, व्यापारी इत्यादि सबो के व्यक्त्वि निखार का स्वयं जिम्मेवार हैं।

इसलिए इस कुण्डलिनी जागरण के प्रयोग में हमारे मानसिकता का भी बहुत महत्व हैं। जो हमारे संयम एवं प्रेमपूर्ण व्यवहार से ही सम्भव है एवं हमारे

आत्म चेतना को सजग रख, ईश्वरीय मूल में हमें समाहित करने में इस कामवासना का भी बहुत महत्व है। भग समाधि में ध्यानवस्था की मनोदशा स्थिति रहती है, इसलिए स्खलन नहीं होता है।

समागम की स्थिति में स्त्री का चन्द्र स्वर (बायाँ श्वॉस) एवं पुरूष का सूर्य स्वर (दाहिना श्वॉस) की गति ही चुम्बकत्व के ऋण विद्युत एंव धन विद्युत का सर्किट पूरा करने में सहायक होता है।

अतः कुण्डलिनी जागरण हेतु ब्रह्ममुहुर्त का समय उपयुक्त होता है। जब स्वप्न भार से स्नायुतंत्र मुक्त होकर श्वॉसों की विपरीत गति में ऋण विद्युत एवं धन विद्युत की स्थिति बनती है; तो इस भग समाधि की स्थिति में शक्तिशाली चुम्बकत्व क्षेत्र बनता है ।

समाधिस्थ स्थिति में अण्डाकार दिव्य ओरामंडल के वलय को सम्पूर्ण शरीर के चारो ओर, दिव्यदृष्टि एवं आज के विज्ञान में करलियन फोटोग्राफी द्वारा देखा जा सकता है। (चित्र संख्या 7 में देखें)

अनिक्षा से किया गया यह प्रयोग घातक है। इसलिए तंत्रशास्त्र में सूरा के प्रयोग को भी पवित्र स्वरूप में स्वीकार किया गया है।

लेकिन ज्ञान स्रोत की ऊर्जा को जगाने के लिए, हमें अपने साधना स्वरूप में ध्यान की स्थिति पैदा करने का प्रयत्न करना पड़ेगा ! साधना के किसी भी समन्वय बिन्दु पर ध्यान ऊर्जा एवं काम ऊर्जा का संकलन ही, हमें सुषुम्ना के गुह्याणी नाड़ी द्वारा ब्रह्मतत्व में पहुँचा सकती है।

जिस नाड़ी पर, नाभि पर ब्रह्म ग्रन्थि, हृदय पर रूद्र ग्रन्थि एवं ललना चक्र के मूल पर विष्णु ग्रन्थि पर अवस्थित सूक्ष्म विद्युत तरंग, हमें ब्रह्मदर्शन में ले जा सकती है।

हम जो पाप-पुण्य, धर्म-कर्म करते हैं, सब हमारे कर्मबंधन पर जमा होता रहता है। न पाप करने से पुण्य का क्षय होता है और न पुण्य करने से पाप का क्षय होता है।

दोनों अपने-अपने स्वरूप में इस जन्म से लेकर अगले कई जन्म तक कर्मबंधन पर भोगना पड़ता है। चाहे स्वर्ग के रूप में भोगे, चाहे नर्क के रूप में भोगे !

लेकिन यह जो कुण्डलिनी जागरण का अध्यात्मिक प्रयोग इस स्थूल शरीर के वासनात्मक शरीर द्वारा यांत्रिक गति में योनिगत चक्रवात तोड़ने के स्वरूप में वर्णन किया गया है, यह कामरहित होकर ही प्राणवायु के शुद्धतम स्वरूप में फलदायी हो सकता है।

चूँकि इस योनिगत चक्रवात के पशु भावदशा की स्थिति, इसी कुण्डलिनी अग्नि में भस्म हो सकती है ! जिसके लिए ऋषि, मनिषि, त्यागी, साधक, कई जन्मों तक हिमालय, जगंलो, कन्दराँओं में साधना कर, अपने जीवन को होम कर डालते हैं। जिस साधना को विशुद्ध रूप में गृहस्था आश्रम में रहकर, काम रहित भावना में भी रहकर किया जा सकता है। गृहस्थाआश्रम छोड़ने की कोई आवश्यकता नहीं है।

जिसके उदाहरण में विदेह राजा जनक एवं ब्रह्मचारी जोगीराज कृष्ण को लिया जा सकता है। इन दोनों महामना नें अपना राज्य धर्म, गृहस्थ धर्म एंव युद्ध धर्म निवाहते हुए भी ज्ञानज्ञ, धर्मज्ञ की श्रेणी में पूजे गये।

मुफ्त

प्रवृति के सूक्ष्म तरंग में पीछे लौटने की कोई गति नहीं है और न कुछ मुफ्त में मिलती है। जैसी हमारी श्रम, साधना, मनोदशा रहती है, वैसी ही उपलब्धियाँ, सिद्धियाँ हमें अधोगमन एवं उर्ध्वगमन की प्राप्त होती है।

हम मंदिर में भगवान, गुरू, अभिभावक का पैर पकड़ कर आर्शिवाद स्वरूप, उपलब्ध्याँ एवं सिद्धिया पा लेना चाहते हैं, यह सम्भव है ही नहीं !

अतः इस अधोगमन के थलचर, जलचर, नभचर से निकलने के लिए हमें ही, अपने पारिवारिक, सामाजिक परिवेश के अनुरूप अपने को ढालकर-कर्त्तव्यमय, साधनामय, सहजता का स्वरूप प्राप्त करना होगा। हमारी आन्तरिक मनोदशा ही हमारे सफलता में सहायक होगी ! कोई भी दुख-संताप, स्वर्ण-नर्क सब हमारे कर्मो के फल हैं एवं कर्मबंधित हैं।

मुक्ति

मुक्ति चाहते हो !

लेकिन क्यों ? क्या प्रकृति में कुछ भी मुक्त है?

गंगा हिमालय से चल रही है! लेकिन कथानक है, कि शिव की जटा से गंगा का प्रवाह है। लेकिन वह तो तुम्हारे दुखगत् कर्मफल की मनुष्यगत काम-कामेश्वरी के शिव स्वरूपा मानसिक गति की जटा से निकलने वाली, कुण्डलिनी स्वरूपा गंगा प्रवाह का चित्रण है!

गंगा इठलाती, खिलखिलाती, हँसती, गुनगुनाती प्रकृति का सौन्दर्य बिखेरती, अविरल प्रवाह में बह रही है। गंगा तो समुद्र जैसे अथाह सागर में मिलकर अपना अस्तित्व खोने को आतुर है। वह तो तुम्हारे मानसिक चित्रण में प्रवाह का स्वरूप है! जो तुम्हारे जीवन में भी प्रेम आस्था, विश्वास, दया, मुदिता का प्रवाह लिए करुणा, मैत्री के आनन्दसागर में बढ़कर, महासागर में मिल जाने का प्रतीकात्मक स्वरूप है।

उठो ! जागो !

अपनी करुणा, मैत्री, मुदिता के अथाह सागर की गहराई को समझो!

और ईश्वरीय कील की परिधि में आकर, स्वयं को भी एकाकार कर ईश्वर में समाहित हो जाओ ! आनन्द स्वरूपा चिदानन्द का रूप ले कैवल्य के निराकार स्थिति में आकर, स्थितिप्रज्ञ हो जाओ!

भला परिधि भी कभी टूटी है ! वह तो नित्य है !

वह तो कील में छुपे ईश्वर में समाहित होकर, एकाकार होने को आतुर है। गंगा भी हिमालय से निकल कर बहुत सारे तीर्थो को पावन करती हुई, सागर में मिल जाती है। लेकिन वही समुद्र का जल फिर वाष्पीभूत होकर, बादल का रूप ले लेता है। विभिन्न देशों में, विभिन्न मानसून के रूप में, पहाड़ से टकरा कर फिर जल प्रवाह के रूप में, वह जीवन्त रूप ले लेता है। ग्लेसियर के बनने से अन्य नदियों का रूप लेकर, फिर अपने प्रवाह की परिधि में आ जाती है।

जब गंगा गंगोत्री के गोमुख से चलती है, या केदारनाथ से मंदाकिनी, या बद्रीनाथ से अलखनन्दा, के रूप में प्रवाह पकड़ती है, तो उस समय गंगा में वह

गुण नहीं होता, जो रूद्रप्रयाग में सभी वनौषधि को लेते हुए प्रवाहित गंगा में होता है।

उसी तरह, जब तुममें करुणा, मैत्री, मुदिता का रूद्र प्रयाग तैयार होता है, तो तुम्हारा कुण्डलिनी प्रवाह ही, गंगा प्रवाह की तरह विशुद्ध ईश्वरीय रूप लेकर, तुम्हारे षट्चक्र रूपी सभी तीर्थों को स्पंदित करता है! तथा ब्रह्मचक्र रूपी महासागर में मिलकर तुममें चिदानन्द का स्वरूप प्रदान करता है। जिस तरह गंगा सात प्रयागों में विभिन्न स्रोत से आकर, मिलती है और सभी को तीर्थ का स्वरूप दे देती है।

वैसे ही तुम्हें मनुष्य जीवन केवल सात बार मिलने हैं एवं वहां करुणा, दया, प्रेम, आस्था, विश्वास, मैत्री, मुदिता का संगम तैयार कर, तुम स्वयं महासागर होने जा रहे हो ! यहाँ पृथ्वी पर सात महासागर की स्थिति भौगोलिक रूप में है। लेकिन महासागर भी मुक्त कहाँ है ! कहीं न कहीं तो किनारा है ही !

वैसे ही तुम मुक्ति की कल्पना छोड़ो !

तुम महासागर हो गये हो !

लेकिन तुम्हारी परिधि की तरह किनारा भी कहीं मध्य के ईश्वरीय कील से जुड़ा है।

तुम कहाँ भागना चाहते हो ?

तुम्हारा शरीर भी, जिसकी सुरक्षा, ऊपयोग, उपभोग, दुख-सुख, नर्क-स्वर्ग तुम्हारी परिधि के अन्तर्गत है। तुम अपने को स्वतंत्र मान रहे हो ! लेकिन यह स्थूल शरीर भी, सूक्ष्म शरीर के नियंत्रण में है और सूक्ष्म शरीर भी कारण शरीर के नियंत्रण में है। जहाँ आत्मा चिदानन्द का स्वरूप लिए तुम्हें आत्मस्वरूपा हो, आनन्दस्वरूपा कर, एकाकार करने को उत्सुक है।

लेकिन वहाँ भी तुम कहाँ मुक्त हो पाये !

तुम्हारी आत्मा भी कील में समाहित होकर, चौरासी लाख योनि की परिधि में घिरी है! तुम परिधि की अनन्त यात्रा में मनुष्ययोनि के स्वगृह में आ चुके हो! पिछले व्यालिस लाख योनि की नारकीय गति से ऊपर की गति में, मनुष्य के (ब्लैकहोल) अन्धुबिन्दु पर खेड़े हो! लेकिन तुम्हारे कर्मबंधन की गाँठ तो

अदृष्य रूप में तुम्हारे मस्तिष्क की पट्टियों एवं नस-नाड़ियों के मरूआ दाने जैसे (ग्लैन्ड्स) ग्रन्थि की परिधि में बंधी पड़ी है। जो फिर तुम्हें जन्म-मरण के महासागर में डालकर, तुम्हें स्वर्ग-नर्क का एहसास दिलाने को तत्पर है।

उठो! जागो बन्धुओं!

परिधि में आगे की गति पकड़ों !

तुम्हारे मानव शरीर रूपी यंत्र में व्यालिस लाख योनि की ऊपर की गति पकड़ो, या व्यालिस लाख योनि के नीचे की गति पकड़ो, इसकी सारी सभावनाएँ तुम्हारे संस्कार में बीज रूप में मौजूद है! जैसे बरगद का पेड़, कितना भी बड़ा होकर, उसके असंख्य बीज में उनके अंकुरण से लेकर, विशाल वटवृक्ष हो जाने से लेकर, उसके पतझड़ एवं बुढ़ा हो जाने पर भी सूखकर मृत्यु प्राप्त कर, पुनः अपने अंकुरित बीज के रूप में रूपान्तरित हो, अपनी जीवन शैली प्रकृति से जोड़ लेता है। यही नियति है।

उसी तरह तुम मानव की कोख से, शिव के काम-कामेश्वरी स्वरूपा, शक्ति की मैथुनी प्रकृति से, उत्पन्न मनुष्य के सारे गुणों से भरे हो ! ब्रह्ममाण्ड का हर गुण लेकर प्रकृति के संचालन में सहयोग कर प्रकृतिरूपा नर-नारी होने जा रहे हो !

तुम नर-नारायण के गुणों से भरकर, इस संसार को बालक ध्रुव, प्रह्लाद, भक्त नरसिंह, कर्ण, अर्जुन, राम, कृष्ण, गाँधी, जिसेस, मदर टेरेसा, लक्ष्मीबाई, मीरा बाई जैसे आत्मावान नर-नारी की विभूतियों से भर, पृथ्वी पर अवतरीत हुए हो !

उठो-उठो! सम्हलो!

समझो अपने काम-कामेश्वरी के प्रेमरूपा शक्ति स्वरूप को !

भर डालो अपने राष्ट्र को, इन आत्म स्वरूपा नर-नारियों से !

एवं स्वयं चिदानन्द का स्वरूप लेकर कील में समाहित हो, एकाकार हो, सृष्टि के निपन्ता की श्रेणी में आ जाओ ! हम तीर्थों में भटक रहे हैं ! कभी केदारनाथ, बद्रीनाथ, वैष्णो देवी, द्वारिकापुरी, जगन्नाथपुरी, वगैरह तीर्थों में तीर्थाटन कर, समझ रहे हैं, कि मैंने स्वर्ग का दरवाजा तोड़ दिया है!

लेकिन स्वर्ग का दरवाजा तो तभी खुलेगा जब हमारी मानसिक गति-प्रेम, आस्था, विश्वास की गति पाकर-करुणा, प्रेम, दया, के सरोवर में डुबकी लगा ले। स्वर्ग-नर्क के परिधिगत चक्रवात से कील की ओर बढ़कर, मेरी आत्मा अकम्प लौ की तरह स्थिर हो जाय!

लेकिन अकम्प होकर भी, हम मुक्त कहां हो पा रहें हैं ! कील की पकड़ तो हमारे ऊपर है ही ! माता-पिता का फौरेंसिक स्टाइल (अस्थि प्रारूप) भी तुम्हें मुक्त नहीं होने देता। जन्म लेने के लिए पिछले कर्मबंधन के अनुरूप माता-पिता की कोख एवं रज वीर्य तो चाहिए ही, हमारे आवागमन के लिए इस संसार में !

इसलिए तुम माँ एवं पूर्वजों का रूप भी ले लेते हो, अपने कर्मबंधन के साथ ! माँ-बाप, नाना- नानी, दादा-दादी का फौरेंसिक स्टाइल (अस्थि प्रारूप) लगभग 60 प्रतिशत होता है। तुम्हारे कर्मबंधन एवं नर्क-स्वर्ग का एहसास केवल 40 प्रतिशत से 50 प्रतिशत के लगभग होता है।

तो तुमने अगर उच्च कुल में जन्म लिया है, तो तुम माँ-बाप का स्वरूप और संस्कार लेने के लिए, उनका ऋणी हो जाते हो! जिसका ऋण चुकाने के लिए कर्मबंधन तुम्हें मुक्त नहीं होने देगी ! कोई भी देवी-देवता अगर हमारी अराधना से प्रसन्न होकर, हमें आशीर्वाद दे रहे हैं, तो फिर वे मुक्त कैसे? वे तो हमारे प्रेम, हमारी आस्था से बंध ही चुके हैं! और हमारी योग्यता के अनुसार हमारे अनुदान को ही हम पर बरसा रहे हैं।

चाँद, सूरज, नक्षत्र, ग्रह, तारे सभी एक दूसरे के गुरूत्वाकर्षण से बंधे हैं और ये भी मुक्त नहीं हैं!

इसलिए बन्धुओं!
मुक्ति की कामना छोड़ो!
और बढ़ चलों अपने मनुष्यगत योनि की उच्च श्रृंखला पर!
तुम्हारे आत्मस्वरूपा होने से ऐसी केन्द्रगत आवाज उठे!
कि सारा विश्व आत्मस्वरूपा हो, तुम्हारे केन्द्र में समाहित हो जाय!

संत

संत की भावदशा तो मनुष्य जीवन की श्रृंखला की एक उच्चतम भावदशा में आ जाना है। संत की भावदशा तक पहुँचने के लिए-काम, क्रोध, लोभ, मोह के सतज् स्वभाव में आ जाना ही परमानन्द की भावदशा है। संत का पात्र तो सावन की घटा की तरह भरा होता है! जो बरसकर, करुणा और दया से मानव जाति को तृप्त कर देता हैं।

संत और अवधूत की परिधि आकाश की तरह अनन्त हो जाती है। वह किसी एक जाति या समाज का नहीं रह जाता।

लेकिन जिनने भी, बौद्धत्व प्राप्तकर ज्ञान का मशाल जलाकर, मानव समाज में, सत्य, अहिंसा, प्रेम का प्रकाश जलाना चाहा; वे या तो शूली पर चढ़ा दिये गये, या प्रताड़ित, अपमानित किये गये। क्योंकि हमारा समाज रूढ़िवादिता और अंधविश्वास के ब्रह्मफाँस से मुक्त नहीं हो पा रहा!

जबकि संत रूढ़िवादिता और अंधविश्वास के ब्रह्मफांस को नैसर्गिक दया, प्रेम, के सहज भाव में आकर निष्क्रिय कर देते हैं। लेख में वर्णित, पशु भावदशा एवं वीर भावदशा की स्थिति में, सबकी भावदशा की स्थिति वीर भावदशा में पहुँचने की है। चौथा शरीर, मनस शरीर तो मनुष्य का स्वगृह है।

जहाँ के उत्कर्ष पर पहुँचने के लिए करुणा, मैत्री, मुदिता का उपहार, परमानन्द होकर प्राप्त करने से, ही संत अपनी गरिमामय आत्म प्रकाश को प्राणीमात्र पर वर्षाकर, हमें तृप्त कर सकते हैं।

कबीरदास ने तो कभी लेखनी नहीं पकड़ी !

लेकिन उनके ज्ञान का मशाल किसी भी रूढ़िवादिता को दोधारी तलवार की तरह काट डालती है। गुरूनानक ने **"सत् श्री अकाल"** की उद्घोषणा कर अकाल यानि मृत्यु को सत्य एवं प्राकृतिक गरिमामय घटना मान, निर्भयता एवं निश्चयमय जीवन की दीक्षा सुसंकृत समाज को दे डाली!

मुशा ने जब "अनाहुल हक्" की आवाज उठायी, यानि "ईश्वर होना तुम्हारा हक है" तो सूली पर चढ़ा दिये गये। लेकिन उनका सूली पर चढ़ जाना भी, इस लौलूप समाज को संदेश दे गया।

संत तो अपने बलिदान को ईश्वरीय संदेश जान, गरिमामय

दया, प्रेम का पुष्पमाल पहन, इस रक्ताभ संसार को स्वर्णिम प्रकाश दे जाते रहे हैं !

चौरासी लाख योनि में व्यालिस लाख योनि पर खड़े मानव जाति के इस भौतिकवादी स्थूल शरीर को, इस भौतिकवादी दुनिया की हर वस्तु एवं समस्याओं के समाधान की जरूरत है।

भोजन, आवास, वस्त्र दवा-दारु, श्वॉस-प्रश्वास इत्यादि के समाधान से ही प्राणी मात्र के मानव जीवन के उत्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है।

मूलाधार, स्वाधिष्ठान, नाभि चक्र तक पशु भावदशा का सीमांकरण किया जा सकता है। जहाँ तक धन, वैभव, सुन्दर पति-पत्नी, रिश्ता, समाज, राज्य तथा राष्ट्र की परिधि है।

लेकिन इससे ऊपर व्यालिस लाख योनि की परिकल्पना जो करुणा, मैत्री, मुदिता की त्रिधारा के संगम पर खड़ी होती है। वह तो सत्य, अहिंसा, प्रेम, दया की नींव पर ही खड़ी हो सकती है।

इसलिए पशु भावदशा की नींव पर अपने संस्कार का सूर्योदय हुए बगैर, वीरभाव में पहुँचना असंभव है।

भला बगैर नींव के भी कभी मकान बना है! पशु भावदशा से वीर भावदशा तक आने के लिए मनुष्य योनि स्वगृह है। संत तो स्वगृह में आने पर ही अपने आत्म प्रकाश को प्राणी मात्र पर वर्षा कर, संसार को तृप्त कर पाते हैं।

अनूप जलोटा ने गाया है कि ''अज्ञान काजल की कोठरी है और पाप धूल से भारी है।''

यह व्यालिस लाख तो अज्ञान और पाप भोग की पशुदशा है। जहाँ से ऊपर उठकर संत की प्रेरणा में हम दिव्य भावदशा में जाने के अधिकारी हो जाते हैं।

दिव्य भावदशा में जाने का रास्ता तो पशु भावदशा, वीर भावदशा की श्रृंखला से ऊपर की भावदशा में आ जाना ही परमानन्द की भावदशा है।

इसलिए हम काम, क्रोध, लोभ, मोह के चक्रवात से इस स्थूल शरीर द्वारा तो निकल नहीं पायेंगे! हमें संतों के भावदशा के परिधि में अपने को एकाकार कर, व्योम की परिधि को पा लेना है ।

काम, क्रोध, लोभ, मोह के तमस्, रजस् की श्रृंखला को पार करते हुए, सतज् आत्म प्रकाश में आ जाना है!

इसी की व्याख्या, ''कुण्डलिनी जागरण द्वार है गृहस्थी'' में कुण्डलिनी जागरण कर, आधा नाभिकुण्ड तक की पशु भावदशा से, काम-कामेश्वरी के निर्मल काम-क्रीड़ा द्वारा, निकल कर अपने स्वगृह में आ जाना है।

जहाँ से दया, मुदिता, क्षमा, प्रेम, आस्था के आत्म प्रकाश को प्राप्त कर, दिव्य भावदशा के व्योम की परिधि को पकड़ लेना है एवं कुण्डलिनी जागरण की साधना की परिधि को परमानन्द के दिव्यभाव में आकर, अनन्त आकाश की ऊँचाई से निकल कर, निर्वाण की स्थिति प्राप्त कर लेना है!

ऊपर के व्यालिस लाख योनि की श्रृंखला को पार करने के लिए भावना के सूक्ष्म तरंग को ब्रह्मबिन्दु पर केन्द्रीभूत करना ही सरल एवं सामान्य पथ है।

वहाँ गति पाने के लिए प्राण ऊर्जा ही महाकाली-मनःशक्ति के रूप में, महालक्ष्मी - प्राण शक्ति के रूप में एवं महासरस्वती-वाक्शक्ति के रूप में क्रियाशील है।

ऊपर योनियों में, पीछे वर्णित दस प्राण तो होते हैं, लेकिन कोषा चार ही होते हैं। अन्नमय कोष नहीं होता है; जो भौतिकवादी जगत की प्राण ऊर्जा के संचालन में सहायक होता है। कुण्डलिनी के छः चक्र में प्राण ऊर्जा का संचालन एवं नियंत्रण सूक्ष्म शरीर में है। जिसमें कारण शरीर में आत्मा का निवास है।

यह शरीर तो मोबाइल, कम्प्यूटर की तरह यंत्र है, जो सूक्ष्म शरीर की प्राण ऊर्जा के नियंत्रण में है। जब हम कुण्डलिनी जागरण की प्रतिक्रिया से गुजरते हैं, तो रिफक्सोलोजी (उलटी गति) के सिद्धान्त की तरह, जो प्राण ऊर्जा अधोगति में काम, क्रोध, लोभ, मोह के संचालन में खर्च हो जाती है ।

वही ऊर्जा उर्ध्वगति पकड़ने पर क्षमा, दया, प्रेम, श्रद्धा, करुणा, मैत्री, मुदिता की प्राण ऊर्जा में परिवर्तित होकर, एक संत को जन्म देती है। वही ईश्वर की तरह भावनामय जगत के स्पंदन क्षेत्र को लांघते हुए मध्यमा और परा वाणी के बिस्तृत आकाश को छूकर प्राणी मात्र पर बरस जाती है और हम धन्य एवं तृप्त हो जाते हैं।

इसलिए बन्धुओं!

अपने इस व्यालिस लाख योनि की नारकीय योनि से आप बाहर आ चुके हैं!

संत की भावदशा में आकर आप ईश्वर की कील की परिधि में आ चुके हैं!

अब तो आपके लिए जाति-पाति का वर्ण संस्कार एवं धन, वैभव की लालसामय प्रलोभन एवं दुख-सुख की झंझावात चक्रवात निष्क्रिय हो चुकी है!

आप सब कुछ छोड़कर अवधुत हो चुके हैं! वीरभाव की श्रृंखला से निकल, दिव्य भावदशा आपका स्वभाव हो चुका है!

आप अपने आप को ही नहीं प्रेम कर रहे!

आप तो विश्व और समाज का होकर, सर्वव्यापी संत की भावदशा में आकर, ईश्वर और परमानन्द की श्रेणी को प्राप्त कर लिया है !

आपसे इस समाज एवं राष्ट्र को, बहुत सारी उपदानों की आशा बंध चुकी है !

अब आप कैसे इस स्थूल जगत में एक का होकर रह सकते हैं?

जब भी किसी ने ज्ञान का बौद्धत्व प्राप्त किया, तो जंगल से समाज की ओर भागे आये! क्योंकि कोई भी झरने का प्रवाह तो नीचे की ओर होगा !

जिसने ज्ञान प्राप्त किया, वह आनन्द का झरना बाँटे बगैर तो संतों के दिव्यभाव के आत्म प्रकाश में आ ही नहीं सकते!

बंधुओं !

अब आपके पास भी सम्बरण का कोई भी उपाय नहीं है!

ज्ञान का आत्म प्रकाश फैलाने के लिए-दया, प्रेम, करूणा का ईश्वरीय स्वरूप का प्रवाह, इस समाज के प्राणी मात्र को देने के लिए !

धर्मांधता

हमारे पारम्परिक अंधविश्वास से घिरी हमारी आस्था, हमारा विश्वास हमें धार्मिक तो बनायेगा! लेकिन हम अपने अपरमित शक्ति का स्वक्षंद आकाश नहीं ढूंढ़ पायेंगे।

हम, पर कटे पंक्षी की तरह अपने अंधविश्वास के घेरे में फरफराते रह जायेंगे। हमारे धर्मगुरू हमारे सुख शान्ति पाने के कोमल भावना का, प्रेम और आस्था के रूप में शोषण कर, हमें धर्मांधता में पंगु बना डालेंगे!

इतिहास गवाह है कि कोई भी जगा हुआ पुरूष, अपने सिद्धान्त, अपने विवेक एवं अपनी साधना के बल पर अपना राजमार्ग बना पाये !

वे किसी का पल्लू पकड़कर नहीं बैठ गये! उधार की जिन्दगी उन्होंने नहीं जी! चाहे राम, कृष्ण, गौतम, महावीर या बड़े-बड़े संत, साधक ही क्यों न हो!

ठीक है !

संस्कारवान गुरु की प्रेरणा, हमारे आस्थावान होने के लिए अति आवश्यक है। लेकिन अगर हमारा अपना विवेक का स्वछंद आकाश नहीं है, तो हमारी कल्पना, हमारी साधना कहां फलीभूत हो पायेगी।

हम तो लकीर के फकीर ही रह जायेंगे! हम अपने गुरु के प्रति आस्थावान तो होते हैं! लेकिन हमारा दृढ़ संकल्पबल एवं हमारा मनोबल अपनी भावदशा के अनुरूप होना चाहिए।

हमारे अपने कर्मबंधन हैं, जो आस्थावान होने से नहीं टूटेंगे! वे तो हमारी अपनी साधना, अपना कर्मानुसार ही, हमारे कर्मफल हैं एवं हम पर कर्मबंधन का गांठ डाले हुए है।

इसलिए बन्धुओं!

महामना की प्रेरणा को अपने आत्मविश्वास, अपनी दृढ़ता, अपनी संकल्पशक्ति के अनुरूप ही ग्रहणकर धर्मांधता से बचें !

कोख

इस धरती पर आत्मावान नर-नारी की विभूतियों से भरे अवतरण के लिए, प्रकृति प्रदत्त शक्तिरूपा नारी की कोख की भी अहम भूमिका है। मातृत्व प्राप्ति के लिए अर्द्धनारीश्वर का आत्मखंड, शिव और शक्ति की विहंगम काम-कामेश्वरी की लीला, तो प्रकृति संचालन की ब्रह्मगति है।

आत्मावान उच्च संस्कार से सम्पन्न नर-नारी को पैदा करने के लिए जन्म-जन्मान्तर के शोध-से, व्यालिस लाख योनि के भ्रमण को पार करते हुए, जो दिव्य आत्मा अपने आत्मखंड से जुड़ती है। वही तो ओजवान, तेजस्वी, भाग्यवान पुत्र-पुत्री को जन्म दे सकती है!

आकाश में बादल छाते हैं, वह पृथ्वी की परिधि में ही छाते हैं। लेकिन बरसने के लिए वह कोई एक नदी तालाब में ही नहीं बरसते!

वह तो अपने उपादान को बिना भेद-भाव किये, पृथ्वी के हर नदी-नाले का किनारा पकड़ने एवं प्रत्येक पेड़-पौधों को हरियाली से भर, प्रकृति को जीवन्त स्वरूप देने को, अपने को मिटा देने के लिए आतुर होकर, सारा जल पृथ्वी पर उढ़ेल देती है।

खुला आसमान, फिर सूरज के धूप एवं चाँद की चाँदनी से पृथ्वी के जन-जन को आह्लादित करने लगती है।

उसी तरह कोख की ऊँचाई भी जब मातृत्व प्राप्त करने के लिए संयोग बनाती है, तब जिस स्त्री-पुरूष में जन्म जन्मान्तर का संस्कार रहता है! वही आत्मावान नर-नारी के आत्मखंड को सम्हाल पाती है और ऐसे नर और नारायण को जन्म देती है! जो पृथ्वी के हर जन-जाति को अपने श्रद्धा, प्रेम, आनन्द, दया से भरकर, स्वयं मातृत्व का सागर हो जाती है।

कुछ नारियों का नाम समाज के संस्कार बंधन से अलग होने के बाद भी, स्वर्णाक्षर में लिखे गये। कुन्ती ने कुंवारी होने के बावजूद, पांचों पाण्डव को जन्म दिया। द्रोपदी ने पांच पति का वरण कर, पतिव्रता होने का इतिहास रचा। मरियम ने कुंवारी होने के बावजूद, जिसेस क्राईस्ट को जन्म दिया। कबीरदास स्वामी रामानुज के आर्शिवाद स्वरूपा एक विधवा की कोख से जन्म लिये। व्यासदेव मछोदरी के गर्भ से जन्म लिये। आहिल्या को इन्द्र ने पथभ्रष्ट किया। रावण की पत्नी मंदोदरी ने अनजाने

में सीता को जन्म दिया। बाली की पत्नी तारा ने अंगद जैसे योद्धा को जन्म देने के बाद, सुग्रीव से शादी कर ली।

फिर भी इन बालाओं का कुन्ती, द्रौपदी, मंदोदरी, आहिल्या, तारा का नाम प्रातः स्मरणीय एवं सम्मान से लिया जाता है! कहा ज़ाता है कि इन पंचकन्या के स्मरण से सब पाप नष्ट हो जाते हैं!

जबकि इनका चरित्र विवादों में घिरा समझा जाता है। लेकिन कोख की ऊँचाई के कारण, ये ऐतिहासिक कन्याएँ स्मरणीय हो गयी। अच्छे या अधम संस्कार के लोग भी बिना गर्भ के तो पैदा ले नहीं सकते ! जिस कोख की स्थिति नाभिकुण्ड से नीचे ही है। जिस क्षेत्र को कृष्णलेष्या के नाम से पुकारा जाता है एवं मल, मूत्र के गह्वर से घिरे यंत्ररूपी शरीर में नारकीय चाहरदीवारी के घेरे में ही गर्भाशय है। लेकिन कोई भी ऋषि, महात्मा, या गौतम, महावीर बिना कोख के तो जन्म लिये ही नही ! हिमालय पर योगी ऋषि ध्यानस्थ होकर समाधि लगाते हैं! जहाँ से गोमुख होकर गंगा का प्रवाह है। **लेकिन क्या ? हम कभी सोच पाये हैं !**

कि हिमालय पर, कोई विरला मनुष्य ही समाधि लगा पाता है। लेकिन किसी भी नारी के गर्भाशय में बिना गर्भ धारण किये, तो हम जन्म ही नहीं ले सकते ! इसी कोख में हम तामसिक समाधि की अवस्था में मानव का स्वरूप लेते हैं।

तो ईश्वर ने तो हमें ध्यानस्थ होने के संस्कार कोख में ही दे दिया है। कोख में ही कुण्डलिनी की इतनी अपरमित शक्ति दे दी है, कि हमारे मानव जीवन की त्रिधारा कुण्डलिनी स्वरूप में गोमुखी गंगा की तरह, वहीं से ऊर्जा का प्रवाह पकड़ती हुई, मानवता के करुणा, मैत्री, मुदिता का संस्कार बीज हममें डाल देती है।

इसी संस्कार बीज को हमें वटवृक्ष का रूप देना है! मातृत्व प्राप्त कोख की गरिमामय भूमिका को अपने आह्लादित, आनन्दित मानव धर्म के चरम उत्कर्ष पर पहुँचकर, अपने माँ-बाप के संस्कारगत स्वर्णिम आभा को भी परम उत्कर्ष पर पहुँचा देना है। स्त्रित्व की पूर्णता, मातृत्व एवं समपर्ण में है। समर्पण चाहे, तुक्ष से तुक्ष मानवाकृति स्वरुपा पति में हो या ब्रह्मस्वरुपा ईश्वराकृति में क्यों न हो !

मृगतृष्णा

मानव योनि ईश्वर की कील तक पहुँचने के, चतुर्थ आयामी उत्कर्ष की उत्कृष्ट योनि है। ईश्वर बारम्बार हमें मानव योनि देकर अपने में समाहित करने को उत्सुक है।

लेकिन हमारी मृगतृष्णा हमें व्यालिस लाख की निकृष्ट योनियों से हमें निकलने नहीं दे रही! हम अपने मन की गति से घोड़े की चाल में दौड़े चले जा रहे हैं।

जबकि तृप्त होकर ही ईश्वर में समाहित हो सकते हैं। हमारे किये गये कर्म, कर्मफल स्वरूप हमारे कर्मबंधन का कारण है। जो हमारे न्यूरान सेल पर बराबर रेखाएँ (ग्रुभ) अंकित कर, हमारे जन्म-मरण के चक्रवात को कायम रखते हुए, मानव योनि से नीचे की योनि की परिधि बनाये हुए है। हमारी मृगतृष्णा हमारे आत्मस्वरूपा होने में बहुत बाधक है !

तालाब में फेके गये कंकड़ से उठने वाले जल तरंग की तरह, मन बराबर तरंगायित होते रहता है और हम अपने आकांक्षाओं अपनी कामनाओं के भँवर में फँस ,अपनी विवेक अपनी आत्मा की आवाज का गला घोंट कर मारे डाल रहे हैं !

मन से लड़कर भला कोई कभी जीत पाया है! वह तो मृगतृष्णा, मृगमरीचिका में फँसा, हमसे अपना काम निकाल रहा है। हम तो मन की दासता को स्वीकार कर अपने को दुर्भाग्य पूर्ण अहंकार के वशीभूत हो, आनन्दित हो रहे हैं। कुत्ते की तरह हड्डी को चबाने से तथा अपने जबड़े से निकले खून को, चाट-चाट कर ही तृप्त होना चाहते हैं।

शत्रु को कभी शत्रुता से नहीं जीता जा सकता। हम जीतने का दम्भ भरते हैं, लेकिन शत्रुता तो उसके मन में रह ही जाती है।

उसी तरह मृगतृष्णा रूपी मृग मरीचिका को कभी समाप्त नहीं किया जा सकता। वह तो तभी समाप्त होगी, जब हम अपने मन को मित्र बनाने में सफल होंगे। मन को ही मित्र बनाने का क्रम-ध्यान, साधना है एवं काम-कामेश्वरी की लीला साम्यरस में आने पर ईश्वरीय कील तक पहुँचने का सुगम मार्ग है।

मन का तरंग हमारी चेतना की ज्यादा से ज्यादा ऊर्जा कामकेन्द्र पर जमा कर रही है। उसका तनाव कामक्षेत्र के - मूलाधार, स्वाधिष्ठान, एवं नाभिकुण्ड, पर ज्यादे से ज्यादा है। जिसके कारण अहंकार, द्वन्द्व, क्रोध, ईर्ष्या, अपमान का तनाव हमेशा हम पर सघनरूप से बना होता है एवं इस मानसिक स्थिति में, मन से लड़कर कामवृत से निकलना सम्भव नहीं है !

इसलिए मन को मित्रवत् बनाने के लिए इस पुस्तक ''कुण्डलिनी जागरण द्वार है गृहस्थी'' भाग-प्रथम ''कुण्डलिनि जागरण आधार है प्राण शक्ति एवं सम्मोहन'' भाग-द्वितीय ''कुण्डलिनी जागरण उपहार है दिव्य भावदशा'' भाग- तृतीय में काम-कामेश्वरी की उच्चतम लीला द्वारा अपने मन को साम्यरस में लाकर !

कुण्डलिनी जागृत करते हुए, काम-कामेश्वरी के समुद्र मथन के फलस्वरूप, 'ॐ' के सप्त आयामी क्षेत्र को पकड़ना है।

कुण्डलिनी जागरण के प्रतिफल स्वरूप समाज कल्याण करने हेतु, अपने आनन्द के झरना का स्रोत गंगा के सप्तधारा की तरह बहा कर, मानव जाति को तृप्त कर देना है।
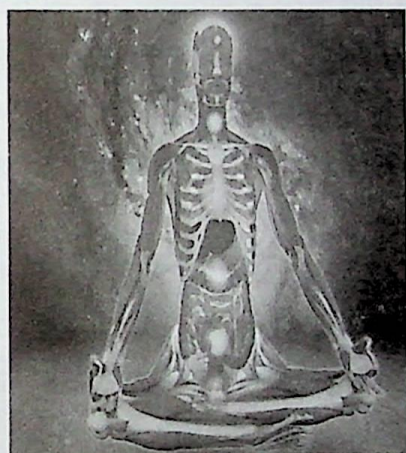
आदतें

मानव स्वभाव में जो दैनिक रूप में काम किये जाते हैं, वह स्वभाव का रूप पकड़ हमारी आदतों का स्वरूप पकड़ लेता है। हम अनजाने, अनचाहे भी उन आदतों का क्रम पकड़ लेते हैं एवं उसे दैनिक मासिक या वार्षिक संस्कारगत आदतों में शामिल कर लेते हैं।

भोजन करें या दिशा-मैदान जाय, या क्रोध, प्रेम का स्वभाव बनाये! वह ऊर्जा, वक्त पर हमारे ग्रन्थियों को श्रावित कर, हमें वैसी प्रतिक्रिया कायम करने को मजबूर कर देती है।

अगर हम पत्नी को या बच्चों को प्यार करने का स्वभाव बनाते हैं और किसी कारण तनावग्रस्त होकर उनसे विमुख होना चाहते हैं, तो उसके प्रतिक्रिया स्वरूप हम थोड़ा विक्षिप्त होने लगते हैं। प्यार, प्रेम के (ग्लैंड्स) ग्रन्थि में निश्चित गति से श्राव होता रहता है । हम कुत्ते-बिल्ली को भी प्रेम कर, राहत महसूस करने लगते हैं।

घर का काम-काज तो दैनिक ही होना है। लेकिन हम नौकर-चाकर को भी डाँट फटकार का स्वभाव आदतों में डाल लेते हैं। उन्हें दैनिक रूप से प्रतारित करते रहते हैं। किसी से बात करने में हाथ और मुँह को कुछ खास ढंग से संचालित करने का स्वभाव हो जाता है। गर्दन भी कुछ खास ढंग से झुलाने लगते हैं।

जब, टेलीफोन और मोबाइल पर हम बात करते हैं, तो हाथ, पैर गर्दन, मुँह को भी उसी खास क्रम में डुलाने-हिलाने लगते हैं। जबकि सामने तो कोई होता नहीं, केवल यंत्र होता है।

चीन के जासूसी विभाग में एक प्रतिक्रिया का वर्णन है, कि जब कोई जाजूस, जासूसी करते पकड़ा जाता है, तो कैद खाने में डाल दिया जाता है। सुख में उसे बड़े पिंजड़े में बन्दकर, जहाँ माओवादी पैरेड चलता है एवं माओवादी गुण-गान गाये जाते हैं, वहाँ छोड़ दिया जाता है।

साप्ताहिक रूप से पिंजड़ा को छोटा कर माह गुजरते-गुजरते पिंजड़े को काफी तंग और छोटा कर, कैदी को कष्ट और प्रतारणा में रखा जाता है। फिर दूसरे माह में उसे सुरा और सुन्दरी के वातावरण में रखकर भोजन, आवास की भी पूरी सुविधा दी जाती है।

तीसरे माह में उसे पैरेड के मैदान में, उसी तरह छोटे और बड़े पिंजड़ा के क्रम में डालकर, माओवादी गुणगान के लिए प्रतारित किया जाता है। तीन माह गुजरते-गुजरते वह जासूस कैदी स्वभावगत आदतों के रूप में माओवादी गुणगान करने लगता है एवं उन आदतों से निकल नहीं पाता है।

बीड़ी, सिगरेट और शराब का स्वभाव भी, कुछ इसी तरह हमें पकड़ता है। हम दैनिक रूप से उसे छोड़ने की प्रतिज्ञा करके भी, इसके गुलाम बने रहते हैं। आजकल तो कुछ इस तरह के स्वभावगत इन्जाइम बनाये गये हैं,

जिसका इन्जेक्शन लगातार कई माह तक देकर, विद्रोही से विद्रोही नेता को भी माओवादी अपना गुलाम बना लेते हैं। क्योंकि उसके इन्जेक्ट किये गये रसायन से, ग्लैण्ड को श्रावित करके, विद्रोही स्वभाव को बदल दिया जाता है एवं वह सारे विरोधात्मक स्वभाव को छोड़ देता है।

हमारे भोजन करने का स्वभाव भी, हमें अपनी आदतों को दृढ़ करने में सहायक होता है। तामसिक भोजन करने वाले, ज्यादा उत्तेजित एवं कामुक स्वभाव के हो जाते हैं। जबकि सात्विक भोजन एवं व्रत उपवास करने वाले, सात्विक स्वभाव एवं दया, प्रेम को बरसाने वाले हो जाते हैं।

तामसिक या सात्विक भोजन से जो रक्त-मज्जा बनता है, उसमें तो कोई डी०एन०ए० एवं श्वेत-रक्तकण एवं लाल-रक्तकण की गणना में तो कोई अन्तर नहीं आता! लेकिन अवचेतन मन का स्वभाव, ऊर्जा के रूप में उसे पकड़ लेता है और ग्रन्थि (ग्लैण्ड्स) के श्राव के रूप में हमें आदतों की पकड़ के नियंत्रण में ले आता है एवं हम स्वभावगत उसके गुलाम हो जाते हैं।

हम कंठी-माला जपने का स्वभाव भी आदत में डाल, घंटों माला जपते रहते हैं। जबकि अगर पाँच मिनट भी मन को केन्द्रीत कर लिया जाय, तो प्रकृति के स्वभावगत अक्षुन्न भंडार के गुणों से हम भर जाते हैं।

पाँच मिनट क्या? छन पलक का केन्द्रीत होना, हमें ईश्वर के गुणों से अनुप्राणित कर देता है।

एक सुप्रीम कोर्ट के बैरिस्टर का प्रमाणित प्रकरण सामने आता है। वह दो राज घराने की लड़ाई में एक राज घराने का बैरिस्टर था। उसे बहस करते वक्त अपने कोट के बटन को अंगुली से घुमाने की आदत थी।

वह अपना (केस) मुकदमा कभी नहीं हारता था। विरोधी राज घराने के बैरिस्टर ने उनके इस साइक्लोजी का लाभ उठाया। उनके नौकर को मिलाकर कोट के उस बटन को, उनके सुप्रीम कोर्ट आने से पहले, कटवा दिया।

जब बहस का समय आया, तो आदतन वह अपने कोट का बटन घुमाना चाहा। लेकिन कोट का बटन अपने स्थान पर न पाकर, उसका सारा केन्द्रीकरण टूट गया।

वह चाहता तो, कोट का दूसरा बटन भी घुमा सकता था। लेकिन उसकी आदत तो बहस के समय निश्चित बटन को ही घुमाने की थी। वह झल्लाकर घबड़ा गया और अपने बौद्धिक कार्यक्षमता को भी भूल बैठा एवं (केस) मुकदमा हार गया। जिस राज घराने का वह (केस) मुकदमा लड़ रहा था, उसे करोड़ों का नुकसान उठाना पड़ा।

वह बैरिस्टर उस कोट के बटन के घुमाने के आदत के कारण शर्मिंदगी और क्षोभ के पश्चाताप में अपने आप को विक्षिप्त महसूस करने लगा। जबकि उस निर्जीव कोट के बटन में तो कुछ नहीं था ! केवल वह उनकी आदत में शामिल हो गया था।

इसलिए बन्धुओं !

हम अपनी आदतों में क्षमा, दया, प्रेम, करुणा का आदत का स्वभाव भी लगा सकते हैं। जो हमारे संस्कार एवं अच्छाइयों को हमारे कर्मबंधन के संस्कार में डाल सकता है ।

हमारे अगले जन्म में भी हमारी आदतें, हमारा स्वभाव बन, हमें उत्कृष्ट नर-नारी का रूप दे सकता है।
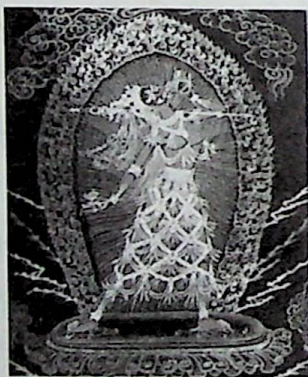
प्रेम

ध्यान प्रेम और प्रार्थना ही हमारी करूणा, मैत्री, मुदिता को एकाकार कर अर्द्धनारीश्वर का रूप दे देती है । हमारी त्रिधारा एकाकार हो, गोमुखी गंगा का स्वरूप ले लेती है ।

हम ध्यान में होते हैं, तो **'मैं'** होने का अहंकार बचा रहता है । लेकिन प्रेममय प्रार्थना में हमारी पूरी स्मिता ही खो जाती है । हम अगर अपने को नहीं बचा पाते ! तो अगला चाहे भगवान ही क्यों न हों ! अपने को नहीं बचा पाते । हम एकाकार हो आनन्दमय स्वरूपा, चिदानन्द का स्वरूप ले लेते हैं ।

राजा राम की गाथा तुलसी दास ने गायी है । लेकिन राजा राम की महत्ता तो शबरी, भरत, केवट, हनुमान, तुलसी दास की प्रेमगाथा, जो भक्ति के रूप में प्रगट हुई, उससे जानी जाती है !

इनके प्रेममय प्रवाह में राम कहाँ उँचे लगते हैं। राम तो केवल राजा होने का दायित्व निभा रहे थे । इन प्रेमी भक्तजनों के भाव, उद्‌गार ने उन्हें अवतारीय पुरुष की श्रेणी में ला खड़ा किया ।

इसलिए बन्धुओं,

हमे ध्यान के शृखंला से भी ऊपर उठकर अपने आस्था, विश्वास को करूणा, मैत्री, मुदिता की त्रिधारा को एकाकार कर प्रार्थनामय प्रेम में समाहित कर देना है !

जहाँ मेरा एक बिन्दु होने का अस्तित्व भी, पूरे भवसागर को अपने अन्दर समाहित कर, हमें अनन्त कर देती है ।

प्रेम तो इतना छोटा सत्य है, जो एक रेणु में समा जाय और रेणु में ही शक्तिरूपा ईश्वर केन्द्रीत होकर समाया हुआ है । प्रेम शब्द तो इतना अछूता है, जो मौन में भी समा जाय और अनकहे शब्दों में भी वह अनन्त तक अपने घेरे में हमें ले ले ।

तीन शरीर की प्राकृतिक भौतिक एवं सूक्ष्मतम संरचना में, प्रेम को हृदय के धड़कन में समाहित भावदशा मानते हैं। लेकिन प्रेम तो हमारे सूक्ष्म शरीर की भावदशा है, जहाँ से यह स्थूल शरीर नियंत्रित होता है ।

अनाहत जो स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर, कारण शरीर का मध्यस्थ बिन्दु है,

वहाँ से अपने आप को खो कर एक बिन्दु में समा जाना ही, हमारी प्रेम की भावदशा का ईश्वरीय स्वरूप है ।

प्रेम शब्द भावनात्मक है। लेकिन इसकी परिधि मानवता के स्पंदन क्षेत्र को बहुत व्यापकता से थामे हुए हैं। हम प्रेम करते हैं, लेकिन उनका मापदण्ड हमारी भावना की व्यवहारिकता पर निर्भर करता है।

हम महावीर जी के मन्दिर में करबद्ध होकर प्रार्थना करते हैं एवं अपनी अभिच्छा की पूर्ति पर प्रसाद चढ़ाने की सौदाबाजी करते हैं, तो यह प्रेम का विशुद्ध रूप तो नहीं है! यह तो एक भौतिकवादी लेन-देन है।

लेकिन प्रेम तो भावना के नींव पर खड़ी है। हम अपनी पत्नी से या प्रेमिका से प्रेम प्रदर्शन का निवेदित रूप प्रदर्शित करते हैं,

लेकिन ज्यादातर वह वासनात्मक एवं कामात्मक नींब पर खड़ी होने की सम्भावना रहती है। इस तरह का प्रेम का लेन-देन तो दोनों तरफ से मानसिक एवं शारीरिक शोषण है।

प्रेम तो एक तरफा अपनी श्रद्धा, अपना विश्वास उड़ेल देने का है, बगैर कुछ अभिच्छा किये। सौदाबाजी तो न प्रेम का रूप है और न भक्ति का रूप है।

जब हममें प्रेम जागेगी तो वही, दया, श्रद्धा, विश्वास, करूणा, मुदिता का स्वरूप होकर हमें ईश्वर से बाँधेगी। चूंकि प्रेम में दो का होना आवश्यक है।

हम गुरु से भी प्रेम करते हैं ! तो क्या श्रद्धा और विश्वास की विशुद्ध भावना है ? गुरु भी हमसे वात्सल्य दिखाते हैं, तो क्या वहाँ लेन-देन के शोषण का व्यापार तो नहीं है?

अगर व्यापार है, तो वह हमें ईश्वर तक कभी नहीं पहुँचने देगी।

चूंकि स्त्री के मुक्ति का रास्ता प्रेम में है। उसे कुण्डलिनी जागरण की और विधियों में न्र जाकर पतिव्रत धर्म का पालन आस्था और विश्वास से करने में मानवता के उच्चतम शिखर पर पहुँचा सकती है एवं विश्वस्तरीय ऊर्जा के स्रोत से भर सकती है।

समुद्र भी पृथ्वी का तीन चौथाई अंश घेरे हुए है। लेकिन हमें प्राकृतिक रूप से कुछ नहीं दे पाता। किनारे से भी तरंगों का ठोकर मारकर कुछ भी बहाकर ले ही जाता है!

लेकिन वही जल जब वाष्पीभूत होकर बादल बनकर पृथ्वी पर बरसता है, तो कण-कण की प्यास बुझा देता है। वही समुद्र, जब पृथ्वी के नीचे धरती पर होता है, तो हमेशा नदियों का जल लेकर तृप्त होता है। जो उसी के जल का बादल के द्रवीभूत होकर, बरसने का स्वरूप है।

ठीक उसी तरह जब हमारी मनोवृत्ति ध्यान की एकाग्रता ग्रहण कर प्रेम का रूप लेती है, तो परिवार समाज क्या? कई राष्ट्रों को अपने घेरे में ले लेती है एवं प्राणी मात्र को तृप्त कर देती है।

हम ध्यान करते हैं, तो **'मैं'** का बोध बचा रहता है! जो हमारे अंहकार स्वरूप में, हमें ईश्वर में समाहित नहीं होने देता! लेकिन प्रेम में तो हम अपनी पूरी अस्मिता ही खो देते है।

हम अपने आत्मविश्वास के साथ करूणा, दया, आस्था और विश्वास को लिए, अपना सारा प्रेम प्राणावान प्राणी पर उढ़ेलकर ही तृप्त हो पाते हैं। हमारी प्रेम की मनोदशा ही बच्चे की तरह निर्मल होकर हमें प्रार्थनामय जीवन दे देता है।

वर्षा भी होती रहे, तो अगर वृक्ष जड़ से नहीं जुड़ी रहे, तो पानी नहीं पी सकता! उसी तरह प्रेममय प्रार्थना अगर तुम नहीं कर पाये, तो ईश्वर से कैसे जुड़ोगे?

हमारा-आपका सारा जीवनचक्र प्रेम से परिपूर्ण है। हमारा हर उद्देश्य प्रेम से जुड़ा हुआ है। हमारे लौकिक, जीवन की सफलता भी प्रेम पर आश्रित है। एक अंग्रेज लेखक ने तो यहाँ तक कह दिया।

I have no mission Except love in this world. My mission is love and my work is love.

इसलिए बन्धुओं !

ध्यान साधना, अगर तुम्हें प्रेम की गहराई तक नहीं ले जा पायेगी, तो तुम अधूरा रहकर अतृप्त ही रहोगे! शबरी-मीरा तो अपने प्रेम को ही राम-कृष्ण पर उडेलकर, मानव समाज को "प्रेम की दासता में भगवान भी बंध जाते हैं" इसका संदेश दे डाला।

कृष्ण-राधा के प्रेम में वशीभूत होकर, नारायण हो गये! भक्ति का मूल केन्द्रबिन्दु तो प्रेम ही है! ब्रह्मास्त्र तो तोड़े जा सकते हैं! लेकिन

प्रेमपाश का टूटना असंभव है एवं यही प्रेमपाश तो नारी का भवसागर से पार उतरने का संबल है!

इसी सिद्धान्त को आधार मानकर ''कुण्डलिनी जागरण द्वार है गृहस्थी'' भाग-प्रथम ''कुण्डलिनी जागरण आधार है, प्राण शक्ति एवं सम्मोहन'' भाग-द्वितीय, ''कुण्डलिनी जागरण उपहार है दिव्यभाव दशा'' भाग- तृतीय लिखि गयी है।

काम-कामेश्वरी की सहजता का भाव भी प्रेम की आधारशिला पर आधारित है। शिव और शक्ति का मिलन भी प्रेम का एकाकार होकर, अर्द्धनारीश्वर हो जाने का स्वरूप हैं।

प्रेम

प्रेम न बारी उपजे, प्रेम न हाट बिकाय !
राजा, प्रजा जेहि रूचे, शीश देहि ले जाय !
पोथी, पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, पंडित हुआ न कोय !
अढ़ाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय !
प्रेम गली अति साँकड़ी, ता में दो न समाई !
जब मैं था तो हरि नहीं, अब मैं हूँ हरि नाहीं !
कबीर बादल प्रेम का, हम पर वरषा आय
अंतर भिगी आत्मा, हरी हुई वनराई !
जिन घटि प्रीति न प्रेमरस, पुनि रसना नहिं राम !
ते नर इस संसार में, उपज भये बेकाम !
राता-माता नाम का, पिया प्रेम अघाय !
मतवाला दीदार का, माँगे मुक्ति बलाय !
अखत कहानी प्रेम की, कछु कही नहिं जाय
गुंगे केरि संकरा, खाय और मुस्काय (कबीर वाणी)

आत्म शक्ति

चित् शक्ति

काकनी

हाकनी
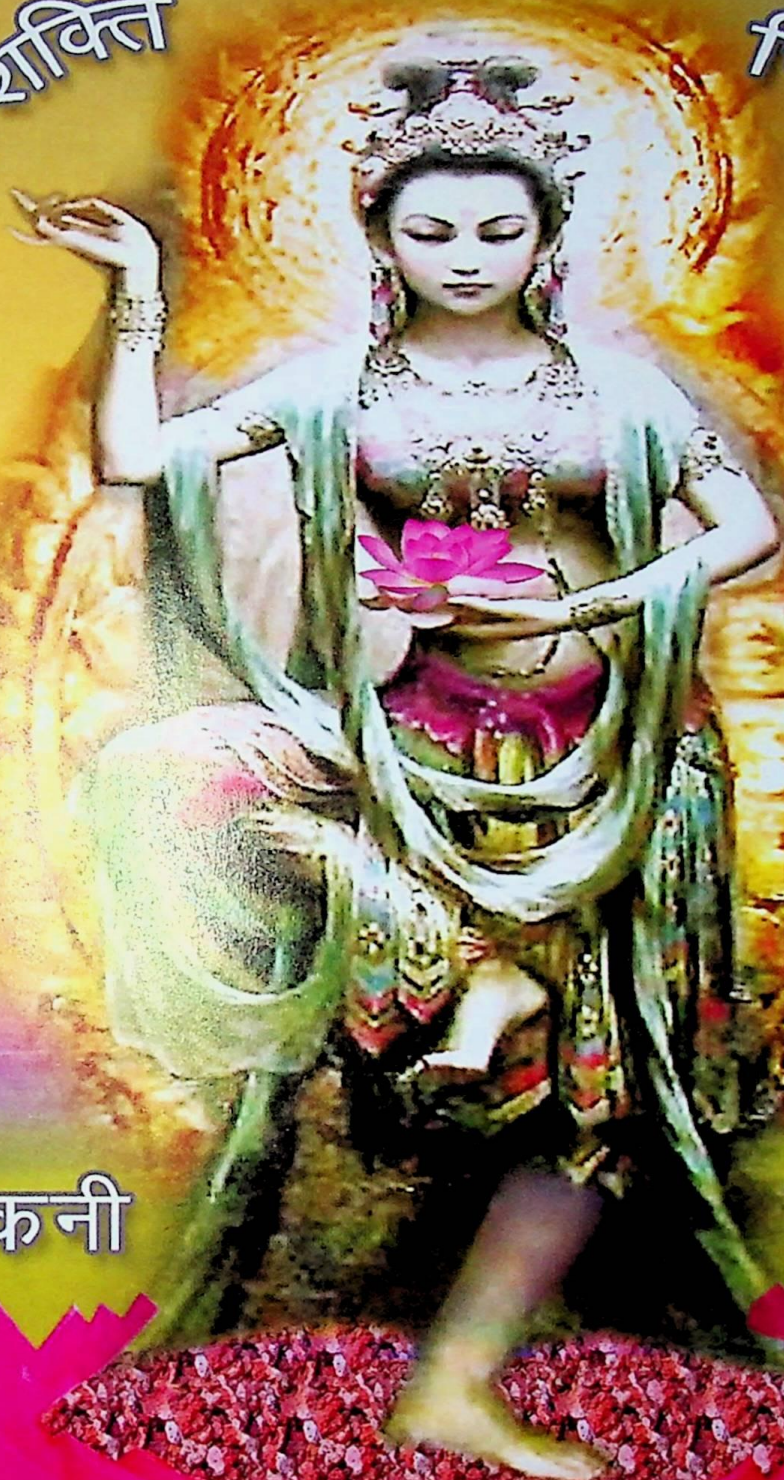
चित्र संख्या- 21

चित्र संख्या- 2

शिव नीचे, शक्ति ऊपर अरुपी
भ० समाधि
चित्र संख्या-23
उड़ीसा १८ वाँ स०
स्पर्श समाधि
बोधि नेत्र
चित्र संख्या-24

कुण्डलिनी साधना
योगिनी का प्रेमपाश
स्पर्श तांत्रिक साधना
चित्र संख्या-25

आवरण चित्र का चित्रण

सहस्त्रदल पर कामक्रीड़ा में सतज् भाव के जो सहस्रदल के चारों ओर उठते कुण्डलिनी की ज्वाला को ऊर्ध्वगति के रूप में दर्शाया गया है वह प्रकृति के चेतन-अचेतन मैथुनी जगत के रूप में ब्रह्माण्ड तक कम्पन्न के रूप में दिखलाया गया है।

काली के दोनों पैर में सर्प का लिपटा श्रृंगार दिखाया गया है, वह मूलाधार पर के सर्पनी का ब्रह्मचक्र के सर्प से मिलन का दृश्य काम कामेश्वरी के क्रियारूप द्वारा दर्शाने का प्रयत्न किया गया है। काली का एक पैर मूलाधार पर है एवं दूसरा पैर अनाहत पर है।

काली के एक हाथ में कमल का पुष्प काम-क्रीड़ा के समय हृदय में उठते, प्रेम,दया एवं करूणा का प्रतीक है। फूल चौथे हाथ में है जो अनाहत केन्द्र का द्योतक है। जो स्त्रियों का मुख्य प्रेम आस्था एवं विश्वास का केन्द्र है।

पहले हाथ में चिमटा एवं सर्प का श्रृंगार कुण्डलिनी जागरण द्वारा वैराग्य एवं जनकल्याण (मुख्य पृष्ठ) का प्रतीक है।

एक हाथ में खड़ग एवं दूसरे हाथ में मुण्ड एवं बांह पर सर्प का श्रृंगार चौथे शरीर मनोमय शरीर में पहुँचे कुण्डलिनी साधक के हंसते-हंसते बलिदान दे देने की प्रवृत एवं योद्धाओं के आत्म बलिदान का प्रतीक है। जो कई जन्मों तक मूण्ड के रूप में काली के गले में उनके हार के रूप में है।

कमर पर हाथ का आवरण साधक के कई जन्मों के कर्मबंधन को काटकर काम क्षेत्र से ज्ञानक्षेत्र में जाने का प्रतीक है।

गले में एक सर्प के लिपटा होने का जो दृश्य दिखलाया गया है। वह काम कामेश्वरी के व्यष्टि से समष्टि का रूप हो जाने पर एकाकार होकर अर्द्धनारीश्वर हो जाने के प्रतीक के रूप में है।

अपलक दृष्टि से देखने का चित्रण साम्भवी मुद्रा में साम्यावस्था आ जाने पर ललाट पर तीसरे नेत्र के खुल जाने का प्रतीक है।

जीभ निकालते काली का दृश्य काम क्रोध लोभ मोह से अपने को हटाकर ब्रह्मरंध्र में केन्द्रीत होने का प्रतीक है। सर पर मुकुट, ब्रह्मरंध्र में केन्द्रीत होने पर ब्रह्माण्ड का सम्पूर्ण राज्य मिल जाने का प्रतीक है।

एक हाथ में नरमुंड जिससे रक्त टपकने पर एक बुन्द रक्त से हजारो रक्तबीज नामक राक्षस के पैदा होन की शास्त्रोक्ति वर्णन है।

यह आपके मानसिक स्थिति में प्रतिक्षण उठते अविवेक एवं विवेक का संघर्ष, जो राम रावण के युद्ध के रूप में आपके लालट पर मन की स्थिति में उठते तरंगो का प्रतीक है।

जो मन:शक्ति का चित्त्शक्ति में बदलकर आत्मशक्ति हो जाने पर साधक का अपने मन के अश्वमेघ यज्ञ कर लेने का प्रतीक है। अश्वमेघ का मतलब है घोड़ा को काट देना।

मेरा मन तो सूर्य के सात घोड़ों के तरह हमारे मूलाधार पर उत्पन्न सप्तरस पर सवार होकर, हमारे सत्तर ग्लैण्ड द्वारा बहत्तर हजार नाड़ियों के स्पंदन से पृथ्वी से ब्रह्माण्ड के पूरे स्पंदन में जाना चाहता है।

उस रक्तबीज को साधक सत्य, अहिंसा, करूणा, मैत्री, मुदिता के खड़ग से काटकर, काली के रूप का जो दिगदर्शन किया गया, जो काली एक प्रतीक के रूप में है। जो हमारी प्राणशक्ति को चित्त्शक्ति में बदलकर आत्मशक्ति का रूप ले लेती हें।

१. **भूचरी** - जो मूलाधार पर कुण्डलिनी जागरण की अवस्था है।

२. **खेचरी** - जो कपाल कुहर के व्योमचक्र में जाने के लिए ललना चक्र का प्रतीक है जो काली के जीभ को लम्बा दिखाकर रक्तबीज को पी लेने का प्रतीक है। यह भी काली विद्या की एक अवस्था है।

३. **चाक्षरी** - कान में उठते ब्रह्माण्डीय उर्जा को ब्रह्मरंध्र तक पहुँचाने का प्रतीक है।

४. **अगोचरी - नेत्र** के आज्ञाचक्र के बीच में स्थित है, जो साम्भवी अवस्था में जाने का प्रतीक है।

(५) **शाम्भवी** - साम्भवी भी काली विद्या है जो हमारे अन्दर प्राणशक्ति से उठती उर्जा को सम्हालने की अवस्था है। इस अवस्था में, ऊपर जल, बीच में रस, एवं नीचे अग्नितत्व को दर्शाने के लिए चित्र में आँख की स्थिति साम्भवी अवस्था में ही दिखलाई गयी है।

यह अवस्था शिव के अपलक ध्यानस्थ होने की भी अवस्था है। जब कुण्डलिनी जागकर षटचक्र का भेदन करती हुई ब्रह्मरंध्र में अवस्थित हो जाती है ।

(६) **उनमनी** – उनमनी अवस्था में साधक सहसत्रार से ब्रह्मचक्र में पहुँचकर निर्वाण की स्थिति में आकर मानवीय सारे कम्पन्न क्षेत्र से ऊपर आकर साक्षीभाव में आ जाता है।

जो मानव के पूर्ण साम्यावस्था का द्योतक है। यहाँ सारी अवस्था एकाकार होकर निराकार हो जाती है। साधक द्रष्टा रह जाता है।

काली के बिखरे बाल साधक के साधना के दुखःगत, सुखगत स्थिति में भी सत्य, अहिंसा, करूणा मैत्री मुदिता से काटे गये काली के खड़ग से टपकते मनरूपी रक्तबीज के खून से सिंचितबाल के धने कम्पन में भी ब्रह्मरंध्र में अवस्थित हो जाने का प्रतीक है।

हमारे ऋषि मुनि तैतीस करोड़ देवताओं का वर्णन कर गये हैं। वे तैतीस करोड़ साधना के मार्ग के प्रतीक हैं। जो हमारे शरीर के सोलह मुख्य नाड़ी, सोलह हजार एक सौ आठ उपनाड़ी एवं बहत्तर हजार सूक्ष्म नाड़ी जो सम्पूर्ण शरीर में मायाजाल की तरह फैली है ।

उसके अलग-अलग कम्पन्न की गति से मूलाधार से ब्रह्मरंध्र तक जाने के मार्ग हैं। देवताओं के रूप अपने भारत वर्ष में ही नहीं विश्व के कई देशों में, जो अलग-अलग मुद्राओं में एवं अलग-अलग ध्यान एवं पूजन विधि के रूप में प्रचलित हैं। वे उनके तमस्, रजस् एवं सतज् भावों के आधार पर हमारे मनिषियों ने अविष्कार किया है।

पहले भी चर्चा कर आया हूँ कि राम, कृष्ण, गौतम, महावीर, क्राइस्ट, मोहम्मद, जितने भी साधक महापुरूष हुए हैं, सभी अपने मार्ग से प्रकृति प्रदत्त सिद्धान्त से अलग-थलग पहले पुरूष है एवं आप भी जगत के प्रकृतिप्रदत्त पूरे सिद्धान्त से ओत-प्रोत पहले व्यक्ति हैं !

इसलिए आप में भी व्योम की हर ऊँचाई को छू लेने की पूर्ण क्षमता है। आप जहाँ खड़ा हैं वहीं से अपनी मानव योनि की उच्चतम यात्रा शुरू कर सकते हैं!

हम तीर्थ स्थलों एवं मूर्तियों पर अक्षत फूल फेंककर अपनी परमगति में जाने की मृगतृष्णा में पड़े हैं। अपने को दानवीर के श्रेणी में लाकर अपने अहंकार के वटवृक्ष में अपने को परमगति का अधिकारी समझ बैठते हैं।

मछली, पवित्र गंगाजल में अपने जीवन का पूर्ण समय बिताकर कई तीर्थ स्थलों का भ्रमण करते हुए समुद्र जैसे महासागर का भी आनन्द ले लेती है। उसके कर्मबंधन जो मछली होने के हैं, वह लाखों योनियों में भटकने के बाद भी अपने जगह पर यथावत बनी रहती है।

हम मनुष्य भी लाखों योनियों के चक्रवात से यह पवित्र तन पाया है।

उठो, सम्भलो, प्रकृति प्रदत्त अपने उपादान को समझो एवं ब्यालिस लाख निकृष्ट योनियों की श्रृंखला को छोड़कर व्यालिस लाख ऊपर की योनियों की यात्रा पर निकल पड़ो?

जिसका सिद्धान्त "कुण्डलिनी जागरण द्वार है गृहस्थी" में मैंने चिंतन, अध्यन और अनुभव एवं प्रकृति प्रदत्त सिद्धान्त के आधार पर आपके सामने प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है।

जो बिल्कुल धर्म (मुख्य पृष्ठ पर) निर्पेक्षता के आधार पर है। इसके अभ्यास का प्रायोगिक रूप 1 से 14 तक के क्रियारूप में देखें एवं सम्पूर्ण कुण्डलिनी जागरण द्वार है गृहस्थी का विवरण पूर्ण पुस्तक में पढ़ें।

प्रकृति प्रदत्त सिद्धान्तों के आधार पर किसी उच्च आत्मा की प्रेरणा से अपने संकल्पित विचार प्रवाह द्वारा लिखी गई यह पुस्तक पढ़कर !

आशा है आप तमस्, रजस्, सतज् के शुद्धतम रूप में आये पाठक साधक बृन्द पुस्तक के सिद्धान्त एवं व्यावहारिक क्रियारूप को समझकर हमारे उद्गार को "ऊँ" रूपा पुष्पक विमान पर चढ़ाकर श्रद्धा प्रेम, मुदिता के सुगन्ध से भरे पुष्प वर्षा का मौका देंगे।

आप आत्मस्वरूपा पाठकवृन्द के प्रेम एवं मुदिता का।

आकांक्षी

आत्मशक्ति चित्शक्ति

चित्र संख्या- 21

यह चित्रण अनाहत से ऊपर अद्धैत क्षेत्र के साधना में काकनी, साकनी, हाकनी के स्वरूप में प्रस्तुत की जा रही है । अनाहत से ऊपर अद्धैत में, वाणी निःशंब्द होकर, पश्यान्ति एवं परा वाणी का कम्पन्न तरंग पकड़, पृथ्वी के गुरूत्वाकर्षण क्षेत्र से ऊपर चली जाती है ।

यहाँ तक कुण्डलिनी तीनों कुण्डल खोलकर थलचर, जलचर, नभचर एवं मनुष्य योनि की संस्कारगत योनियाँ भस्म हो जाती है एवं साधक आत्मशक्ति में अपनी ब्रह्म यात्रा शुरू कर देता है ।

चित्रण में काकनी की काल्पनिक स्वरूप को नृत्य की मुदिता अवस्था में ज्ञानमुद्रा में साधना स्वरूप में दिखलाया जा रहा है । हाथ में गुलाबी रंग का बारह कमलदल का खिला कमल पुष्प है । गले का हार नाभिकुण्ड से ऊपर तक एक अण्डाकार वृत बनाऐं हुए है ।

यह घोतक है कि कुण्डलिनी की अग्नि नाभिकुण्ड के नीचे ताण्डेन बिन्दु पर अपने कम्पन्न तरंग में जलचर एवं नभचर के योनियों को भष्म करती हुई, चौथे मानस शरीर एवं चौथे अनाहत चक्र पर आ जाती है । जहाँ मनुष्य योनि का संस्कारगत योनि चक्र भी टूटने लगता है एवं मनुष्य साधनामय जीवन जी कर द्वैत छोड़, अद्वैत की साधना में लीन हो जाता है ।

हम कहने को तो एकाकार बिन्दु मानते हैं; लेकिन बिना द्वैत का अद्वैत कैसे सम्भव है! अद्वैत के अनाहत और विशुद्धाय के अन्ध बिन्दु (ब्लैकहोल) पर तो ऋण विधुत एवं धन विधुत की प्रतीति तो बनी ही रहती है!

ठीक है! हमारा कम्पन्न तरंग एकाकार बिन्दु में समा, महारेणु की परिधि पकड़ लेता है! लेकिन ब्रह्म का कम्पन्न तो रहता ही है एवं महारेणु के केन्द्रक मे बैठे, शक्तिरूपा ईश्वर तत्व तो पुरूषत्व एवं स्त्रीत्व के रूप में काकनी, साकनी, हाकनी स्वरूप में केन्द्रक बिन्दु की परिधि में संलिप्त तो रहता ही है ।

ऋषि, मनिषि आजतक जितनी भी व्याख्या कर पाये हैं, वह वायुतत्व के मनस शरीर तक ही कर पाये हैं । उससे ऊपर उनकी लेखनी मौन हो गयी । केवल परा वाणी का कम्पन्न तरंग ही सहारा रह गया ।

क्योंकि मनस शरीर से ऊपर शब्दावली एवं बैखरी वाणी की सीमा अलग हो जाती है । हम मृत्यु के बाद जब सूक्ष्म शरीर के गति में प्रेतत्व प्राप्त करते हैं; जो उर्ध्वगमन या अधोगमन का अंधबिन्दु (ब्लैकहोल) है, तो बैखरी वाणी की सीमा समाप्त हो जाती है एवं हमारा प्रेतत्व प्राप्त सूक्ष्म शरीर, हमारे भावना के कम्पन्न तरंग से हमारी प्रबृतियों को पढ़ पाता है या भॉप पाता है ।

प्रेतत्व प्राप्त योनियाँ बैखरी वाणी का तभी प्रयोग कर पाती है जब हमारे श्वसन क्रिया के कम्पन्न तरंग में हमारा प्राणवायु हम पर आवेषित हो जाता है एवं हमारे बैखरी वाणी की अभिव्यक्ति में अपनी ईच्छा शक्ति को बाहर व्यक्त कर पाती है । इन प्रेतत्व प्राप्त आत्मा का कोई दूसरा जगत नही है । यह दूध और पानी की तरह पृथ्वीलोक से ही धुली-मिली है । इनका सूक्ष्म जगत इस पृथ्वी तत्व के प्राणवायु क्षेत्र तक ही है ।

चूँकि पृथ्वी का भारीयतत्व, काम, क्रोध, लोभ, मोह के रूप में- द्वेश, घृणा अहंकार, हत्या या बलात्कार का अधोगति भार, उनके सूक्ष्म शरीर पर एक भारीय वृत बनाए रहता है। इसी प्राण ऊर्जा का रूपान्तरण- सत्य, अहिंसा, प्रेम, क्षमा का स्वरूप पकड़, हमें शान्ति या प्रेम का अग्रदूत बना आनंदमय आत्मस्वरूपा किये रहता है ।

देवी के गले में तीन लड़ी नीचे की ओर एवं मध्य में एक वृताकार परीधि में छोटे से बिन्दु की परिकल्पना की गयी है । यह स्वरूप है, हमारे तीनों लोको के भारीय तत्व को छोड़ अनाहत एवं विशुद्धाय के मनस शरीर एवं आत्म शरीर के अंध बिन्दु पर तीनों लोकों में जन्म-मरण की परिधि छोड़कर, आत्म स्वरूपा हो जाने का। यह बिन्दु पृथ्वी के चार तत्व एवं आकाश तत्व के समन्वय बिन्दु को भी दर्शाता है । विशुद्धाय पर गले में एक हार की माला है । यह प्रतीक है, आत्मगति पाकर ब्रह्मगति पाने हेतु ब्रह्मयात्रा का ।

देवी की आँख की मुद्रा शाम्भवी मुद्रा में है, जहाँ चित्शक्ति ही आत्म शक्ति का स्वरूप पकड़ आत्मा से जुड़ जाती है एवं हम आत्म शक्ति में त्रिकालदर्शी हो जाते हैं ।

पृथ्वी पर हिमालय में चार रंगों में इस स्थूल जगत में कमलपुष्प पाया जाता है । गुलाबी, नीलवर्ण, पीतवर्ण एवं सफेद । गुलाबी अनाहत, नीलवर्ण विशुद्धाय,

पीतवर्ण आज्ञा चक्र एवं श्वेतवर्ण ब्रह्मरंध्र के प्रतीक में साधनामय जीवन का प्रतीक है ।

देवी को सहस्त्र कमल दल पर मुदिता अवस्था में नृत्य की भंगिमा में दिखलाया जा रहा है । यह काकनी, साकनी, हाकनी सभी शक्तिरूपा देवी स्वरूप के शिव में एकाकार हो, शिव शक्ति का स्वरूप पकड़ आदिशक्ति का स्वरूप पकड़ लेने के स्वरूप में है ।

शिव-शक्ति तांत्रिक साधना सूत्र

चित्र संख्या- 22

यह चित्रण खजुराहो के खंडालिया शिव मंदिर में 950 से 1050 शां० के बीच खुदे, सौ चित्रों की श्रेणी से लिया गया है । हम इसको केवल कामुक्ता के दृष्टि से देख पा रहे हैं । लेकिन चित्रण तो सृष्टि के नींव में स्थिति मैथुनी जगत का है। चित्र में नर और मादा स्वरूप में देवी-देवता के रूप में शिव शक्ति के स्वरूप में दर्शाया गया है । जो शिव शक्ति इस चराचर विश्व में ही नहीं, पूरे ब्रह्माण्ड में एक दूसरे के आकर्षण में चक्रवातीय गति थामे हुए है ।

इन्हीं चित्रों के प्रतीति में भगसमाधि एवं स्पर्श समाधि चित्र संख्या- 5, 7, 23, 24 एवं 25 में बर्णन कर कुण्डलिनी जागरण से उर्ध्वगति पा कर- थलचर, जलचर, नभचर, से मुक्ति के रास्ते को साधनामय जीवन द्वारा प्राप्त करने की विधियाँ बतायी गयी है ।

इस शिव शक्ति का ऊर्जाक्षेत्र हम सबों में व्याप्त है । लेकिन हमारी मानसिकता-अंधवासना, क्रोध, द्वेश, हिंसा, अभिमान के परत-दरपरत झुलसते कामाग्नि में हमने अपनी अस्मिता खो दिया है !

हम सदगृहस्थ परिवार में- प्रेम, आस्था, विश्वास की पूरी सम्भावना है । लेकिन हमारा वासनात्मक जीवन हमें उर्ध्वगति की ओर जाने नहीं दे रहा है एवं हमारी सारी ऊर्जा अधोगति की ओर बह रही है ।

इसी चित्र के चित्रण में चित्र संख्या-16 में विस्तार से वर्णन किया गया है । चित्र का स्वरूप कुण्डलिनी जागरण से आत्मगति प्राप्त कर चित्शक्ति से स्थितिप्रज्ञ हो जाने के स्वरूप में है ।

भग समाधि

शिव नीचे एवं शक्ति ऊपर की अरणी

चित्र संख्या-23

इस शिव-शक्ति के मिलन को प्रकृति ने प्रेम का नैसर्गिक रूप देकर सृष्टि का मूल कारण माना है एवं थलचर, जलचर, नभचर की योनियों से सदा के लिए मुक्ति के उपाय में, इस **भग समाधि** को सिद्धासन स्वरूप में माना गया है ।

काली स्वरूप देवी के गले में नरमुण्ड की माला, हमारे सैकड़ों जन्म के बलिदानी स्वरूप को दर्शाता है।

इस भग समाधि में शिव को योगनिन्द्रा के स्वरूप में आँख की स्थिति शाम्भवी मुद्रा में दिखलाई जा रही है। जो इस समाधि के सिद्धासन स्वरूप में है । शिव को नीचे की अरणी एवं काली स्वरूपा देवी को ऊपर की अरणी के स्वरूप में दिखलाया जा रहा है ।

यह सृष्टि के धन विद्युत एवं ऋण विद्युत के मिलन बिन्दु पर, एक प्रकाशीय आभा के घेरे में शिव-शक्ति को दिखलाया जा रहा है । काली भी योनिक मुद्रा में आसिन नीचे के दोनों हाथ की मुद्रा सिद्धासन की स्थिति में बनाए हुए है । एक हाथ आर्शिवाद के लिए उठा हुआ है एवं दूसरा हाथ तलवार लिए है।

यह द्योतक है कि काम, क्रोध, मोह, दुष्टता, अभिमान, भय को जबतक अपने- करूणा, मैत्री, मुदिता की नैसर्गिक तलवार से नही ंकाट डाला जाय, तब तक हम तृप्ति की भावदशा नहीं बना सकते है। न ही इन भारीय प्रवृतियों को अपने नैसर्गिक भावदशा द्वारा काटे वगैर, अपने आप को प्रकृति के अमुल्य वरदान से भर सकते हैं !

शंकर और काली को युवावस्था की यौवनावस्था में दिखलाया जा रहा है। फुल की कली में कोई सुगन्ध नहीं होता । युवावस्था में जब हम सूक्ष्म शरीर के मनःशरीर की स्थिति में होते हैं, तो प्रकृति के सारे मानसिक आत्मिक सुगन्ध हमारे आचरण एवं बिचारों की भावदशा में भरने लगता है।

अनाहत पर रूपवान युवक स्वरूप शंकर के रूप में शंकर एवं रूपगर्विता स्वरूप में काकनी देवी को चार मुख के स्वरूप में अस्त्र-शस्त्र धारण किये पिछले चित्रों में दिखलाया गया है। चूँकि हमारी स्थूल शरीर की प्राकृतिक गति में जब

मानस शरीर से ऊपर, हमारी बीज रूप में प्राकृतिक गति या साधनामय जीवन से दिव्यज्योति स्वरूपा मेरा आत्मस्वरूप हमें प्राप्त हो जाता है, तो वायुतत्व की सीमा समाप्त हो, आकाश तत्व की सीमा शुरू होती है ।

हम यौवनकाल के सुगन्धमय काम एवं वासना रहित **भग समाधि** में अपना आत्मदर्शन कर अर्द्धनारीश्वर का स्वरूप पकड़ सकते है। जहाँ से योनिगत नर-नारी का धन एवं ऋण विद्युत एकाकार हो, महारेणु के नाभिक में छिपे ईश्वर की परिधि में प्रवेश कर सकते हैं ।

इसी **भग समाधि** के स्वरूप में चित्र-7 एवं स्पर्श समाधि के रूप में चित्र संख्या 5 एवं 24 में, पुस्तक में कई जगह कुण्डलिनी जागरण कर, अपना ज्योतिर्मय आत्मस्वरूप प्राप्त करने के लिए समाधियों की व्याख्या की गई है ।

जिसमें पन्द्रह मिनट में पशु भावदशा से, आधा घंटा में वीर भावदशा से एवं तीन घंटा की योगनिद्रा की योनिक मुद्रा की सिद्धावस्था में, कामक्षेत्र से ज्ञान क्षेत्र के परम उपलब्धि के मुक्ति स्वरूप में व्याख्या का प्रयत्न किया गया है ।

इस योगनिद्रा की भग समाधि एवं स्पर्श समाधि की स्थिति में हमारे पुरूषत्व एवं स्त्रीत्व के धन एवं ऋण विद्युत के प्रकाश तरंग में सूक्ष्मतम अण्डाकार आभामंडल का वलय तैयार होता है, जो पृथ्वी के अण्डाकार चुम्बकीय तरंग से बाहर निकल, ॐ के छत्तीस कम्पन्न लोको की ओर, सूक्ष्म प्रकाश तरंग गति में सूक्ष्म आत्मगति हममें पैदा कर देती है।

नाभिक विस्फोट की तरह कुण्डलिनी गति नाभिकुण्ड के ताण्डेन बिन्दु पर अपना सूक्ष्मतम विस्फोट पैदाकर, मूलाधार से अपना आकाश बदल, उर्ध्वगामी होकर, सूक्ष्म शरीर के नियंत्रण कक्ष में प्रवेश कर जाता है ।

हम पृथ्वी तत्व, जल तत्व, अग्नि तत्व, वायु तत्व का आकाश छोड़ते हुए, अंतरिक्ष के आकाश तत्व में समाहित होने लगते हैं । हमारी आत्मगति अनाहत से ऊपर जाकर- ब्रह्मलोक, शिवलोक की स्थिति पार करते हुए, विष्णुरंध्र के विष्णुलोक में समा जाती है ।

स्पर्श समाधि

योगनि का प्रेमपाश

चित्र संख्या-24 एवं 25

यह चित्रण तांत्रिक विधि में केवल नारी अंगो के स्पर्श से चुम्बकीय विद्युत तरंग के रूप में दर्शायी जा रही है। क्योंकि पुरूष का विद्युतीय पोल (छोर) उनके चक्रो पर नारी के विद्युतीय पोल (छोर) के चक्रों के आकर्षण पोल पर ऋण एवं धन विद्युत के रूप में सर्किट (परिधि) पूरा करता है ।

लेकिन यह तभी सम्भव है, जब मन की गति श्वासों के गति द्वारा नियंत्रित हो । चित्र संख्या क के स्पर्श तांत्रिक साधना में तांत्रिक के आँख की कौरनियाँ चढ़ी हुई हैं । जो आज्ञाचक्र पर बल डालकर तामसिक साधना के जोतक में है ।

चूँकि तंत्र साधना में आँख की कौरनियाँ आकाशी स्थिति में लाकर ही, स्वशन क्रिया गति नियंत्रित की गति पैदा की जाती है । एवं श्वॉस के कम्पन्न पर शब्द टंकार के ध्वनि तरंग द्वारा ओठो पर कम्पन्न पैदाकर पूरे शरीर के नस, नाड़ियों, कोषाओं को इस ध्वनि तरंग में तरंगायित किया जाता है ।

जो तरंग, एकाग्रचित मनःस्थिति से चित की भावदशा तैयार करती है । किसी भी साधना में भावदशा का ही महत्व है । क्योंकि कोई भावदशा हृदय पर ही अपना कम्पन्न तरंग केन्द्रीत करती है ।

हम चित्रों में देख रहे हैं, कि ओठों को चुम्बन की स्थिति में रखा गया है। यह चुम्बन की स्थिति हम व्यवहारिक ज्ञान से भी जानते हैं, कि प्रेम सम्बाहन का मुख्य केन्द्र है । माँ बच्चे को भी चुम्बन लेती है, लेकिन उनमें वातसल्य की भावना होती है । पाश्चात्य देशो में हाथ का चुम्बन लिया जाता है, जो मित्रता के प्रेमस्वरूप में है ।

लेकिन प्रेयसी या पत्नी का चुम्बन तो हमारे काम ऊर्जा पर सीधा आघात करता है । चुम्बन में होठो का मिलन भी एक यौन आकर्षण पैदा करता है । चुम्बन में होठों का प्रयोग दो आकर्षण के घनात्मक एवं ऋणात्मक कामबिन्दुओं के मिलन से नैसर्गिक प्रेम संवाद को पूरा करता है ।

जरूरत है, इसके स्वरूप को समझने की ! वासना की स्थिति में

हम होठों का चुम्बन ही नहीं लेते, वरन सम्पूर्ण शरीर में वर्जित क्षेत्र का भी चुम्बन ले लेते हैं; जो हमारी वासना की आग को भड़का कर कामोत्तेजना की तामसिक स्थिति पैदा करती है ।

लेकिन तंत्रशास्त्र में इसको नैसर्गिक प्रेम के स्वरूप में ही प्रयोग किया जा सकता है ।

चूंकि चुम्बन से कामवासना की आग अगर भड़केगी, तो हमारे श्वॉसों की गति नाभिकुण्ड के ताण्डेन बिन्दु पर नहीं जाकर वक्ष (छाती) से चलने लगेगी। जब ही श्वॉस की गति तेज होगी तो हमारी वासनात्मक काम अग्नि ही सामने उभर कर आयेगी और हम अपने उद्देश्य के केन्द्र बिन्दु से भटक जायेगें ।

भगसमाधि या स्पर्शसमाधि में अगर हमारी मनोदशा प्रेमात्मक एवं भावनात्मक नही रहेगी, तो हमारी यह भावनात्मक भूल हमें दुष्परिणाम दे सकती है !

क्योंकि कुण्डलिनी जागरण एटमिक (परमाणु) विस्फोट की तरह एक परमाणु बम सदृश्य विस्फोट है । जो इस स्थूल शरीर की गति से सूक्ष्म शरीर की गति में जाने हेतु मूलाधार पर एक भावनात्मक प्रयोग है। जहाँ हमारी सारी जन्मगत योनियों की प्रारंभिक योनि चक्र का संग्राहालय है। इसको तुच्छ दृष्टि से नहीं देखा जा सकता है।

चूँकि जो सूक्ष्म शरीर, आत्मा का भार लिए, चितशक्ति से मनःशक्ति का नियंत्रण कर पूरे सृष्टि के इस चक्रवात को थामें हुए है, उसमें प्रवेश साधारण प्रक्रिया नहीं हो सकती है ।

अगर साधारण प्रक्रिया होती, तो लाखो मानव योनि में जन्म लेने वाले मानव समाज कभी का थलचर, जलचर एवं नभचर की अधोगति योनियों से मुक्त हो चुकी होती ।

लेकिन हम देख रहे हैं कि निकृष्ट योनियों का अनुपात मच्छर, कीड़े, मकोड़े, जानवर में ज्यादा बढ़ रही है। क्योंकि हमारी मनोदशा कामुकता के तपस् बिन्दु से नीचे ही जा पा रही है।

हम अपने कर्तव्यों का दोहन स्वयं काम ऊर्जा के तपस् में कर लेते हैं। हमारी काम ऊर्जा की तपस् हमें इन निकृष्ट योनियों के आत्माओं

से ऊपर की आत्माओं को नियंत्रण नहीं दे पाती है ।

नतीजा सामने है । हम महाभारत काल एवं रामायण काल के उन्नत शिखर पर पहुँचे, मानव योनि को अपने वासनात्मक दावानल में जला, तीसरी महायुद्ध की विभीषिका के कगार पर पहुँच रहे हैं ।

इसलिए चित्रित प्रयोग के करने में केवल हमारी प्रेमपूर्ण भावदशा में हमारी श्वसनगति नाभिकुण्ड के ताण्डेन बिन्दु पर पहुँच रही हो, तो ही यह कामात्मक आणविक विष्फोट हमें ईश्वर प्राप्ति के ब्रह्मबिन्दु पर ले जायेगा।

चित्र संख्या 24 में जो स्पर्श समाधि का रूप है, वह गौतमकाल के बौध तंत्र के स्वरूप में है। गौतम बुद्ध छः साल तक कई गुरूओं के पास जाकर, ईश्वर प्राप्ति के केन्द्र बिन्दु को जानने हेतु उनके बताये तपचर्या को विधिवत् पूरा किया । छः साल के बाद जब उन्हें किसी भी गुरूओं के बताए मार्ग से तृप्ति नहीं मिली तो, पीपल स्वरूप के बौधिवृक्ष के नीचे बैठकर ध्यान, समाधि लगाने लगे एवं शेष छः वर्ष की ध्यान, समाधिक स्थिति में मन की तरंग को नाभिकुण्ड के नमनियता बिन्दु में लाने में सफल हुए।

लेकिन चित्रित चित्रण, उनके बौध तंत्र के सतज् भावदशा के चित्रण में दिखलाया जा रहा है । कामिनी के स्पर्श समाधि में उनकी आँख की मुद्रा शाम्भवी एवं आसन सिद्धासन समाधि की मुद्रा की स्थिति में है।

आँख की शाम्भवी मुद्रा तभी लग सकती है, जब मनःकेन्द्र, आज्ञा चक्र पर भारीय भावना संग्रहित नही हो। भारीय भावना तभी आज्ञा चक्र पर संग्रहित नहीं हो सकती है !

जब हमारे प्राणवायु पर तमस् भाव का भार बिलकूल नहीं हो । तमस् भाव के योनिगत श्रेणी में ही थलचर, जलचर, नभचर की योनियाँ है । रजस् भाव से सतज्भाव की श्रृंखला में हमारा मानव योनि है, जो क्रमबंध्दता योनि में हमें केवल सात बार मिलना है !

इसलिए इस उत्कर्ष की मानव योनि को जबतक हम प्रेम की भावदशा में नहीं ले आयें, तबतक इसकी उर्ध्वगमन की कामना कैसे कर सकते हैं !

हमारे प्राण ऊर्जा के ग्राहकता में ध्राण शक्ति का भी बहुत बड़ा महत्व है । सुगन्ध एवं दुर्गन्ध की भूमिका उसी तरह है, जैसे प्रेम-घृणा,

सत्य-असत्य, अहिंसा-हिंसा में है । प्राणवायु के द्वारा ही हम प्राण संरचना की गति में सुगन्ध-दुर्गन्ध को ग्रहण कर लेते हैं ।

लेकिन हमारे सारे शरीर के अंगो में गंध की व्यापक्ता है । जो धंनजय प्राण के स्पर्श ज्ञान एवं प्राणशक्ति के गंधज्ञान द्वारा हमारे इन्द्रियों की व्यापक्ता को थामे हुए है ।

इन तांत्रिक प्रयोगों में कामोतेजक औषधियों एवं होमादी आदि, सभी सुगन्धित वस्तुओं से बनी होती है। जिसका सुगन्ध हमारे कामक्षेत्र पर प्राणवायु द्वारा ही आधात करता है एवं हमारे मनोविचारों की श्रृंखला को समन्वय बिन्दु पर लाता है।

हमारे शरीर के प्रत्येक अंगो का गंध अलग-अलग होता है । लेकिन नैसर्गिक प्रेम की भावदशा में हमारा शारीरिक गंध, मानसिक सुगन्ध का रूप पकड़, हमारे भारीय विजातिय तत्वों को निष्काषित कर देता है। प्रेम और भक्ति की भावदशा में हमारे शरीर और मन की सुगन्ध भी एक अवर्चनिय नैसर्गिक स्वरूप पकड़ लेता है।

अतः हम अपने स्पर्श समाधि या भग समाधि में, बनावटी सुगन्धित वस्तुओं का प्रयोग नहीं करें! प्रकृतिप्रदत्त सुगन्ध और आत्मियता का सुगन्ध ही हमारे समाधिस्थ मनोदशा को व्यवस्थित कर, हमें सिद्धासन पर बैठा सकता है ।

चाहे जड़ी-बुटी का सुगन्ध हो या आत्मियता का सुगन्ध, वह तो पृथ्वी के निर्माण गति में पंचतत्व से ही आता है! हमारा शारीरिक एवं आत्मिक निर्माण भी पंचतत्व से है! हमारे आन्तरिक सद्भावना प्रेम भक्ति, ध्यान, समाधि से ही हमारी अन्तरात्मा का सुगन्ध-प्रेम, सत्य, अहिंसा के रूप में होने पर निर्झरा झरने की तरह हमारी आत्मगति में हमारे परिवार, हमारे समाज, हमारे राष्ट्र को सुवासित कर सकता है।

इसलिए हमें अपने भावना के सुगन्ध में अपना प्रेममय जीवन गति चलाना चाहिए । ताकि हमारा आत्मिक सुगन्ध इस थलचर, जलचर, नभचर के अधोगति की योनियों से निकलने की सीढ़ी बन सके !

इन चित्रों का चित्रण चित्र संख्या 5 में भी वृहत ढ़ंग से की गयी है ।

समुद्र मथन मैथुनीगति

द्वापर के द्वार पर खड़ा महाभारत का युद्ध आज के आणविक युग से कहीं ज्यादा प्रखर एवं प्रभावी था । महाभारत के चित्रों एवं लड़े गये संस्मरण देखने से ऐसा लगता है कि, किसी भी योद्धा के पास कंधे पर धनुषबाण और तरकश के अलावे रथ पर पीछे में कोई भी युद्ध सामग्री नहीं होती थी ।

पूरे दिन की लड़ाई में लाखो तीरें चलती थी। ये क्या राज था कि कोई पाशुपास्त्र छोड़ता था तो कोई ब्रह्मास्त्र छोड़ता था।

ज्यादातर योद्धाओं में कई शादियाँ करने की प्रथा थी स्यंवर विधि से।

कृष्ण की रानियों की क्या कहें, अर्जुन की भी चार शादियाँ थी। फिर इन दोनों को कौन सी शक्ति ने, उन्हें नर एवं नारायण बना दिया ? गीता जैसे दिव्य वाणी ग्रन्थ को कैसे कृष्ण उद्भाषित कर पाये ?

मेरी विवेचना है कि महाभारत काल में आणविक युद्ध बहुत ही प्रखरता से हुआ होगा। अध्यात्म की इतनी ऊँचाई थी कि एक बाण ही हजारो बाणों में आघात करती थी और लौटकर तरकश में चली आती थी। जिसको "रिपु" विद्या कहते हैं।

अठारह अक्षौहिणीं सेना यानी अठारह करोड़ सेना ने बीरगति पाई थी। वीर अभिमन्यू, और घटोत्कच की मायावी लड़ाई एक मिशाल छोड़ गई।

बर्बरीक ने तो तीन बाण में पूरे युद्ध को समाप्त करने की पेशकश कृष्ण से की थी। ऐसा भी नहीं था, कि सभी योद्धा जंगलो में जाकर तपस्या कर रहे थे। गुरूकुल की प्रथा जरूर थी।

जितने महायोद्धा थे सभी राज परिवार में एवं राजपद से विभूषित थे। तो कौन सी शक्ति ने इन्हें इतना प्रखर और तेजस्वी बना दिया?

कुण्डलिनी शक्ति की साधना की प्रखरता समझ में आती है। लेकिन कृष्ण ने केवल अष्टांग योग की चर्चा की, जो ऋषि मुनियों की योग साधना है।

फिर क्यों नहीं प्रधानता दी इस **विहंगम मार्ग एवं पिपालिका मार्ग** की। जिसकी चर्चा मैं कुण्डालिनी जागरण के लिए करने जा रहा हूँ।

उस समय देश अठारह करोड़ विधवाओं से भर गया था। स्वभाविक है लोग संस्कार विहीन हो गये होंगे। विहंगम मार्ग और पिपालिका मार्ग में सभ्य और नियंत्रित समाज की जरूरत थी।

क्योंकि यह साधना काम वासना की नहीं काम कला की साधना थी। अगर ये विद्या उस समय सर्व साधारण के पास रह जाती, तो समाज घोर पतन के द्वार पर खड़ा हो जाता ।

कुण्डलिनी जागरण की दो गतियाँ है। **(क) अधोगति (ख) उर्ध्वगति।** अधोगति की स्थिति में साधक डायन या तांत्रिक मांत्रिक बन जाय लेकिन उर्ध्वगति की स्थिति में कृष्ण और अर्जुन जैसे, नर से नारायण बनने की संभावनाएँ भरी पड़ी है।

कुछ चित्र जो हमारे मानस पटल पर अनादिकाल से चित्रित हैं। उनकी विवेचना करें तो बातें स्पष्टतः परिभाषित होने लगता है।

पहला चित्र हम सागर मथन का लेते हैं। मन्द्राचल पर्वत को सागर में मथानी की तरह कच्छप का आधार देकर, उसमें वासुकि नाग को साढ़े तीन फेरा का वलय देकर मुख की तरफ असुर और पूँछ की तरफ से देवता खींच रहे हैं। श्री हरिविष्णु ऊपर विराज रहे हैं। (चित्र संख्या-44) में देखें ।

सागर मंथन से 11 प्रकार के सुखोपभोग एवं जीवों तथा जगत के कल्याण के लिए विशिष्ट तत्व निकलते हैं। जिन तत्वों के अभाव में जीव को अपने लक्ष्य से भटका कर पथ विरगत कर दिया था।

(1) प्रथमतः - श्री लक्ष्मी का प्रार्दुभाव - जिस लक्ष्मी के अभाव में जगत पंगु बनकर रह जाता है।

(2) कौस्तुक मणि - जिसके प्रभाव से (आलोक में) अदृश्य दृश्य होता है। ज्ञान के प्रकाश का प्रतीक।

(3) रंभा अप्सरा - कामकला का प्रतीक स्वरूप।

(4) वारूणि (मन्दिरा)- मादक तत्व जो भ्रमित कर दें।

(5) अमृत कलश- जो जीव को मृत्यु से मुक्त कर दें।

(6) शंख (पांचजन्य) - जिन पांच तत्वों के द्वारा जीव की निर्माण प्रक्रिया पाँचों तत्वों के मिलने के बाद ही जीव में प्राण तत्व का समावेश होता है एवं शब्द ब्रह्म निर्मित होता है। जब तक इन पाँचों का समाहार नहीं होगा शरीर जीवंत जागृत नहीं होगा और शब्द का घोष नहीं होगा। शब्द घोष के अभाव में जीव मृतक के समान है। जो नहीं बोलता है, उसे शब कहते हैं। जिसमें टंकार है वह जागृत है।

(7) **गजराज ऐरावत हाथी सात सूड़वाला** - बल या मद का प्रतीक।

(8) **कल्पतऊ** - कामना का द्वार, ईच्छा शक्ति, इच्छाशक्ति के द्वारा कामना सफल होती है। मनःशक्ति का कोष, इसके अभाव में कार्य होना संभव नहीं होगा।

(9) **शशी - चंद्रमा-** इसके अभाव में कार्य होना संभव नहीं है। शीतलता शान्ति, संयम का प्रतीक जोश ही नहीं होश भी। जोश के साथ होश रहे तो नुकसान की संभावना कम है। सिर्फ जोश ही हो तो नुकसान की संभावना अधिक है।

(10) **कामधेनु** - कामनाओं की परिपूर्णता हेतु प्रयास का प्रतीक, जीव प्रयास करें तो उसमें ब्रह्मभाव जागृत हो सकता है।

(11) **धन्वन्तरि वैद्य-** प्रकृति के कल्याण परक तत्वों के परिचायक के रूप में उनसे लाभ लेने संबधी ज्ञान का प्रतीक है।

(12) **विष (गरल)** - ऐसा तत्व जो प्रकृति को संचालित रख सके, उसे अभिभूत कर सबों का कल्याण कर सके।

(13) **धनु/धुनष** - बल पराक्रम का प्रतीक है लेकिन समयाकुल।

(14) **उच्चैश्रवा-** घोड़ा वेग का प्रतीक। प्रकृति के सूक्ष्म से सूक्ष्म स्पंदन कम्पन्न को ग्रहण करने वाला तत्व और उस पर शीध्रातीशीघ्र अमल करने का गुण।

समुद्र मथन से निकलने वाले उपलब्धि की व्याख्या।

धनवन्तरी बैद्य - जो सुषुम्ना नाड़ी का प्रतीक है। यह हमारे मूलाधार से उठती एक ऊर्जा का प्रतीक है। जो दिखलाई तो नहीं देता लेकिन ऊर्जा स्रोत का ब्रह्मरंध्र तक आवागमन का ब्रह्माण्डिय स्रोत है। यह मेरूडण्ड के पोले भाग में गमन करती है।

जब बन्दूक की गोली बारूद के विस्फोट से आगे बढ़ती है तो नाल में राउन्ड लगाते हुए फिर सीधी चलती है। उसी तरह जब मूलाधार से सर्पिनी के जागने पर ऊर्जा स्रोत ऊपर उठती है। शुरू में गोलाकार और फिर बाद में अनाहत चक्र के बाद सीधी मेरूडण्ड के अन्दर के पोले भाग से विद्गूत गति से ऊपर ब्रह्मरंध्र में क्षिरसागर में विष्णु के शैया बने हजार फन वाले नाग से मिलने के लिए उर्ध्व गति से आगे बढ़ जाती है।

(2)(क) अश्वनी कुमार (ख) अश्कन्द कुमार-प्राण उर्जा के साथ।

यह मूलाधार से उठते सुषुम्ना के दोनो तरफ से नाड़ी स्पदन्न की गति को कायम रखने वाले ईंग्ला और पिंगला नाड़ी का प्रतीक है।

गणेश की दो पत्नि ऋद्धि और सिद्धि का भी प्रतीक है। हम यों तो सॉस लिए जा रहे हैं। लेकिन दोनों साँसों को नियंत्रित और व्यवस्थित ढ़ंग से लें तो ब्रह्माण्ड के अगम भंडार में असाधारण उर्जा का स्रोत बन सकते है।

इन दोनों सॉसो के नियमन से जब साम्यावस्था प्राप्त होती है, तब सुषुम्ना में ऊर्जा का प्रवाह प्रबल होता है।

(३) ऐरावत हाथी

जब हम भोजन और पानी ग्रहण करते हैं तो वह सप्त धातु का रूप मूलाधार पर ही लेती है। सप्तधातु तैयार होकर **69 ग्लैण्ड** के द्वारा शरीर के जिस अंग को जैसी जरूरत होती है, वैसी उर्जा प्रदान करती है ।

हमारे शरीर में अवस्थित **97 कर्मबन्धन** के गाँठ को वैसी ही ऊर्जा प्रदान करती है जैसी हमारी मानसिक एवं भौतिक सुख की श्रृंखला चले ।

(४) **उच्चैश्रवा घोड़ा** - यह मेरे मन का प्रतीक है। आज्ञाचक्र पर मन भौतिक और आध्यात्मिक दोनों विभुओं का राजा बना बैठा है। आज्ञाचक्र के सामने मेरा पूरा संसार है और आज्ञाचक्र के पीछे के सिंहासन पर बैठे मन का राज्य अनन्त सौर मंडल की विभूतियों से भरा है।

मन प्रति तीन मिनट में अपने दृश्य को बदल लेता है। उसकी सोच उच्चैश्रवा घोड़े की तरह अभूतपूर्व चाल में चलती है। मन की खिड़की एक सेकेन्ड के हजारवां भाग में भी खुल जाय तो अभूतपूर्व चमत्कार मनुष्य के जीवन में हो जाय।

खिड़की तभी खुल पाती है जब सांसो की गति साम्यावस्था में आ जाय। साम्यावस्था का मन आपके संकल्पशक्ति को तीर की तरह निर्दिष्ट लक्ष्य को भेद डालता है।

साम्यावस्था में आये मन को तो मनःशक्ति कहते हैं। तांत्रिक वहिर्मुखी होकर मनःशक्ति जगाता है। लेकिन ध्यानी साधक अन्तर्मुखी होकर अपनी मनःशक्ति जगाता है।

अश्वमेघ यज्ञ की चर्चा की गयी है। क्या यज्ञ में घोड़े को काटा जाता था ? मन की साम्यावस्था ही अवश्वमेघ यज्ञ है।

इस उच्चैश्रवा घोड़ा रूपी मन को साम्यावस्था में लाने पर मुनि, ऋषि की आत्मा जो लक्ष्मी रूप में हृदय में बैठी है, ब्रह्मरंध्र में बैठे विष्णु के चरण में जाकर बैठ जाती है एवं परमशून्य की स्थिति पैदा करती है।

यहाँ मियां बीबी राजी तो क्या करेगा काजी की कहावत चरितार्थ होती है।

मन की मौत यानी आत्मा और परमात्मा का मिलन, यानी शिव और शक्ति का मिलन, यानी कुण्डलिनी में बैठी सर्पिनी का और ब्रह्मरंध्र में बैठे शेषनाग का मिलन। यह कुण्डलिनी जागरण की मूलभित्ति है।

सुरपुर के भगवान

युग-युग से हम खोज रहे हैं, सुरपुर के भगवान को !

जिनको न खोजा अबतक हमने, धरती के इन्सान को !

चर्चा ब्रह्मज्ञान की करते, किन्तु पाप से कभी न डरते !

राम नाम जपते हैं दूख में, साथी हैं रावण के सुख में !

लकड़ी पूजी, लोहा पूजा, पूजा है पाषाण को !

युग-युग से हम खोज रहें हैं, सुरपुर के भगवान को

शबरी केवट के गुण गाये, बहुत रीझकर अश्रु वहाये !

पर जब हरि का भोग लगाया, तब सब को दूतकार भगाया !

तिलक लगाकर अपने पुर में, पाला है शैतान को !

युग-युग से हम खोज रहे हैं, सुरपुर के भगवान को !

खोजा मंदिर, मस्जिद, गिरजे, अनगिनतें पमरेश्वर सृरजे !

किन्तु कभी ईमान न खोजा, कभी खेत खलिहान न खोजा !

दूनिया के मेले में देखा, नित नये समान को !

युग-युग से हम खोज रहे हैं, सुरपुर के भगवान को !

खोजा हमने जिसे भजन में, छीपा रहा वह तो क्रन्दन में !

हमने नीस दिन धर्म बखाना, लेकिन कर्म नहीं पहचाना !

पैसा पाया, प्रतिभा पाई, पाया है विज्ञान को !

युग-युग से हम खोज रहे हैं, सुरपुर के भगवान को !

बिष एवं अमृत

(5) बिष

(6) अमृत -

समुद्र मथन में जब बिष निकलने की बात आती है तो संसार को बचाने के लिए शिव को बिषपान करना पड़ता है। यह प्रतीक बिष और अमृत दोनों के निकलने की व्याख्या साथ-साथ करके प्रस्तुत किया गया है।

मनुष्य के मस्तिष्क का हम अध्ययन करें तो मुख्य मस्तिष्क (सेरिब्रम) में सेरिब्रल कैभिटी होती है, उसमें गाढ़ा सा तरल पदार्थ मटमैला सा भरा होता है।

उस पदार्थ में सेरिब्रल नाम का लगभग 7 करोड़ न्यूरानसेल तीन बाल (हेयर) के कम्पायमान सेल से भरे होते हैं। लोग जितने बुद्धिमान होते हैं यह कैभीटी उतना लबालब भरा होता है। जिसे आय क्यू बोलते हैं।

इस सात करोड़ सेल में -

(क) 2 करोड़ में - अनुभव

(ख) 3 करोड़ में - स्मृति

(ग) 2 करोड़ में - संस्कार (हजारो जन्म का संग्रह होता है)

जब कोई भी काम करते होते हैं तो न्यूरान सेल के तीनों बाल (हेयर) संस्कार और परिस्थिति के अनुसार आपके अनुभव को ग्रहण करता है।

हम अपने तीस साल या पच्चास साल पहले के दृश्य को भी याद करते हैं तो झटके के साथ मेरे मस्तिष्क में पूरा दृश्य आ जाता है।

माँ का मारा चाँटा या जूते में गड़े कील का भी पूरा दृश्य तुरंत बिजली की तरह कौध जाता है।

हम इसको ऐसा समझें -

(अ) दो करोड़ अनुभव वाले सेल से, एक बाल (हेयर) हमारे इस जन्म के क्रिया-कलापों को कम्पन्न के रूप में ग्रहण करता है।

(ब) तीन करोड़ सेल उन अनुभवों को पाप और पुण्य की स्थिति को अपने कम्पन द्वारा अपने अनुभव में अंकित करता है।

(स) दो करोड़ सेल जो आपके **16 नाड़ी** पर अवस्थित **97 कर्मबंधन** पर बंधे पड़े है।

हजारों जन्म की स्मृति लिए आपके भौतिक और अभौतिक सुख-दुख, पाप-पुण्य का लेखा-जोखा प्रस्तुत कर, आपके जीवन शैली को चला रहा है।

यानी यमराज का चित्रगुप्त कहीं नहीं बैठा है। आपका न्यूरान सेल ही आपका चित्रगुप्त है। प्रतिदिन पाँच हजार न्यूरान सेल की मौते हो जाती हैं। शरीर में श्वेत रक्तकण और लाल रक्तकण एवं शरीर के बहुत सारे सेल तो मरते हैं और टूटते हैं, तो बनते भी रहते हैं।

लेकिन यह न्यूरानसेल जो मर जाता है। वह फिर से नया कभी नहीं बनता।

प्रतिदिन इस पाँच हजार सेल की मौत हमें बचपन जवानी और बुढ़ापा फिर हमारी मौत को कैसे नियंत्रित करती है। इस पर पुर्नविचार की जरूरत है।

इन न्यूरान सेल कि मौत ही जब मस्तिष्क के अन्तिम परत (लेभेल) तक पहुँचती है, तो उसी निश्चित क्षण में हमारी मौत हो जाती है। बुढ़ापा में भूलने की प्रबृति का भी यही कारण है।

वैज्ञानिको ने इस न्यूरान सेल के परीक्षण से जाना है कि मूर्ख लोगों के सेल पर कम ग्रुभ बनते है। लेकिन बुद्धिमान लोगों के न्यूरान सेल पर कुछ अधिक रेखाए (ग्रुभ) होते हैं।

बिचार का दूसरा मोड़ लेते हैं। हमारे दैनिक क्रिया कलापों में कई स्थिति आती है। जाग्रतावस्था, स्वप्नावस्था, सुषुप्ती और समाधि।

समाधि में तीन अवस्था है। - तुर्या, तुर्यातित और वैश्चिक तुर्या।

जब हम जाग्रत होते हैं तो ''बीटा रे'' हमारे शरीर से निकलती रहती है।,

सुषुप्ती और स्वप्न में **थीटा रे** निकलती रहती है। और जब हम समाधि में होते हैं तो छोटा **अल्फा रे** निकलने लगती है।

तुर्यातित में ''**अल्फा की दीर्घ**'' किरण एवं ''**डेल्टा रे**'' निकलने लगती है। जब हम जाग्रत होते है तो सौ वर्ष की क्रिया कलाप को सौ वर्ष में ''**बीटा रे**'' में देखते हैं।

लेकिन जब हम स्वप्नावस्था में जाते हैं तो जीबन से मृत्यु तक के क्रिया कलापों को केवल पाँच से दस मिनट में देख लेते हैं।

जब समाधि की अवस्था में होते हैं तो आँख मुंदते हैं एवं कई जन्मों के घटनाक्रम को सिनेमा की दृश्य की तरह कुछ मिनटों में देख लेते हैं।

प्रकृति का नियम है, कि जो प्रकृति में है, वह पदार्थ में भी है। जो प्रकृति में घटित हो रही है वह प्राणी में भी घटित हो रहा है।

वैज्ञानिकों का शोध है कि जब हम सो रहे होते हैं तो दैनिक क्रिया कलापों या पूर्व जन्म के संस्कार के क्रिया-कलापों का जोड़ विभिन्न रूपों में हमें स्वप्नावस्था में दिखाई देने लग जाता है।

हमारे शरीर के सारे नर्भ क्रिया-कलापों के तनाव में कम्पन्न करते रहते हैं। रात्रि के प्रथम पहर के नीद्रा में यह तनाव कुछ अधिक रहता है। लेकिन भोर होते-होते कुछ ऐसी मानसिक स्थिति बनती है।

कि शरीर के सारे नर्भ केवल 10 मिनट के लिए बिलकुल शान्त हो जाता है। फिर वैज्ञानिक भी यह नही पता लगा पाये हैं कि वो 10 मिनट में शान्त नाड़ी (नर्भ) कितनी इनर्जी प्रकृति से प्राप्त कर पाती है।

लेकिन अध्यात्मिक शोध से नजर आता है कि जब शरीर की स्थिति नाड़ी (नर्भ) के दस मिनट के लिए शान्त होने पर साम्यावस्था में आ जाती है ।

तब समाधि की अवस्था में इसी 10 मिनट की साम्यावस्था को बढ़ाते-बढ़ाते ऋषिगण आधा घंटा भी ले जाते हैं, तो प्रकृति की बहुत बड़ी उपलब्धि से सराबोर हो जाते हैं।

यही साम्यावस्था मन की स्थिति से, चित की स्थिति में बदलकर आत्मस्थिति में आ जाती है।

इस समय हमारी, इच्छाशक्ति, मनःशक्ति में और मनःशक्ति, आत्मशक्ति, में बदल जाती है। इस मनःशक्ति में तांत्रिक जो संकल्प चाहता है, पूरा हो जाता है। एवं योगी आत्मशक्ति कि स्थिति में जो भी श्राप या आशीर्वाद दे देते हैं वह प्रकृति प्रदत शक्तियाँ पूरा करती हैं।

शरीर में चक्रों की स्थिति

चित्र संख्या - में पूर्ण विवरण देखें।

(१) मूलाधार चक्र (BASIC CHAKRA)

प्रयत्नशील योगसाधक जब किसी महापुरूष का सांनिध्य प्राप्त करता है और उसका मूलाधार-चक्र पर ध्यान जमने लगता है तब, उसे अनायास ही क्रमानुसार सारी सिद्धियों की प्राप्ति होती है।

वह योगी देवताओं जैसा पूजा जाता है और अणिमादिक सिद्धियाँ हासिल कर त्रिलोकी में इच्छानुसार विचरण कर सकता है।

वह मेधावी योगी महावाक्य सुनते ही आत्मा में स्थिर होकर सर्वदा क्रीड़ा करता है। उसकी जठराग्नि प्रदीप्त हो जाती है और निरोगता प्राप्त करता है। पटुता, सर्वज्ञता और सरलता उसका स्वभाव बन जाता है।

जो शास्त्र कभी सुने भी नहीं हों उनके रहस्य सहित व्याख्या करने की शक्ति उन्हें अवश्य प्राप्त हो जाती है। ऐसे योगी के मुख में निरन्तर सरस्वती देवी निवास करती है। उसके संकल्प में अनुपम सामर्थ्य विधमान रहती है।

जिस क्षण योगी मूलाधार पद्यम़ में (चक्र में) स्थित स्वयंभू लिंग का ध्यान करता है उसी क्षण उसके सारे पाप भस्म हो जाते हैं।

वह मन में जिस किसी भी वस्तु की इच्छा करता है वे सभी वस्तुएँ उन्हें प्राप्त हो जाती है।

जो मनुष्य शरीरस्थ शिव को त्यागकर बाहर के देव को पूजता है वह हाथ में रखे फल को त्यागकर अन्य फल के लिए इधर-उधर भटकता है। इसलिए बुद्धिमान मनुष्यों को आलस्य छोड़कर शरीरस्थ शिव का (शरीर में छिपे परम शिव का) ध्यान धरना चाहिये।

यह ध्यान परम पूजा है, परम तपस्या है, परम पुरूषार्थ है। मूलाधार के अभ्यास से छः महीने से दो साल तक में सिद्धि प्राप्त होगी। उससे सुषुम्णा नाड़ी में अवश्य वायु प्रवेश करेगी।

ऐसा साधक मन को भी जीत लेगा और फलतः वह परम शांति का अनुभव कर सकेगा। उसके दोनों लोक वास्तव में सँवर जाते हैं इसमें कोई भी संशय नही है।

(२) स्वाधिष्ठान चक्र (SEX CHAKRA)

स्वाधिष्ठान चक्र के ध्यान से कामांगना काममोहित होती है और सेवा करती है। जो कभी सुने नहीं हों, कभी देखे नहीं हों, ऐसे अनेक प्रकार के शास्त्रों के रहस्यों को वाणी द्वारा वह योगी वर्णन कर सकता है।

सारे रोगो से मुक्त होकर वह संसार में सुख से विचरण करता है। अणिमादि सिद्धियाँ उसे प्राप्त होती हैं ।

उसके शरीर में वायु संचार करती है - सुषुम्ना नाड़ी में प्रवेश करती हैं। रस की अभिवृद्धि होती है। सहस्त्र-दल पद्य से श्राबित अमृत की भी वृद्धि होती है।

मणिपूरक चक्र, अनाहत चक्र, विशुद्धाय चक्र, आज्ञा चक्र एवं ब्रह्म चक्र की व्याख्या भाग-प्रथम, भाग-द्वितीय में वृहत चर्चा कर दी गई है।

शरीर के चक्र

चक्रो की स्थिति तीनों शरीर में, स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण में इस तरह है -

(1) अढ़ाई चक्र स्थूल शरीर में -

(क) मूलाधार चक्र

(ख) स्वाधिष्ठान चक्र

(ग) आधा- नाभि चक्र

(2) सूक्ष्म शरीर में -

(क) आधा नाभि चक्र

(ख) अनाहत

(3) कारण शरीर में -

(क) विषुद्धाय चक्र

(ख) आज्ञा चक्र

(4) सहस्त्रार-

सहस्त्रार शून्य चक्र है।

यानी नाभी कुण्ड दो राज्यों का विभू है। सारे चक्र मेरूडण्ड जो रीढ़ की हड्डी के रूप में 42+42=84 अदद में है। उसी के पोले स्थान से सुषुष्ना के प्रवाह के स्थल पर है।

ये 84 मेरूडण्ड की श्रृंखला हमारे चौरासी लाख योनि का घोतक हैं। पूरे शरीर की लम्बाई भी 84 अंगुल चौरासी लाख योनी का घोतक है।

मेरूडण्ड का अगर हम एक्स रे लेते हैं तो स्पष्ट रूप से एक दीप शिखा के ऊपर दूसरे दीप शिखा का बहुत विहंगम रूप देखने को मिलता है।

जब हम साधनारत होकर कुण्डलिनी जागरण करते हैं, तो वहीं दीप शिखा साधना के स्तर के हिसाब से जलते हुए ऊपर की ओर ब्रह्मरंध्र तक प्रकाशवान हो जाती है। (चित्र संख्या - 3) में देखें। आधा नाभि चक्र स्थूल शरीर में एवं आधा नाभि चक्र सूक्ष्म शरीर में देखने में केवल तीन अंगुल का फर्क लगता है।

लेकिन जिस तरह पृथ्वी और आकाश का फर्क जो उसके मध्य बिन्दु में मिलता है वैसी ही दूरी दोनों नाभि चक्र में है। जिसका भेदन योग में कठिन है।

साधक जब काम, क्रोध लोभ मोह के शुद्धतम रूप से आगे नहीं बढ़ता है, तो लालटेन की चिलमिची में लगे कार्बन की तरह यह प्रकाश अंर्तमुखी होने पर भी नहीं देख पाता है।

मुख्य रूप से तीन चक्रों की प्रधानता कुण्डलिनी जागरण में है।

(क) मूलाधार चक्र (ख) नाभि चक्र (ग) आज्ञा चक्र

बिना तीनों के संयोग के कोई साधना नहीं है।

कुण्डलिनी साधना मनोमय शरीर यानी प्राण शरीर यानी अनाहत तक की साधना है। जब मूलाधार पर सप्त धातु से सप्त रस तैयार होकर हमारे ग्लैण्ड द्वारा वितरित होते हैं ।

शरीर की सारी ऊर्जा किस ग्लैण्ड एवं किस कर्मबंधन के गाँठ को कितनी भौतिक और आध्यात्मिक ऊर्जा की जरूरत है, यह मनोमय यानी प्राणशरीर से निर्णायक होता है।

कुण्डलिनी साधना में मूलाधार की साधना को **बिन्दु साधना** एवं आज्ञाचक्र की साधना को **"जौ"** साधना कहते हैं।

यह आज्ञाचक्र मन का सिंहासन है। इस मन की गति को साम्यावस्था में लाने के लिए आज्ञाचक्र पर ध्यान करने से एक ऐसी स्थिति आती है कि मन बिलकुल मित्रवत शान्त हो जाता है एवं हमारा तीसरा नेत्र खुल जाता है।

तीसरा नेत्र खुलते ही साधक विश्व ब्रह्माण्ड एवं पृथ्वी के भौतिक तत्व एवं विश्व ब्रह्माण्ड के अध्यात्मिक तत्व को बंद आँखों से, जैसी इच्छा करता है, वहाँ का दृश्य देख लेता है।

संकल्प बल के द्वारा जैसा आशीर्वाद या श्राप देना चाहता है, वह आज्ञाचक्र के तीसरे नेत्र से ही संभव है।

दृढ संकल्प बल की तीव्रता अर्जुन के बाण चलाने की तरह है। अर्जुन ने बाण चलाने में जितनी एकाग्रता दिखाई है, वैसी एकाग्रता अगर हममें हो तो हमारी संकल्प शक्ति द्वारा प्रभावित इच्छाशक्ति भी किसी के हृदय को चीर सकती है। चाहे भगवान ही सामने क्यों न खड़ा हों।

दिवानी मीरा और अशोक के राजकाल में गणिका बिन्दुमति इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हैं।

हिप्नोटाईजर या तांत्रिक साधना करके भौतिक आश्चर्य की स्थिति पैदा करते हैं।

लेकिन अंतर्मुखी साधना, समाधि की स्थिति में पूरे ब्रह्माण्ड में जहाँ जो कुछ देखना या करना चाहते हैं, संभव हो पाता है। जब तीसरा नेत्र खुलता है, तो उससे नीला प्रकाश निकलने लगता है, जो शाम के धुंधलके में स्पष्ट दिखता है। यह प्रकाश कौस्तुम मणी के प्रकाश जैसा होता है।

तिब्बत में लामा लोग इस तीसरे आँख को आपरेशन द्वारा भी खोल देते हैं। लेकिन वे उसी साधक का आपरेशन करते हैं, जो साधक कम से कम सात वर्षों से साधनारत है एवं बिलकूल शान्त और ध्यानास्थ रहते हैं

साधारण व्यक्ति का तीसरा नेत्र आपरेशन से खोलने पर वह बहुत ही खतरनाक एवं विध्वंषकारी हो जाता है।

यह तीसरा नेत्र ही कौस्तुकमणि है।

महाभारत काल में द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वथामा के मस्तक से यही कौस्तुकमणि रूपी तीसरा नेत्र को कृष्ण ने निकाल लिया था। बताया जाता है कि अश्वथामा आज भी वेदना पूर्ण जीवन में जीवित हैं।

कुण्डलिनी दर्शन

कुण्डलिनी सुषुम्ना नाड़ी पर है, जो हमारे मेरूडण्ड के द्वारा मूलाधार से ब्रह्मरंध्र तक गयी है। इसी पर कुण्डलिनी के छहों चक्र हैं।

चित्र संख्या 15, 19, 20, 21 और 37 में देखें ।

1. मूलाधार 2. स्वाधिष्ठान
3. मणीपूरक 4. अनाहत या हृदयचक्र
5. विशुद्धाय या कंठचक्र 6. आज्ञाचक्र

ठीक उसी तरह शरीर के अग्रभाव में भी यह चक्र अवस्थित है जिन्हें

1. सूर्य चक्र 2. अग्निचक्र
3. अमृत चक्र 4. प्रभंजन चक्र
5. तड़ित चक्र 6. सोभ चक्र के नाम से जाना जाता है।

सातवां तो ब्रह्मचक्र है, उसका शरीर पर कोई चक्र नहीं। शरीर पर इन चक्रों के वैज्ञानिक शोधों से पता चलता है कि, शरीर नियंत्रण के नाड़ी गुच्छक इन्हीं केन्द्रों पर है। इन्हें ऑपरेशन द्वारा समझा जा सकता है। (चित्र संख्या - 54–55) में देखें।

लेकिन कुण्डलिनी के चक्र, सुषुम्ना के नाड़ी वाहिका पर है, जिसे किसी भी यंत्र द्वारा किसी चक्र को नहीं देखा जा सकता है। सुषुम्ना भी अदृश्य नाड़ी वाहिका है। हालांकि दैनिक जीवन को चलाने के लिए शरीर के चक्र और कुण्डलिनी चक्रों में आदान- प्रदान होता रहता है।

चूंकि कुण्डलिनी चक्र ही हमारे शरीर एवं क्रियाकलापों के नियंत्रण का अध्यात्मिक शक्ति का स्रोत है। ऊर्जा उन्हीं चक्रों के द्वारा नियंत्रित एवं प्रवाहित होती रहती है।

इसलिए ध्यान हम किन केन्द्रों पर कर रहे हैं। शरीर के चक्रों पर तो केवल भौतिक उपलब्धि का ही ध्यान है। कुण्डलिनी के चक्रों पर अध्यात्मिक, शारीरिक, भौतिक सुख तीनों की उपलब्धी है।

जैसे शरीर की नाभिकुण्ड जहां है, सुषुम्ना पर नाभिचक्र मेरूडण्ड में तीन अंगुल ऊपर है, जो पृष्ठ भाग में चल रही हैं।

आज्ञाचक्र दोनों भोहों के ऊपर के ललाट में आधा ईंच से पौन ईंच के नीचे हैं, और उसके पीछे पिनियल ग्लैन्ड है।

मेरूडण्ड पर तो सुषुम्ना पर अनाहत चक्र है, लेकिन हृदय तो बायें पसली के बगल में धड़क रही है। आत्मा उसी हृदय गहवर में हमारे मुट्ठी के आकार की हृदय रचना में एक पोस्तक दाना के बराबर बने ग्लैन्डस (ग्रन्थि) में बैठी है एवं काम, क्रोध, लोभ, मोह, के परिधि से घिरी ठीक जेलखाने में बन्द पड़ी है, जो हमारे आत्मप्रकाश को बाहर आने ही नहीं देती।

हालांकि आत्मा ही चित्त को ऊर्जा देती है एवं चित्त ही मन को ऊर्जा देकर उसे मनःशक्ति दे रहा है। फिर, मन हमारे शरीर के 70 ग्लैन्डस (ग्रन्थि) के द्वारा हमारे मानसिक एवं अध्यात्मिक तरंग को नियंत्रित किये हुए है।

जो शप्तधातु के निर्माण से बनी है। सप्तधातु मूलाधार पर ही हमारे भोजन और क्रिया कलापों को नियत्रित कर 70 ग्लैन्डस, (ग्रन्थि) जिनको आध्यात्मिक ऋषियों ने दिव्य ज्योति के नाम से पुकारा है,

जो हमारे मन को तृप्त और अतृप्त कर रही है। इन्ही सप्त धातूओं, 70 ग्लैन्ड (ग्रन्थि) के प्रतिफल के व्यापार से मष्तिस्क की पट्टी एवं रस रसायन के प्रतिफल विधटन एवं संघात से नाड़ियों में कर्मबंधन की गांठों की सक्रियता से शारीरिक एवं अध्यात्मिक क्रियाकलापों का दर्शन हो रहा है।

पृथ्वी की गति

पृथ्वी की पाँच गति हैं -

1) चौबीस घंटे में पृथ्वी एक बार अपनी धूरी पर धूम जाती है।

2) साल में एक बार 364.5 दिन में पृथ्वी अण्डाकार पथ पर सूर्य का चक्कर पूरा करती है।

3) चक्कर लगाते हुए प्रति 48 वर्ष पर पृथ्वी सूर्य के पास एवं 48 वर्ष में दूर होकर सूर्य की परिक्रमा करती है। पृथ्वी के सूर्य के पास की स्थिति होती है तो पृथ्वी पर लोग स्वस्थ होते हैं।

जब 48x2=96 वर्ष पर पृथ्वी सूर्य से दूर होती है तो पृथ्वी के प्राणियों में कोई न कोई महामारी नये बीमारियों के रूप में आती है। सूर्य के नजदीक एवं दूर जाने से पृथ्वी के जलस्तर में भी परिवर्तन आता है।

प्रति बारह वर्ष पर सूर्य में एक रेडियो एक्टिभ आँधी चलती है। जिसका असर पृथ्वी के सभी प्राणियों पर अचेतन रूप में पड़ता है। वनस्पति शास्त्र के विद्यार्थी पेड़ का डंठल को (इनसेक्ट) काटकर पेड़ के उम्र का पता लगाते हैं।

चूंकि हर बारह वर्ष पर पेड़ में स्पष्ट बर्तुल बनता है। जिससे पेड़ का उम्र गिन ली जाती है। **उत्तरी ध्रुव राहू और दक्षिणी ध्रुव केतु का प्रतीक है।** पृथ्वी के अन्दर उसके धूरी पर उत्तरी ध्रुव से दक्षिणी ध्रुव की ओर लाखो भोल्ट बिजली का प्रवाह है।

उत्तरी ध्रुव संतरे के ऊपर के भाग की तरह तस्तरी नुमा दबा हुआ है। एवं दक्षिणी ध्रुव का भाग संतरे के मुँह की तरह ऊपर की ओर उठा हुआ है।

उत्तरी ध्रुव में सृष्टि के लाखो प्राणियों का जीवन व्यापार है। लेकिन दक्षिणी पर कोई जीव-जन्तू नहीं है, विरानापन है।

उत्तरी ध्रुव में छोटी पहाड़ियाँ या पेड़ लटके हुए होने का भ्रम पैदा होता है। उत्तरी ध्रुव के मैंगनेटिक फिल्ड का जुड़ाव सूर्य के ऋषि मंडल से है।

सूर्य के ऋषि मंडल का अल्फा रे बराबर उत्तरी ध्रुव के कम्पन्न के द्वारा पृथ्वी पर प्रसारित होता रहता है। दो मौसम का संधिकाल जब साम्यावस्था में होती है तो विभिन्न शक्ति रूपा देवियों का तरंग पृथ्वी पर प्रवाहित होने लगता है।

प्रायः चैत मास एवं आश्विन मास में मौसम बड़ा सुहावना हो जाता है।

इसमें सूर्य और पृथ्वी का डिग्री कुछ इस तरह बनता है, कि सौर मंडल में स्थित देवलोक से कुछ खास रश्मियाँ पृथ्वी के कम्पन में दौड़ने लगती है।

खास कर नव दुर्गा में नौ रंग की रश्मि इस चैत और आश्विन मास में पृथ्वी तरंग में प्रवाहित होने लगती है। साधकगण उन तरंग की फ्रिक्वेंसी पर अपनी साधना कर मनोवांछित सिद्धी प्राप्त करते हैं। (चित्र संख्या - 51) में देखें।

उत्तरी ध्रुव के ऋण विद्युत होने से उपर के मैगनेटिक फिल्ड दक्षिण से उत्तर की ओर शक्ति का प्रवाह है। लेकिन पृथ्वी के धूरी पर उत्तरी ध्रुव से दक्षिणी ध्रुव में पृथ्वी के सेन्टर से बिजली एवं शक्ति का प्रवाह है।

हवाई जहाज के सफर में पृथ्वी के मैग्नेटिक फिल्ड के विरूध दिशा में जाने पर ब्रेन के मैग्नेटिक फिल्ड पर असर पड़ता है, जिसके कारण एक सप्ताह तक शरीर का दुखना एवं किसी काम में मन नहीं लगने की परिस्थिति सामने आती है।

इसी मैगनेटिक फिल्ड को मस्तिष्क के मैगनेटिक फिल्ड से संतुलन रखने के लिए उत्तर की ओर सर रखकर नहीं सोया जाता है। तथा मृत्यु होने पर शब का सिर उत्तर की ओर ही रखा जाता है।

जितने देव कार्य हैं या घर में स्थित मंदिर उत्तर की ओर रखा जाता है। वास्तुशास्त्र में विद्यार्थी का कमरा उत्तर के कोने में रखने का विश्वास है। क्योंकि उत्तर की ओर से दैवी प्रवाह होती रहती है।

4. चौथी गति सौरमंडल में सूर्य अपने सभी नक्षत्रग्रह के साथ चक्कर काटती है। ग्रहनक्षत्र भी अपनी डिग्री सूर्य के साथ बदलते रहते हैं एवं युग परिवर्तन का भी यही कारण है।

सतयुग की उम्र	-	17,28000 वर्ष
त्रेतायुग की उम्र	-	12,96000 वर्ष
द्वापरयुग की उम्र	-	8,64000 वर्ष
कलयुग की उम्र	-	4,32000 वर्ष
कुल	-	15,10000 लाख वर्ष

याने 15,10000 (पन्द्रह लाख दस हजार) लाख वर्ष में एक पूरे युग का कम्पलिट चक्कर पूरा होता है। कहा जाता है कि 14 मन्वन्तर में प्रलय होता है। जिसमें अभी 10 / 6 युग ही बीत पाये हैं।

यह 14 संख्या भी समुद्र मथन का प्रतीक समझ में आती है।

चार अरब वर्ष पृथ्वी सोती है एवं चार अरब वर्ष तक पृथ्वी पर सृष्टि चलता रहता है। सूक्ष्मतम कम्पन्न के रूप में प्राण ऊर्जा प्रकृति में विद्यमान रहती है।

जितने दिखाई देने वाले चाँद, सूरज, नक्षत्र, ग्रह हैं, सभी अरबो खरबों वर्ष में टूटेंगे, इनकी भी मृत्यु होगी। चूंकि ये कालराज्य में हैं।

इस ब्रह्माण्ड में कई आकाश गंगा है। हमारे आकाश गंगा में ऋषियों ने सात सूर्य का सौरमंडल देखा है।

5) ये आकाश गंगा भी अपने सातों सूर्य के सौर मंडल के साथ चक्कर काट रही है।

यानि पूरा जगत ही मैथुनी जगत है। कम्पन्न ब्रह्माण्ड के हर कोने में है। और नक्षत्र और तारों के टूटने और बनने का व्यापार हमेशा चलता रहता है।

अब हम पृथ्वी की अपनी गति और वातावरण में आते हैं। जब मनुष्य की मौत होती है, तो वह अपने सैकड़ो कर्मबंधन के अनुरूप जन्म एवं मृत्यु के क्रम में रहता है। प्रेतयोनि मनुष्य के क्रम में है। मेरा तीन शरीर है-(चित्र संख्या-3) में देखें।

(1) **स्थूल शरीर**

(2) **सूक्ष्म शरीर**

(3) **कारण शरीर**

मृत्यु में स्थूल शरीर से सूक्ष्म शरीर, कारण शरीर में अवस्थित आत्मा को लेकर निकलता है। लेकिन उस सूक्ष्म शरीर की क्या गति किस लोक में है इस पर कुछ विचार सामने रखता हूँ।

कृष्ण ने गीता में नौ द्वार की चर्चा की है।

(क) मुँह (ख) दो-कान (ग) दो-आँख (घ) एक नाक

(ड.) नाभि (च) इन्द्री (छ) गुदा (ज) नख (झ) रोम छिद्र कुल नौ द्वार

प्राण निकलने पर इन्ही नौ द्वार से प्राण निकलते हैं। लेकिन कर्म के अनुसार साधक के उर्ध्वगति होने से उनके लोक अलग होते हैं। एवं अधोगति वाले तांत्रिक मांत्रिक एवं संसारी के अलग लोक होते हैं।

बगैर कुन्डलिनी जागरण के ऊर्जा अधोगति में ही बहती है। पृथ्वी के चारो ओर के मौगनेटिक फिल्ड में जो राहू और केतू के रूप में दर्शाया गया है। नौ लोक के सतह हैं।

लक्ष्मी एवं रम्भा आध्यात्मिक गति

लक्ष्मी जी – आत्मा का प्रतीक, जो साधना के बाद विष्णु का चरण दबाती दिखलाई गई है।

रम्भा – कामकला का प्रतीक।

महाभारत काल की ओर फिर हम ध्यान दे, तो धर्मराज कहलाने वाले युधिष्टिर भी जुए में पत्नी को हारना धर्म मानते हैं। ये शास्त्र और रूढ़िवदिता में बंधे नियमों को तोड़ना अधर्म मानते हैं।

यह कैसा धर्म जो स्त्री को भरी राज्यसभा में वस्त्रहीन कर दिया जाय और धर्मराज युधिष्ठिर एवं ब्रह्मनिष्ठ भीष्म भी देखने को मजबूर हो जाय। यहाँ हमें धार्मिक होना अंधविश्वास का प्रतीक महसूस होता है।

पृथ्वी की पांचो गति हमें हर पल एक नया मनुष्य के रूप मे पैदा कर रही है। हम राम, कृष्ण, गौतम, महावीर के सारे गुणों के साथ प्रकृति के शौ प्रतिशत गुणों के साथ जन्म ले रहे हैं।

प्रकृति के किसी भी सिद्धान्त को बदले नहीं जा सकते। रास्ते हजारों हो सकते हैं। जितनी हर मनुष्य में क्षमता होती है, उसका राम, और गौतम, महावीर ने 7% उपयोग किया होगा। कृष्णा ने 10% उपयोग किया होगा।

लेकिन जब हम पैदा लेते हैं तो हममें 100% की क्षमता प्रकृति प्रदत्त है, तो क्यों नहीं हम राम और कृष्ण से ऊपर उठ सकते हैं?

तीन हजार वर्ष के इतिहास में पूरे विश्व में सात से आठ जगे पुरूष हो पाये। इस अरबों जनसंख्या में इतनी कम उपलब्धि केवल रूढ़िवादिता में बंध जाने के कारण हमारी शक्तियाँ सोई रह गयी। सूर्य से जब रश्मियां चलती है तो भाष्कराचार्य ने 1000 रश्मि की चर्चा की है।

जिसमें मनुष्य-300 + देवता-300 + दानव 400=1000

एक हजार रश्मि हम पर पड़ रही है, तो फिर क्या कारण है कि हम सोये पड़े हैं। **मनुष्य भी हम ही हैं, देवता भी हम ही हैं, दानव भी हम ही हैं !** रूढ़िवादिता से निकलकर हम एक नया आयाम तैयार कर सकते हैं। धर्मराज के धार्मिक होने के बावजूद भी कृष्ण ने गीता अर्जून को कही। क्योंकि रूढ़िवादिता नया आयाम नहीं दे सकती।

अर्जुन क्षत्रीय था, उसका लड़ना धर्म था, फिर भी उसमें मानवता का झरना फूट पड़ा और वह करूणा और प्रेम के वशीभूत होकर गांडीव नीचे रखकर बैठ गया।

उनके कृष्ण से किये गये हर प्रश्न रूढ़िवादिता से ऊपर थे। रूढ़िवादिता और धार्मिकता से ऊपर होने के कारण ही कृष्ण की गीता उन पर उतर पायी और पूरे विश्व को एक नया संदेश दे पायी।

विषय के मूल विचार पर आता हूँ कि स्त्री को धन सम्पदा समझने वाले समाज में कभी विकास नहीं हो पाएगा। महाभारत काल में भी सभ्यता का बिनाश हो गया।

षटचक्र पर जितने केन्द्र है सबपर नारीतत्व को अभिमंत्रित करने के मंत्र है।

जितने अक्षर पर अनुस्वार हैं - वे सभी मंत्र हैं।

षटचक्र पर 56 अक्षर है और उनके कई अनेक बाहिंका तंत्र के अक्षर है। मैने उज्जैन के एक देवी के मन्दिर में एवं हरिद्वार के शान्तिकुंज के प्रभाग ब्रह्मवर्चस्व में 108 देवी की अराधना के ही रूपों को देखा है।

जयपुर के चुलगिरी पर महावीर की मुर्ति में पैर के बगल में देवी योगनियों की मूर्ति देखी है।

तो ये देवियाँ कैसे ब्रह्मस्वरूपा पूज्यनीय हो पायी? जब तक नारी साधिका की प्रधानता नहीं थी? **"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता"**। कहा गया है कि नारी को मुक्ति नहीं है लेकिन इतनी पवित्र ब्रह्मस्वरूपा होने के बाद कौन मुक्ति चाहता है।

महावीर ने बारह वर्षों की तपस्या में ज्यादा उपवास पर ही प्रयोग किया। उन्होंने बारह वर्ष में लगभग बारह महीना ही भोजन किया होगा। उनके उपवास की साधना में एक यह भी कड़ी थी, कि अगर साधक 46 दिन तक उपवास व्रत का बिधिवत पालन करे, तो एक शरीर से दूसरे शरीर में प्रवेश की क्षमता आ जाती है। यानी कामक्षेत्र के कर्मबन्धन का टूट जाना, यानी कुण्डलिनी जागरण एवं कामक्षेत्र से निकल जाना।

मनोमय शरीर के नीचे दाहिने पिल्ही के पास प्राणचक्र पर साधना से मनुष्य में यह अद्वितीय क्षमता आ जाती है।

वैज्ञानिकों का शोध है, कि अगर स्त्री या पुरूष को सात दिन तक उपवास की स्थिति में रखा जाय तो काम वासना की स्थिति समाप्त होने लगती है।

पन्द्रह दिन में तो बिल्कुल कामवासना नही रह जाती। कामेच्छा समाप्त प्राय रहती है। और महावीर के अनूठे प्रयोग ने स्त्री को भी देवत्व प्राप्त करने की क्षमता का रास्ता साफ कर दिया।

मेरे मित्र जो पूरे अपंग हो चुके थे। हिमालय के एक योगी के सानिध्य में ऐसे कुछ प्रयोग की चर्चा कर रहे थे कि पहले दिन के उपवास के प्रयोग में पांच निम्बू पानी के साथ निचोड़कर पीया और दूसरे दिन से स्वयं का बिचला पेशाब जिसको शिबाम्बू बोलते हैं पीया।

इक्यावन दिन तक उन्होंने उपबास किया। लकवा से मारे गये सारे अंग बिल्कुल ठीक होकर वे स्वस्थ हैं। लेकिन कामवासनात्मक सारी प्रवृति उनकी समाप्त हो गयी।

एकावन दिन तक उन्होने उपवास व्रत का पूरा पालन किया। वे बता रहे थे, कि न उन्हे कमजोरी महसूस हुई और न भूख लगी।

एक अनुभव

1760 वार अनुलोम-विलोम अगर छः घंटा के अन्तराल में-पद्मासन, सिद्धासन या व्रजासन में ज्ञान मुद्रा में किया जाय; तो तीन महीने पश्चात ही कुण्डलिनी जागरण हो, ब्रह्मरंध्र की गति निश्चित ही पकड़ेगी! ऐसा मेरे एक साधक मित्र का अनुभव है एवं शास्त्रोक्त है।

इसमें दृष्टि अन्तर्मुखी हो! आज्ञा चक्र पर ध्यान नहीं करना है! नाभिचक्र पर ध्यान स्थिर हो! ऑख की कौरनियॉ ऊपर की ओर चढ़ी होने की स्थिति में, तांत्रिक विधि की अन्तर्मुखी भावदशा होती है। प्रति दो घंटा पर विश्राम मुद्रा में आने हेतु आसन बदलने का प्रावधान है।

प्रयोग

*कुण्डलिनी जागरण की उर्ध्वगति में मुदितवस्था की परम स्थिति प्राप्त करने हेतु **'स्व'** मे जीये ! एवं अट्टहास, मुस्कान, प्रार्थना, ध्यान को अपने जीवन की नियमित दैनिक गति में लायें !*

चन्द्रमा योनिगत आवागमन गति

चन्द्रमा - जो मनुष्य जीवन के प्रतिपल विघटित होते मानषिक एवं शारीरिक गति का प्रतीक है। इस पर चर्चा कर फिर कन्या के जन्म के बाद होने वाले शारीरिक एवं मानसिक अवस्था की ओर ध्यान देते हैं।

चन्द्रमा पृथ्वी के सबसे नजदीक का ग्रह है, जो पृथ्वी की परिक्रमा करती रहती हैं। इसकी प्रकृति देखने में बहुत शीतल है, लेकिन अन्दर से यह बहुत गर्म है। इसमें शीतल प्रकाश फेंकने की जो क्षमता है, वह सूर्य से प्राप्त है।

हिमालय पर बैठे शिव के भाल पर चन्द्रमा को दिखलाया गया है।

भला हिमालय पर्वत पर और चन्द्रमा आकाशीय पिंड यह कैसे सम्भव हो सकता है, कि चन्द्रमा सिमटकर शंकर के भाल पर चला जाय।

द्वितिया के चाँद का प्रतीक, स्वाधिष्ठान चक्र पर छः दल के ऊपर दिखलाया गया हैं। चन्द्रमा की 28 पत्नी होने का कथानक शास्त्रो में वर्णित है।

जयपुर के प्लेनेटोरियम में ही चन्द्रमा की स्थिति का अध्ययन किया कि चन्द्रमा जो पृथ्वी का चक्कर काट रहा है, वह 28) नक्षत्र के आकाशीय पिण्ड के ऊपर होकर गुजरती है।

उसी के अनुसार पृथ्वी पर जन्म-मरण की श्रृंखला को कायम रखती है। इन्हीं 28 पिण्डों को चन्द्रमा के पत्नी के रूप में कथानक में दर्शाया गया है । चन्द्रग्रहण एक प्राकृतिक घटना है, जो कथानक में श्राप के रूप में दर्शाया गया है।

चन्द्रमा जलीय तत्व है। और हमारे शरीर में जलीय तत्व खून और मज्जा के रूप में **67%** है, जो चन्द्रमा से ज्यादा प्रभावित हो रहा है।

स्त्रियों का मासिक धर्म चन्द्रमा से बहुत सम्बन्ध रखता है। परिवा से लेकर पूर्णिमा तक की जैसी स्थिति चन्द्रमा के विघटन एवं पूर्णता की होती है, जो स्त्रियों की शारीरिक एवं मानसिक स्थिति पर बहुत प्रभाव डालता है।

जानकार लोग चन्द्रमा का भ्रमण किस अंग पर किस तिथि को है इसका पता लगा लेते हैं। हमारे सॉसो पर भी चन्द्रमा का अधिकार है। चन्द्र स्वर, ईंगला बायाँ एवं सूर्य स्वर पिंगला दायाँ मनुष्य की प्राणऊर्जा को बनाए हुए है।

इस चन्द्र स्वर और सूर्य स्वर के गति के हिसाब से हमारे षटचक्र के भी सातो केन्द्रों पर प्राणऊर्जा के साथ लगभग छह-छह हजार साँस लेते हैं।

केबल मूलाधार पर ही कम साँस लेते है केवल 1000 के लगभग।

जब हमारी जन्म कुण्डलिनी बनती है तो जन्म के समय से चन्द्रमा का विचार, ग्रहदशा के हिसाब से निश्चय किया रहता है, उसको जोड़कर जीवन का प्रतिफल बनाते हैं। चन्द्रमा के विकास की तरह ही कन्या के 16 वर्ष में, षोडषी कन्या की ऊर्जा में पूर्ण विकास माना जाता है।

पिपालिका मार्ग में तांत्रिक, कापालिक, सुन्दर और सुगठित कन्या का पहले से ही बलप्रयोग या व्यवस्था से जैसे हो, प्राप्त कर, 16 वर्ष पूरा होने के बाद ही, उसपर तांत्रिक प्रयोग कर अपने आप को सिद्ध पुरुष की श्रेणी में लाते हैं।

जितनी आत्महत्याएँ होती है, प्रायः पूर्णिमा के आसपास ही होती है।

चन्द्रमा के विघटन के हिसाब से पृथ्वी का जल स्तर भी नीचे ऊपर होता रहता हैं। जिसको जानकर किसान लोग चन्द्रमा की स्थिति को देखकर खेत में बीज डालते हैं। पूर्णिमा की रात में समुद्र इस तरह प्रभावित होता है, कि उसमें ज्वार भाटा आ जाता है। कन्या पैदा हो या बालक, इस पर चन्द्रमा का बहुत प्रभाव है।

हमारी दैनिक विचार धारा भी चन्द्रमा और सूर्य के प्रभाव से पल-पल बदलती रहती है। दम्मा जो जलीय बिमारी है, पूर्णिमा के आसपास ज्यादा उग्र रूप ले लेती हैं। कुण्डलिनी योग में भी स्वाधिष्ठान केन्द्र जो कामकेन्द्र में आता है, उसपर छः दल के बीच अर्द्धचन्द्र को दिखलाया गया है। जहाँ इन्द्र का राज्य समझ में आता हैं। जहाँ अप्सराएँ अपना नृत्य कर रही है।

इन्ही केन्द्रो पर पुरुष का प्रोस्टेट ग्लेन्ड और स्त्री के गर्भाशय के ऊपर अन्डाकोष कि स्थिति होती हैं। यह प्राणऊर्जा जो प्राण केन्द्र से मिलती है, अधोगति होने पर जलचर में हमारे जन्म को निर्धारित करती है। उर्ध्वगति होने से उससे सदा के लिए मुक्ति का कारण बनती है।

चूंकि कामक्षेत्र के कामुकता का यह मुख्य बिन्दु है इस लिए योग में ऊपर उठने में यहाँ ज्यादा बाधा आती हैं। कामकेन्द्र के सम्बाहन से ही सृष्टि चल रही हैं। जब मूलाधार से कुण्डलिनी की सर्पिनी उठती है, तो कामवासना उसके फन को कुचल देती है। और सर्पिनी रज एवं वीर्य के रूप में अपना फेन या विष उगल कर बेहोश और शान्त हो जाती हैं।

सप्त शरीर

इन आयामों की स्थिति समझने के लिए हम अपने स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर, कारण शरीर के आयामों को समझें। शारीरिक, मानसिक एवं अध्यात्मिक विकास के हिसाब से शरीर, सात आयामों में विकास करता है।

आत्मा के साथ शरीर में क्रमशः निम्नलिखित विकाश की श्रृँखला है।

(क) भौतिक शरीर - भौतिक शरीर 7X1 = 7 प्रथम 7 वर्षों में भौतिक शरीर में बच्चों में शारीरीक विकास का समय होता है। इस 7 वर्ष में मूलाधार केन्द्र का सहयोग बच्चों के विकास में है। अगर इन 7 वर्षों में भौतिक शरीर का विकास नहीं हुआ तो मनुष्य पशुबत है।

(ख) भाव शरीर - भाव शरीर 7X2 = 14 वर्षों में बच्चों में यौन विकास का समय है। इसमें 7 वर्षों में यौन का पूर्ण विकास होने का समय है। इन 7 वर्षों में भाव का पूर्ण विकास संभव हो जाता है। यह स्वाधिष्ठान केन्द्र का प्राकृतिक विकास का समय होता है।

(ग) सूक्ष्म शरीर - सूक्ष्म शरीर 7X3 = 21 वर्ष तक में तर्क, बुद्धि और विचार का विकास हो जाता है। बुद्ध और महावीर के समय में ऐसी स्थित रही कि केवल बिहार में तीसरे शरीर की क्षमता वाले कई लोग पैदा हो गये।

(घ) मनोमय शरीर - मनोमय शरीर 7X4 = 28 वर्षों में सारा जीवन आलोकित चमत्कार पूर्ण शक्तियों से भर जाता है। सम्मोहन, टेलीपैथी एवं आश्चर्यजनक कौतुक को दिखाने के लिए विलक्षण शक्ति का विकास हो जाता है। चौथा शरीर का विकास बहुत खतरनाक होता है।

महाभारत के अर्जुन, कर्ण, भीष्म पितामह वगैरह इन्हीं चौथे शरीर के विकास से बड़े महारथी हो पाये और उस समय का आणविक युद्ध लड़ पाये। रामायण में रावण और इन्द्रजीत वगैरह की अलौकिक क्षमता इसी चौथे शरीर के विकास का फल था।

कुण्डलिनी जागरण इसी मनोमय शरीर में होती है। कुण्डलिनी का सारा नियंत्रण इसी शरीर में है और यह प्राण शरीर में स्थित है।

(ड़) आत्म शरीर - आत्म शरीर 7X5 = 35 वर्षों में आत्म शरीर में पहुँचने का मतलब स्त्री-पुरुष की योनि से मुक्ति पा जाना।

(च) ब्रह्म शरीर - ब्रह्म शरीर 7X6 = 42 वर्ष की स्थिति तक ब्रह्म शरीर में पहुँचने वाले साधक स्थितप्रज्ञ हो जाते है। परम चेतना में मिलकर ब्रह्मानंद में लीन हो जाते है। **'मैं'** का भाव यहाँ समाप्त हो जाता है और अंतरिक्ष के ब्रह्माडीय ऊर्जा से पूर्ण होकर ब्रह्मतत्व प्राप्त कर लेते हैं।

(छ) निर्वाण शरीर - निर्वाण शरीर 7X7 = 49 वर्ष में निर्वाण शरीर की स्थिति में पहुँचने पर बिल्कुल शून्यता की स्थिति आ जाती है। साधक यहाँ परमब्राह्मी स्थिती में पहुँच जाता है। वह ईश्वर का ही रूप हो जाता है। आत्मा बिल्कुल टूट कर ऊर्जा का दूसरा रुप लेकर दिव्यलोक में प्रवेश कर सदा के लिए अमर हो जाती है।

कुण्डलिनी मनोमय शरीर में है। इसलिये मनोमय और उससे संबंधित तीनों योगों से कुण्डलिनी साधना का सम्बद्ध समझना चाहिए। इन तीनों योगों पर आधारित कुण्डलिनी योग की एक स्वतंत्र योग साधना है। जिस मनोमय शरीर में कुण्डलिनी का जागरण होता है। ''कामवासना'' की वृत्ति समूल नष्ट हो जाती है।

(क) कुण्डलिनी मूल स्थान मूलाधार से भौतिक जगत का रहस्य खुलता है।

(ख) स्वाधिष्ठान में पहुँचने पर भय, क्रोध, घृणा और हिंसा हमेशा के लिए समाप्त हो जाती है। और उसके स्थान पर प्रेम, करुणा, अभयता और मैत्री जन्म लेती है। वासनालोक (प्रेतलोक) के सारे रहस्य खुल जाते है।

(ग) मणिपूरक चक्र में संदेह के स्थान पर - नीद्रा और विचार के स्थान पर विवेक जन्म ले लेता है। इस चक्र का संबंध सूक्ष्म जगत से है। सूक्ष्म जगत के चार परत वैश्वानर जगत तक के रहस्य खुल जाते है।

मनोमय शरीर - में अनाहत चक्र (हृदयचक्र) में स्थापित होने पर साधना में अतिन्द्रीय ज्ञान, अतिन्द्रीय दर्शन, स्त्री दाभंता और संकल्प शक्ति का अर्भिभाव होता है। मनोमय शरीर अति नाजूक है। इसलिए नशीली वस्तुओं से यह तुरंत प्रभावित होता है। मनोमय शरीर, स्त्री साधना में नशीली वस्तु का इसलिए प्रयोग किया जाता है।

पुरुषतत्व ऋणात्मक (इलेक्ट्रॉन) और स्त्री तत्व धनात्मक (प्रोटॉन) है। दोनों एक दूसरे की ओर आकर्षित होकर चक्कर लगाते है। नाभिक (यानि ब्रह्म) न्यूट्रान पर, न्यूट्रान विद्युत विहिन होते हुए भी चुम्बकिय ऊर्जा से युक्त तरंग है।

(क) रौद्रात्मक एवं विर्सगात्मक और कलात्मक प्रवृति-पुरुष की है।

(ख) शून्यात्मक एवं सहनात्मक प्रवृति स्त्री है। नियम सर्वव्यापी है।

शिव तत्व के प्रतीक लिंग की उपासना जिस सम्प्रदाय में है वह शैव सम्प्रदाय है। ऊपर की अरनी। शिव तत्व के योनि उपासना की प्रधानता जिस सम्प्रदाय में है वह शक्ति सम्प्रदाय है। इन दोनों सम्प्रदायों के दर्शन के अनुसार - शिव प्रकाश है और स्त्री - शक्ति, - स्फूर्ति

श्वेत बिन्दु - काम + पुरुष वाचक अर्द्धनारीश्वर

रक्त बिन्दु - नाद + स्त्रीवाचक

काम + कला = कामकला इन दोनो का मिश्रित रूप है। कामकला में पुरुष तत्व एवं स्त्री तत्व दोनों है। पूरे शरीर के स्थिति को समझे तो अर्द्धनारिश्वर का रूप है एवं यही शक्ति कुण्डलिनी के रूप में हम सभी में व्याप्त है।

क्योंकि हर पुरुष एवं नारी में निगेटिव एवं पोजेटिभ की श्रृंखला साथ चलती है।

मांत्रिकी की वर्ण मंत्रिका में पहला अक्षर 'अ' है और अंतिम अक्षर 'ह' है। आदि अक्षर अ को शिवतत्व और अंतिम अक्षर ह को शक्ति तत्व का प्रतिक माना गया है। इनदोनों के मिश्रीत रुप को कामकला कहते है। सभी वर्ण अक्षर का लय 'म' मे होता है। ऊँ में 'म' सतज़् कम्पन्न क्षेत्र में है।

कुण्डलिनी आत्मशक्ति बोधक है। इसका बोध हमें अहम के रूप में होता है। शिव जड़तत्व है और शक्ति चेतना रूपतत्व है। बिना आधार के कोई भी शक्ति प्रकट नहीं होती है। जड़ आधार है और चेतना आसीन।

इसी का प्रतीक शंकर पर आरुढ़ काली का रुप चित्रों में दिखाया गया है। चेतना से शरीर का संबंध टूटते ही जीवन की कड़ी हमेशा के लिए टूट जाती है। शरीर ''शिव'' से ''शव'' हो जाता है।

शिव तत्व ऋणात्मक शुक्र बिन्दु के रूप में जिसे श्वेत बिन्दु अथवा ''प्रकाश'' के नाम से स्पष्ट किया जा सकता है। जो मनुष्य के भीतर सहस्त्रार चक्र में अवस्थित है।

इसी प्रकार शक्ति तत्व रजोबिन्दु के रूप में जिसे रक्त बिन्दु के रूप अथवा स्फूर्ति के नाम से जाना जाता है। स्त्रीदेह के भीतर मूलाधार चक्र में विद्यमान है।

पुरुष शरीर की सबसे बड़ी विशेषता है, कि उसके मूलाधार चक्र पर कुण्डलिनी शक्ति, शक्ति के रूप में शिव और शक्ति दोनों समान रूप से मिश्रित कामकला के रूप में, अर्द्धनारीश्वर के रूप में एवं मैथुनात्मक व आकर्षशात्मक स्थित में अवस्थित है।

यही महामाया है। जिसे आदिशक्ति और परमाशक्ति, आत्मशक्ति आदि को कुण्डलिनी के नाम से सम्बोधित किया जाता है।

कुण्डलिनी जागरण द्वारा हम मुक्त होना चाहते हैं।

यहाँ पर साधक (जीव) अपनी साधना को क्रियात्मक रूप देने हेतु कुण्डलिनी जागरण के द्वारा मुक्त होने का प्रयास करता है एवं मुक्त होकर जीव ब्रह्मभाव को पाता है। यही मुक्ति चार प्रकार की होती है, जो जीव के कर्मों एवं संस्कार साधना की गुणवत्ता पर आधारित है।

(1) सालोच्य- अपने लोक में ब्रह्म के लोक में वास करना।

(2) सामीप्य- ब्रह्म के अत्यन्त करीब रहकर।

(3) सालूच्य- ब्रह्म के समरूप को पाना ब्रह्म ऐसी समरूपता पाना।

(4) सामूज्य- अपने अस्तित्व को मिटा देना तथा ब्रह्म में मिल जाना।

दिव्यभाव का मतलब है पराभाव यानि समाधि में लीन, शंकर की अवस्था है। इन तीनों अवस्था को पार कर लेने के बाद निर्माण, परमपद और परमगति।

हम शिवमूर्त्ति में भग में स्थित लिंग वाले मूर्त्ति की व्याख्या कुछ इस तरह कर सकते हैं।

भग में अगर शिवलिंग की स्थित नीचे की ओर होती तो वह हमारे वासनात्मक प्रवृति का संकेत होता। लेकिन भग में लिंग की स्थिति ऊपर की ओर दर्शायी हुई है। जो कामकला का शुद्धात्मक सही चित्रण है। यह मैथुनी जगत का शुद्धतम चित्रण है।

'ऊँ' में उस शिव का वास्तविक रूप दर्शाया गया है, जो विहंगम मार्ग का प्रतीक है।

साधना क्षेत्र में साम्यावस्था या मध्यबिन्दु नाभि केन्द्र पर होता है। आधा नाभि कामक्षेत्र में और आधा नाभि ज्ञानक्षेत्र में होता है। इसको पार करने में गुरु का परम

सहयोग है। गुरु चाहे तो मनोमय शरीर जो चौथे शरीर की स्थिति है, अगर शिष्य में योग्यता हो तो पहुँचा सकता है। चौथे शरीर तक द्वैत है। लेकिन पाँचवें शरीर (एस्ट्रल बॉडी) ब्रह्म शरीर में स्त्री और पुरुष का भेद मिट जाता है। यहाँ शिव का अर्द्धनारीश्वर का चित्र द्योतक में आता है।

आईन्सटीन का सिद्धान्त था कि इलेक्ट्रोन और प्रोटोन, न्यूट्रोन का चक्कर काट रहा है। इलेक्ट्रोन-निगेटिभ, प्रोटोन, पोजेटिभ और न्यूट्रान सूर्य की तरह बीच नाभिक में स्थित है लेकिन निष्क्रिय है।

लेकिन आज क्वान्टम का सिद्धान्त आ गया है कि अगर बीच के न्यूट्रान को तोड़ा जाय, तो जो परमाणु बम से ताकत मिलती है, उससे कहीं हजारों गुणा ऊर्जा वहाँ से प्राप्त होगी।

जिस समय न्यूट्रान टूटेगा अगर एक सेकेन्ड का हजारवाँ भाग तक टूटे, तो हजार तरह की अलग-अलग उपलब्धियाँ प्राप्त होगी। उस निष्क्रिय न्यूट्रान में निगेटिभ ओर पोजेटिभ दोनों के गुण छिपे हैं; जो इलेक्ट्रोन और प्रोटोन से ज्यादा ताकतवर है।

विशुद्धाय चक्र में पहुँचे साधक की यही स्थिति है। वहाँ साधक बिल्कूल साम्यावस्था में आ जाता है। वह भगवान जो रेणु में बसे हैं, उनकी स्थिति साधक की हो जाती है।

समाधि इस चौथे शरीर के बाद की स्थिति है। मांत्रिक या पिपालिका मार्ग वाले को चौथे शरीर से ऊपर जाने की व्यवस्था नहीं है।

कापालिक, मांत्रिक, हिप्नोटाईजर बहिर्मुखि साधक है। मनोमय शरीर तक जाकर मनःशक्ति के ताकत से भर जाते है।

इनकी समाधि नहीं लगती। विंहगम योग, रामा योग, मातंगी, कच्छप योग के साधक अर्न्तमुखी होते है। इनके चौथे शरीर के बाद समाधि लगती है।

मनुष्य पंचकोशीय

मनुष्य की आत्मा पाँच कोशो से संयुक्त है। जिन्हें पंचशरीर भी कहा जा सकता है। इन पाँच कोशों की व्याख्या एवं सप्त शरीर के साथ सम्बन्ध, निम्नांकित लेख द्वारा प्रस्तुत किया जा रहा है।

अन्नमय कोश :- अन्नमय कोश के विकास में अन्न का महत्व है। जो शरीर के कोशा के विकाश क्रम में सहयोगी हैं अन्नमय कोश अन्न से शक्ति प्राप्त करके, मल के रूप में निष्क्रिय पदार्थ को बाहर फेंक देता है।

इसलिए भोजन में सात्विक, राजसिक, तामसिक भोजन के प्रकार से क्रमशः आत्मा, मन एवं शरीर का विकास- आत्मविकास, चित् विकास, एवं बुद्धि विकाश के रूप में होता रहता है।

उत्तेजना बाली भोजन हमारे रूधिर प्रवाह गति को तेज करके मस्तिष्क एवं धमनियों में रक्त संचार बहुत तेज कर देती है। जिसके कारण हमारे बुद्धि विकाश का तन्तु बहुत निर्बल पड़ जाता है।

जब हम भोजन करते हैं, तो हमारी प्राण ऊर्जा ज्यादा से ज्यादा आँतो की ओर बहने लगती हैं। हम मस्तिष्कीय तन्तू में ऊर्जा प्रवाह के कमी होने के कारण तंद्रिल होने लगते हैं।

अन्नमय कोश इस स्थूल जगत में स्थूल शरीर के पोषण के लिए अतिआवश्यक तो हैं! लेकिन ज्यादा ऊर्जा प्रवाह को ग्रहण कर लेने के कारण हमें केवल शारीरिक शक्ति देता है।

अतः सात्विक एवं समतुलित भोजन हमें, आयुष्मान् एंव स्वस्थ रखने में प्रकृतिप्रदत्त सिद्धान्त है।

प्राणमय कोश :- प्राणमय कोश में प्राणवायु का महत्व है। प्राणशक्ति सूक्ष्म शरीर के निर्माण में अपनी ऊर्जा प्राण वायु से प्राप्त करती रहती है एवं प्राणवन्त रहती है। ऑक्सीजन के रूप में स्थूल शरीर के श्वसनक्रिया द्वारा प्राणतत्व लेकर प्राणवान रहती है एवं मल के रूप कार्वनडायऑक्साइड छोड़ देती है।

अतः सूक्ष्म शरीर के शुद्धतम रूप एवं चित्‌शक्ति के विकास हेतु शुद्धतम प्राणवायु द्वारा प्राण ऊर्जा प्राप्त करना आवश्यक है। प्राणायाम की अनेक विधियाँ, इसी सूक्ष्म शरीर को प्राणवान एंव जीवन्त रखने के

लिए है।

हम जितना गहरा साँस लेते हैं, तो वह छाती से ही लौटकर बाहर आ जाती है। जो उथली-उथली श्वाँस के रूप में हममें प्राण ऊर्जा, सूक्ष्म शरीर को जीवन्त करने में नहीं पहुँचा पाती है।

इसलिए मंदगति में पेट के नाभिकुण्ड तक श्वाँस पहुँचे वगैर, हम सूक्ष्म शरीर स्थित प्राण शरीर को समुचित ऊर्जा नहीं दे सकते हैं

हमारी साधना निष्फल होकर, आत्मतत्व तक पहुँचने की श्रृखंला ही तोड़कर रख देती है। पुरूष एवं नारी के विकास में, इस श्वाँस गति की भी अहम भूमिका है।

स्त्रियाँ बक्ष का आकर्षण बढ़ाने में श्वॉस की प्राकृतिक गति से दूर होकर, अपने सीना से ही श्वाँस लेने की अभस्त हो जाती है एवं चित् शक्ति से दूर होने के कारण आत्म शक्ति तक नहीं पहूँच पाती है एंव अपने मुक्ति का मार्ग, हृदय द्वारा प्रेमबंधन में बंध जाने के कारण सदा के लिए बन्द कर लेती है।

जबकि प्राणवायु का नाभिकुण्ड के ताण्डैन बिन्दु पर स्पर्श बनाने के लिए श्वॉस की मन्द से मन्द गति में प्राणायाम की मुद्रा बनाने से, कुण्डलिनी शक्ति द्वारा सूक्ष्म शरीर में प्रवेश किया जा सकता है।

हमारी प्राणमय कोशा साधू-संतो के ऊर्जा तरंग के घेरे में आकर, प्राणवन्त हो जाती है। क्योंकि साधू-संत का दया, प्रेम, करूणा, मैत्री उन्हें बराबर मुदितावस्था में रखती है।

जिससे उनका प्राणमय कोशा काफी ऊर्जावान होकर, अपने ओरामंडल एवं प्रभामंडल से दिव्य प्राण तरंग नितसर्गित करती रहती है। जिसके परिधि में जा कर, हम काफी शान्ति का अनुभव करते हैं।

ज्ञानकर्म के सम्पादन का सारा कार्य प्राण से बना प्राणमय कोश करता है। श्वॉसोच्छ्वास के रूप में भीतर-बाहर आने-जाने वाला प्राण स्थान तथा कार्य के भेद से 10 प्रकार का माना गया है। जैसे व्यान, उदान, प्राण, समान और अपान मुख्य प्राण हैं, तथा धनंजय, नाग, कुर्म, कृकंल और देवदत गौण प्राण या उपप्राण हैं।

प्राण मात्र का मुख्य कार्य है- आहार का यथावत् परिपाक करना, शरीर में रसों को समभाग में विभक्त करना तथा रसायनों को वितरित करते हुए, देव

स्वरूपा इन्द्रियों को शुद्ध करना, रक्त के साथ सर्वत्र देह में घूम-घूम कर मल का निष्कासन करना, जो शरीर में विभिन भागों से आकर मिलते है।

मनोमय कोश :- यह हमारे शरीर का तीसरा परत है, लेकिन शरीर के रूप में चौथा शरीर मनोमय शरीर के विकास का कोश है। यह अदृश्य रूप से हमारे विचार तरंग को हमेशा अपने मेम्बरान सेल (यादास्त कोशा) पर संग्रहित करता रहता है। हमारा मनोमय कोश काफी संवेदनशील होता है।

हम कुछ देखते हैं, कुछ पढ़ते हैं, कुछ कर्म करते हैं, कुछ विचार करते हैं, वह सब हमारे मनोमय कोश में सूक्ष्म तरंग द्वारा संग्रहित होता रहता है। मनोमय कोश आकाश तत्व का सम्बाहक है एवं कुण्डलिनी जागरण की स्थिति में मनुष्य के स्वगृह में इसका कम्पन्न तरंग बना रहता है।

अगर हम कुछ भूलना चाहते हैं, तो लगता है, कि हम उसको भूल चुके हैं। लेकिन वह जो अपने यादास्त कोशा पर अपना शुभ (रेखाऐं अंकिल) बना लेती है। वह कभी मिटाया नहीं जा सकता है। सभी हमारे चित् के पटल पर अंकित हो जाता है एवं जन्म-जन्मातर तक हमारे योनिगत चक्रवात का कारण होता है।

इस स्थूल शरीर और मनोमय शरीर के बीच की कड़ी मेरा प्राणमय शरीर है। जो स्थूल जगत से सूक्ष्म जगत के सेतु की तरह जोड़कर हमें प्राणवन्त किये रहता है। हमारे मृत्यु के समय, हमारा स्थूल शरीर तो मर जाता है !

लेकिन यह मनोमय शरीर तब तक नही मरता, जब तक हम विज्ञानमय कोश के आत्म शरीर में प्रवेश नहीं कर जातें!

क्योंकि मनोमय कोश के जीवन्त रहते, हमारा मनोमय शरीर अपने प्राण ऊर्जा का स्वरूप बदलते हुए हमारे योनिगत चक्रवता को चलाता रहता है। मनोमय शरीर के अन्तर्गत, मन , बुद्धि, अहंकार और चित् है। जिन्हें अन्तः करण चतुष्ट्य कहते हैं।

पाँच कर्म इन्द्रियां हैं, जिनका सम्बन्ध बाह्रय जगत से है। लेकिन पाँच ज्ञान इन्द्रीयाँ द्वारा हम अन्तर-जगत से जुड़े होते हैं। जिसका आधारभूत नींब हमारा मनोमय शरीर है।

मनोमय कोश का सीधा सम्बन्ध मन से है। हम समझते हैं, कि मन की गति

केवल ईथरिक है ! पदार्थ तो आणविक कणों से बना ठोस अस्तित्व में है !

लेकिन ऐसी बात नहीं है ! हमारा विचार तरंग भी कुछ भार लेकर अपना कुछ आकार-प्रकार एवं रंग-रूप लिए रहता है। ताम्बे के तार या ईथरिक गति में विद्युत की तरह हमारा विचार तरंग भी दौड़ पड़ता है। जो आज के विज्ञान की बुनियादी नींब है।

हमारे श्वॉसों की गति से भी, हमारा विचार तरंग तरंगायित होता रहता है एवं अपना स्वरूप बदलता रहता है। हम देखते हैं कि काम, क्रोध या प्रेम में हमारे श्वाँस का लय बिलकूल बदल जाता है। हमारे स्थूल शरीर का सीधा सम्बन्ध हमारे सूक्ष्म शरीर से है, जहाँ मन का निवास एवं दस प्राण का नियंत्रण कक्ष है।

इसलिए अगर शरीर पर कुछ ज्यादा या कम भार या कोई भी प्रतिक्रिया होती है, तो श्वॉस का लय बदल जाता है एवं मानसिक गति में भी कुछ बदलाव आता है, तो उसका सीधा प्रभाव हमारे स्थूल शरीर पर पड़ता है।

इस मनोमय कोशा में ही नहीं !

शरीर के सभी कोशा पर हमारे प्राणवायु द्वारा प्राणतत्व की साधना से ही प्राण सघ सकता है। शरीर और मन एक दूसरे पर अश्रित है। हमारे मन से ही विचार तरंग उठती है एवं हमें स्वप्न एवं कल्पना में भम्रित करती रहती है।

अतः आज स्वप्न एवं विचारों की फोटोग्राफी की सम्भव हो पायी है।

हम बराबर मन की शान्ति चाहते हैं। लेकिन आजतक मन को शान्त नहीं देखा गया है। समाधि में भी हमारा आकाश तो बदल जाता है ! हम बिलकूल निश्चल एवं शान्त हो जाते हैं ! लेकिन हमारी अन्तरयात्रा सूक्ष्म शरीर के सूक्ष्म तरंग में पश्यन्ति एवं परा वाणी में शुरू रहती है।

इसलिए मनोमय कोशा के मनोमय शरीर तक शान्ति नहीं है। शान्ति का मतलब है, मन से पार चला जाना। लेकिन मनोमय कोशा से निर्मित मनोमय शरीर के गिरने पर ही, मन से पार जाया जा सकता है एवं विज्ञानमय कोश में प्रवेश किया जा सकता है।

मनोमय शरीर मनुष्य का स्वगृह है। अतः उचित आहार-विहार, आयाम,

प्राणायाम द्वारा ही मन को शान्त कर ध्यान की सर्वाधिक परमशुद्ध अवस्था में विज्ञानमय कोश में प्रवेश किया जा सकता है।

विज्ञानमय कोश :- जब हम साक्षीभाव में चले आते हैं, तो विज्ञानमय कोश का उदय होता है। यह सूक्ष्म शरीर का चौथा भाग है, जो आत्म शरीर के रूप में उदय होता है।

यहाँ विचार भी आत्मकेन्द्रीत होकर साधक के नियंत्रण में चला आता है। इसके मुख्य तत्व- ज्ञानइन्द्रीयाँ एवं ज्ञानयुक्त बुद्धि ही है !

लेकिन ध्यान शक्ति के ऊर्जा में- असत्य, भ्रम, मोह, आसक्ती सब भस्म होकर, ऋतम्भरा प्रज्ञा की स्थितिप्रज्ञ स्थिति में हमें ले आता है।

मन के पार आ जाने से मनस शरीर भी टूट कर गिर जाता है। हम आत्म शरीर को उपलब्ध हो जाते हैं। विज्ञानमय कोश के आत्म शरीर में उपलबध हो जाने से, आत्म के विशुद्ध परदर्शी स्वरूप में चले आते हैं। विज्ञानमय कोश में सूक्ष्म शरीर को भी नहीं देखा जा सकता है।

हमें ईथरिक एवं न्युत्राण की गति में प्रकाश वेग की गति के प्रकाश में पश्यन्ति एवं परा वाणी का कम्पन्न तरंग प्राप्त हो जाता है। हमारे विचारशीलता का भार भी, भारहीन होकर तिरोहित हो जाता है एवं हमें अति सूक्ष्म गति प्रदान कर देता है।

पीछे के सभी शरीर तो हमारे आहार-विहार एवं प्राणवायु से शुद्ध होते हैं। लेकिन विज्ञानमय कोश को केवल ध्यान की परमशुद्धावस्था में ही पारदर्शिता प्राप्त कर अति निर्मल आत्मकेन्द्रीत शरीर का बोध होता है।

ध्यान ही परम शुद्धतम ऊर्जा पैदाकर विज्ञानमय कोश से निर्मित अति सूक्ष्म तरंग के धनत्व को गति दे सकता है।

ध्यान की चरम सीमा में प्रवेश करने से ही समाधि की उपलब्धि होती है। जहाँ सविकल्प समाधि ही हमें तीसरे मस्तिष्क के अच्छुन्न भंडार में प्रवेश कराकर, अल्फा तरंग के रूप में ब्रह्माण्ड का अति सूक्ष्म तरंग पकड़ा सकती है।

यही समाधि की स्थिति जब निर्विचार समाधि का रूप लेती है, तो हम शुद्धतम परा वाणी के क्षेत्र में अल्फा रश्मि के, कम से कम दीर्धावाली प्रकाश तरंग

में प्रवेश कर जाते हैं। हमारे मस्तिष्क के तीनो भाग में उठते बीटा रे, थीटा रे, डेल्टा रे ही धनीभूत होकर क्रमशः- हमारे-मन, बुद्धि, अहंकार का निर्माण करती है।

लेकिन विज्ञानमय कोश के ध्यान ऊर्जा द्वारा शुद्धिकरण हो जाने से, सभी का केन्द्रीभूत ऊर्जा निर्विकल्प समाधि की अवस्था में अल्फा की लघु ऊर्जा में केन्द्रीत होकर, हमें आनन्दमय कोश के विशुद्ध पारदर्शी स्वरूप में ईश्वर के मूल केन्द्र में समाहित करने लगती है।

मन को कभी नष्ट नहीं किया जा सकता है। उसके पार आने का एक ही रास्ता है! ध्यान द्वारा निर्विकल्प समाधि ! जहाँ मन भी अपना अस्तित्व खो देता है !

हमारे ध्यान ऊर्जा से मन का अस्तित्व शून्यावस्था में आकर, अचेतन मन की शुद्धावस्था को प्राप्त कर लेती है।

जिस तरह न्युक्युलियर के एलेक्ट्रॉनिक गति को हमारा विज्ञान सैद्धान्तिक रूप से ही प्रयोग कर पाती है। किसी भी यंत्र से देखा नहीं जा सकता है।

उसी तरह विज्ञानमय कोश से प्राप्त ब्रह्मशरीर को नहीं देखा जा सकता है। हमारी ईच्छाशक्ति भी जो पदार्थ की तरह कुछ न कुछ भार लिये हुए है, परा वाणी के सूक्ष्म तरंग पर लेन्सीकृत होने लगती है।

हम जिधर भी ध्यान केन्द्रीत करते है, तो लेन्सीकृत सभी किरणों की तरह हमारी सारी अस्मिता एक बिन्दु पर समाकर, अपना आकाश ही बदल लेता है एवं हमारा आत्म शरीर एवं ब्रह्मशरीर भी ईश्वर के शक्ति रूप की प्रतिछाया ही होती है।

लेकिन मानसिक शक्ति में बिखरी हमारी भावनायें, हमारी कम्पनायें केन्द्रीत ध्यान की विशुद्धतम अवस्था में निर्विचार, निर्विकार समाधि को प्राप्ति कर लेती है। हम ही ईश्वर के केन्द्रक में, समाने की सूक्ष्मतम तरंग गति पा लेते है ! सूक्ष्मतम् से सूक्ष्मतम् तरंग, ब्रह्मव्यापी है एवं बिना तरंग के तो गति है ही नहीं !

अतः किसी भी कोशा एवं शरीर के प्राप्ति में, ध्यान ही परमगति है एवं विश्व में सबसे ऊर्जावान, शक्तिशाली एवं परमविशुद्ध रूप पकड़ने का केन्द्रबिन्दु है। साक्षी भावदशा में द्रष्टा भावगत स्वरूप ही हमारा ईश्वरीय स्वरूप है।

आनन्दमय कोश :- आनन्दमय कोश हृदयाकाश का प्रेमप्लावित पाँचवा कोश है। इसे हिरण्मय कोश, हृदय गुहा, हृदयाकोश, कारण शरीर, लिंग शरीर आदी नामो से भी पुकारा जाता है। इस कोश का सम्बन्ध हमारे आन्तरिक जगत एवं अचेतन मन से है।

मानसिक शक्ति के विकास के वाद ही परामानसिक शक्ति में प्रवेश किया जा सकता है। दूरदृष्टि, दूरबोध, विचार सम्प्रेषण आदि तो मानसिक शक्ति का विकास होने पर परमगामी हो पाता है।

लेकिन हमारे मस्तिष्क में अनहदनाद की तरंगे जब अल्फा ध्वनी तरंग का रूप पकड़ती है, तो हम मानसिक शक्ति से ऊपर परामानसिक शक्ति एवं परा वाणी में प्रवेश कर जाते हैं।

योगी का यह आनन्दमय कोश जो ब्रह्मशरीर का निर्माण करती है, हमारे ध्यान के निर्विज समाधि में ही सम्भव है।

कुण्डलिनी जागरण की स्थिति में इस आनन्दमय कोश की उपलब्धि सहस्त्रार चक्र में सम्भव हो पाती है। जहाँ हम ब्रह्मानन्द की स्थिति प्राप्त कर केवल एकाकार की मुर्ति होकर, परमानन्द हो जाते हैं।

सचमुच देखा जाय तो इस मैथुनी जगत का आत्मखंड का मिलन बिन्दु शिव-शक्ति के सामंजस स्वरूप में सहस्त्रार में ही है ! जहाँ केवल आनन्द की ही कल्पना की जा सकती है।

हमारे विज्ञानमय कोश के आत्मशरीर द्वारा ही संसार के सारे विज्ञान प्रगट होते हैं। लेकिन आनन्दमय कोश के दिव्यप्रकाश ज्योति से ही यह सारा संसार ज्ञान-विज्ञान से प्लावित हो पाता है।

आनन्दमय कोश तो अपने आप में ज्ञान निष्पंद है। कोई भी कामना, आकांक्षा, कल्पना वस्तुतः किसी भी किरण के प्रकाश वेग में कुछ भार पैदा करके ही कम्पन्न वेग पकड़ सकती है। वेग तो दो कम्पन्न के टकराने से ही सम्भव है !

अतः इस आनन्दमय कोश में सिद्धियों का भार लेकर प्रवेश नहीं किया जा सकता है। बैखरी वाणी एवं मध्यमा शब्दवोध तो, हमारे इस स्थूल जगत के भाषायि तरंग हैं। जो हमेशा तरंग स्वरूप में पृथ्वी

के गुरूत्वाकर्षण में ही नष्ट हो जाते हैं।

पश्यान्ति और परावणी, उठती तो हमारे मस्तिष्क से ही है ! लेकिन पृथ्वी के गुरूत्वाकर्षण का प्रभाव उसपर नहीं होता है। वह व्योम के अन्तरिक्ष में कई आकश गंगा को भेदकर परमसत्य में विलिन हो जाती है।

आनन्दमय कोश हमारे आत्मा की परम शुद्धावस्था है। जो पृथ्वी के गुरूत्वाकर्षण तरंग एवं थीटा, बीटा, डेलटा एवं अल्फा के छोटे तरंग से पार चली जाती है।

आनन्द एक ऐसा शब्द है, जो प्रत्येक मनुष्य जाति, उसको प्राप्त करने के लिए अपना सर्वस्व निक्षावर करने को तैयार रहता है। लेकिन आनन्द क्या है ! इससे आजतक हम परिचित नहीं हो पाये हैं। आनन्द के लिए भागम-भाग मची है !

लेकिन आनन्द इस स्थूल जगत की माया में, है ही नहीं ! आनन्द तो सबकुछ छोड़कर समाधि की स्थिति में ज्ञानशून्य हो जाने में ही है। जो आनन्दमय कोश के ब्रह्मशरीर में ही स्थितिप्रज्ञ हो जाने में है।

आनन्द किसी के माध्यम से प्राप्त नहीं किया जा सकता है। आनन्द तो स्वयं के आत्म समाधि में लीन होने पर ही सम्भव है। आनन्द की स्थिति हमारे करूणा, मैत्री, मुदिता के कामक्षेत्र को पार कर जाने से ही सम्भव है।

हम समझते हैं, कि आनन्द पाकर हम सुख प्राप्त कर लेते हैं। लेकिन आनन्द की स्थिति तो सुख-दुख, स्वर्ग-नर्क से ऊपर की स्थिति है। जहाँ एकाकार बिन्दु में स्वयं समाकर ईश्वरीय प्रकाश पुंज में केवल एक किरण बिन्दु में समा जाना है।

जबतक ज्ञान का बोध बना रहता है, तब तक द्वैत है एवं शरीर है। लेकिन ध्यान के निर्विज समाधि में तो हम ज्ञानशून्य हो जाते हैं। चूँकि ज्योतिकिरण के एक बिन्दु के अलावे हमारा ध्यान और कुछ ग्रहण ही नहीं करता है।

हमारे षट्चक्रो में क्रमानुसार पंचकोशो की सूक्ष्मतम प्राण ऊर्जा प्रवाह का स्वरूप उनके मूलतत्व के कम्पन्न तरंग में बीज रूप में है। सात शरीर के विकासक्रम में भौतिक शरीर का विकास '7' वर्ष में हो जाता है।

प्राणमय कोश से 14 वर्ष तक में भाव शरीर का विकास एवं तीसरे कोश

प्राण साधना
चित्र सं० 26

जन्म चक्र
ॐ

चित्र संख्या - 28

तक में सूक्ष्म शरीर तक का विकास होकर, 21 वर्ष में मनोमय शरीर में प्रवेश हो जाता है। मनोमय शरीर के समाप्ति एवं आत्मशरीर के संधिकाल पर उपलब्धियों का समय, हमारे योग साधना में बहुत महत्वपूर्ण है। जो पैतीस साल तक की आयु रेखा है।

जो हमारे पूर्ण प्राण ऊर्जा के संचरण गति में योग साधना का मध्यकाल है एवं आकाश और अतरिक्ष के (ब्लैक होल) अन्ध बिन्दु की तरह द्वैत से अद्वैत प्राप्त कर मनस शरीर एवं आत्म शरीर का सेतु है।

इस आत्म स्थिति में पहुँचे साधक के सारे कर्मफल भष्म हो जाते हैं एवं स्थितिप्रज्ञ की स्थिति प्राप्त कर अर्द्धनारीश्वर का स्वरूप पकड़, चिदानन्द एवं ब्रह्मानन्द की श्रेणी में ईश्वरीय मूलकेन्द्र में प्रवेश कर जाते हैं।

यह स्थिति ब्रह्म शरीर एवं निर्वाण शरीर की होती है, जो प्रति सात वर्ष पर हमारे मनस शरीर में अंकुरित होती तो है ! लेकिन साधना के बल पर ही हम कुण्डलिनी गति एंव आतमगति में आगे बढ़ सकते हैं।

प्रकृति प्रदत्त ऋणात्मक एवं घनात्मक प्रकृति की तरह कोशा में, अनुकूल एवं प्रतिकूल दोनों के गुण विद्यमान रहते हैं। प्रथम कोशा में प्रतिकूल में कामवासना का विकास है, तो अनुकूल में ब्रह्मचर्य फलित होता है। जहाँ मूलाधार पर पृथ्वीतत्व एवं त्वचा से अस्थि तक का सम्बन्ध इस कोशा से रहता है।

अगर द्वतिय कोशा के विकासक्रम में- भय, घृणा, क्रोध और हिंसा की प्रतिक्रियात्मक उपलब्ध्यिाँ हैं, तो इसके साकारात्मक गुण में- अभय, प्रेम, क्षमा और अहिंसा का स्वरूप है। जो कुण्डलिनी जागरण की स्थिति में स्वाधिष्ठान, जो जलतत्व से सम्बन्धित है, उसका स्वरूप है।

तीसरे कोश का विरोधात्मक गुण संदेह है, तो साकारात्मक गुण श्रद्धा, विचार और विवेक है। हमारा संदेह ही हमारे साधना का रूपान्तरित स्वरूप पकड़ हमारे श्रद्धा एवं विश्वास की सीढ़ी बनती है। जो मानव प्रवृति का स्वभाविक गुण है। हम अपने विचारों की पवित्रता से ही विवेकवान नर-नारी होकर समाज को कुछ दे पाते हैं।

जब हम चौथे शरीर मनोमय शरीर में प्रवेश कर जाते हैं, तो हमारा नाकरात्मक स्वभाव का स्वरूप कल्पना एवं स्वप्न में भ्रमित होता रहता है।

लेकिन साकारात्मक प्रवृति जब साधना के बल पर विकसित होती है, तो संकल्प और अतिन्द्रिय दर्शन हमें आत्म स्थिति में ले आती है।

जब हम पांचवे शरीर आत्म शरीर से ब्रह्मशरीर में प्रवेश कर जाते हैं, तो उसका नाकारात्मक गुण-मुर्च्छा और साकारात्मक गुण द्वैत से अद्वैत में स्थितिप्रक्ष होने का स्वरूप है। प्रत्येक नाकारात्मक गुण प्रकृतिप्रदत्त मानवीय गुण होने के बाबजूद भी हमारा प्रतिकूल गुण है, जो साधना के बल पर साकारात्मक स्वरूप पकड़ सकता है।

साकारात्मक और नाकारात्मक गुण स्वाभाव तो, हम मानव के इस मैथुनी जगत का प्राकृतिक गुण है। जो सदैव हमारे साधना के बल पर सम्बन्धित सात शरीर के अभिव्यक्ति में हमारे स्वभाव एवं कर्त्तव्य में दृष्टिगोचर होता है।

लेकिन इन सभी कोशो का विकास हमारे ध्यान एवं प्राणवायु के सुद्धिकरण से ही सम्भव है। जो हमें विज्ञानमय कोश के अस्तित्व तक ले जाकर, आनन्दमय कोश की भावदशा में ला सकती है। जो हमारा ईश्वरीय स्वरूप है।

ध्यान में हमारा मस्तिष्क का तीनो भाग सक्रिय हो उठता है एवं हमारा विचार तरंग क्रमशः बीटा, थीटा, डेलटा के रूप में विश्व ब्रह्माण्ड से जुड़ जाता है।

अतः प्राणवायु तो इस स्थूल जगत में हमारे प्राण ऊर्जा का सम्बाहक है ! लेकिन ध्यान ही इस ऊर्जा तरंग गति को हमारे आत्म तरंग से जोड़ सकती है। ध्यान की पराकाष्टा पर पहुँचे वगैर हम विज्ञान मय कोश में प्रवेश नहीं कर सकते हैं।

हमारा अचेतन मन अपने स्वभाविक रूप में विज्ञानमय कोश में ही प्रगट होता है। जहाँ से हमारा चेतन एवं अचेतन का समन्वय बिन्दु आनन्दमय कोश में हमें ईश्वरीय स्वरूप दे देता है।

मनुष्य का जीवन इसलिए वरदान स्वरूप है, कि वह पंचकोशिय है। आत्मा तो पृथ्वी, आकाश, नभ तक स्थूल एवं सूक्ष्म सभी प्राणी में व्याप्त है। लेकिन मनुष्य से नीचे के स्थूल एवं सूक्ष्म जगत में सभी प्राणी एक कोशिय से चतुर्थ कोशिय तक हैं। **लाखो-लाखो योनिगत चक्रवात के बाद यह पंचकोशिय मनुष्य तन हमें प्राप्त हुआ है। जहाँ अदृश्य शक्ति के रूप में हमें कुण्डलिनी शक्ति दी गयी है। जिसके साधना स्वरूप में हम अपने पंचकोशिय तत्व को**

शुद्धतम स्वरूप देकर-स्वर्ग-नर्क, सुख-दुख की परिधि को तोड़ते हुए आनन्दमय भावदशा में ईश्वरीय कील में समाहित हो सकते हैं।

हमारे तथाकथित भगवान ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी चुतुष्कोशिय प्राणी के श्रेणी में हैं। उन्हें प्रकृति ने अन्नमय कोश नहीं दिया है। उन्हें भी प्राकृतिक स्वरूप में बार-बार अवतार के रूप में पृथ्वी पर जन्म लेने पड़ते हैं। जहाँ मानव योनि की प्राकृतिक भावदशा एवं कर्मबंधन से उन्हें गुजरना पड़ता है।

अतः बन्धुओं !

अपने इस वरदानमय स्वरूप को समझ, हमें आहार-विहार एवं मानसिक शुद्धता के प्रयोग में-प्रेम, आस्था, विश्वास, करूणा, मैत्री, मुदिता का जीवन जीकर आनन्दमय सागर हो जाना है !

जहाँ हमारी सारी तृष्णा, कल्पना आत्मसात होकर, अपना भारीय स्वरूप छोड़ देती है ! हम निर्मल स्वरूप में विज्ञानमय एंव आनन्दमय कोश में प्रवेश कर स्वयं ब्रह्मानन्द हो जाते हैं !

आदत बुरी सुधार लो

आदत बुरी सुधार लो, फिर हो गया भजन !
मन की तरंग मार लो, फिर हो गया भजन !!
दृष्टि में तरे दोष हैं, दुनिया निहारती !
समता का आँजन आँज लो, फिर हो गया भजन !!
आये कहाँ से और अब, जाना कहाँ तुम्हें !
मन में यही विचार लो, फिर हो गया भजन !!
नेकी सभी के पास में, जितनी बनी करो !
मत ! शिर पर बदी का भार लो, फिर हो गया भजन !!
कटुता मनो से त्याग दो, मिठे बचन कहो !
वाणी का स्वर सुधार लो, फिर हो गया भजन !!
अच्छे बुरे जो भी तुम्हें, कर्मो के फल मिले !
हँस कर सभी गुजार लो, फिर हो गया भजन !! (प्रहलाद)

प्राण साधना

<u>चित्र संख्या- 26</u>

यह चित्रण साधना के क्रम में प्राण ऊर्जा के विकास क्रम में है । प्राण ऊर्जा तो ब्रह्मव्यापी है । लेकिन उसका सम्बाहन इस पृथ्वी पर प्राणवायु के द्वारा ही है । प्राण ऊर्जा घ्वनी तरंग एवं प्रकाश तरंग के रूप में अणु-अणु क्या, महारेणु में छिपे ईश्वर तक में तरंगायित हो रही है !

लेकिन उसकी तरंगगति हम प्राणवायु के मंद-मंद श्वसन क्रिया द्वारा केवल नाभिकुण्ड के ताण्डेन बिन्दु पर स्पर्श के द्वारा ही सूक्ष्म शरीर में महसूस कर सकते हैं।

प्राणी मात्र में योनिगत स्वरूप में प्राण ऊर्जा अपने स्वरूप का बटवारा कर लेता है एवं उसी योनि के गति में, उसका अधोगति एवं उर्ध्वगति की गतियाँ संचरित करने लगती है ।

साधना क्रम में देखा गया है, कि शरीर से श्वाँसों द्वारा पृथ्वी तत्व, जल तत्व, अग्नि तत्व के भार को कम कर लेने से यह स्थूल शरीर भी भारहीन होकर, पृथ्वी का गुरूत्वाकर्षण कम कर लेता है ।

पृथ्वी का गुरूत्वाकर्षण जिस तरह अपने केन्द्र के अन्ध बिन्दु पर शून्य की स्थिति बनाकर, उतरी एवं दक्षिणी ध्रुव के द्वारा अपना गुरूत्वाकर्षण तरंग, प्रकाश तरंग में बदल, नक्षत्र एवं ग्रहों को अपने आकर्षण में बांधे रहता है ।

उसी तरह मूलाधार पर हमारे शरीर का गुरूत्वाकर्षण केन्द्रीत रहता है। चौदह भूवन में सात भूवन पर यह मुख्य गुरूत्वाकर्षण केन्द्र है। जिसके कारण किसी अध्यात्मिक साधना में हम सिद्धासन, ब्रजासन, सुखासन एवं योगनिद्रा में सम्पूर्ण शरीर का केन्द्र मूलाधार पर मानकर, मेरूडण्ड को सीधा रखते हैं ।

प्रस्तुत चित्र में मूलाधार पर नीचे की ओर ज्योति तरंग है! स्वाधिष्ठान एवं नाभि चक्र तक प्रकाश तरंग मंद आवृत बनाते हुए प्रकाशित हो रही है । अनाहत पर ज्योति तरंग के स्फुर्लिंग का आवृत बहुत तेज हो गया है । आज्ञा चक्र पर केवल प्रकाश बिम्ब की तरह दिखलाया जा रहा है ।

लेकिन विशुद्धाय एवं ब्रह्मरंध्र पर इस ज्योति तरंग का आवृत काफी सधन, तीव्रतर एवं उर्ध्वगामी हो रहा है । यह प्रतीक है, साधना क्रम में तीनों कुण्डल

खुल जाने पर आत्मा के उर्ध्वगमन का ।

खेचरी मुद्रा में साधक पुथ्वी तत्व, जल तत्व एवं अग्नि तत्व को कम करके अपने प्राणवायु के साधना में किसी तारा को लक्ष्य करके उड़ते रहते हैं । उनका इस स्थूल शरीर का भार भी पृथ्वी के गुरूत्वाकर्षण को कम कर लेता है।

चूँकि पृथ्वी का गुरूत्वाकर्षण बल भी इन भारीय तत्वों के आधार पर, अपने बल का तरंग बनाये रहता है ।

मेरे अनुभव में प्रतक्षदर्शिता में मैंने देखा है, कि मेरे भाई साहब जो पूर्व से ही आसन सिध्दि के अभ्यासी थे। सवा महिना का संकल्प लिए थे, आसन सिद्ध के लिए। महीना पूरते-पूरते उनका, आसन से एक फीट ऊपर शरीर उठते देखा गया । कमरा दिव्य प्रकाशवलय से भरा हुआ था।

अतः अपने मूलाधार पर भार हीनता के साधनामय प्रयोग से, हम इस स्थूल शरीर को भी सूक्ष्मगति दे सकते हैं। साधक अपनी स्थूल शरीर को भार हीनता की दशा में लाने के लिए, खेचरी मुद्रा के प्राणायाम पद्धति में अपने जिन्हा को उल्टाकर, तालू के लवलवी से टपकते अमृत बुन्द को पान कर, भारीय तत्व को कम करते हैं ।

प्राण साधना में सूर्य चक्र की साधना में इस स्थूल शरीर से सूक्ष्म शरीर अलग होकर, विश्व या अन्तरिक्ष के किसी कोने में विचरण कर सकता है । उसकी सूक्ष्म शरीर एवं स्थूल शरीर का रज्जू तन्तू द्वारा अन्तर जगत तक जुड़ाव रहता है ।

इस साधना क्रम में कृष्ण को भी देखा गया है एवं उच्चतर ऋषि, महर्षि एक ही समय में कई जगह उपस्थित होते देखे गये हैं ।

भूल न जाना

पथ भूल न जाना पथिक कहीं, पथ भूल न जाना पथिक कही,
शैषव के कुछ सपने होगें, मदमाता सा यौवन होगा।
इस यौवन की उदृखंलता में, पथ भूल न जाना पथिक कहीं !

जन्मचक्र

चित्र संख्या-27

यह सृष्टि मैथुनी चक्र में है। हम जन्म चक्र को सृष्टि चक्र के रूप में मान सकते हैं। चूंकि सृष्टि का निर्माण वगैर मैथुन के है ही नहीं ! चाहे एक ग्रह पिण्ड, दूसरे का चक्कर लगाता हो या एक आकाशगंगा दूसरे आकाशगंगा का चक्कर लगाता हो ! हम मैथुन को केवल संभोग की दृष्टि से देखते हैं ।

लेकिन जब भी जो अदृश्य ध्वनी तरंग या अदृश्य ज्योति तरंग एक कम्पन्न गति में आता है, तो समागम हो जाता है एवं उसके प्रतिफलन में एक नयी अभिव्यक्ति नये रूप में सामने आ जाती है। प्राकृतिक इन्हीं सिद्धान्तों के प्रारूप में मंत्र विज्ञान एवं प्राण विज्ञान का उद्भव संभव हो पाया है। चित्रित चित्र में इन्हीं जन्म प्रक्रिया के निर्माण गति में जीवन-मृत्यु एवं अदृश्य सात शरीर के निर्माण से, कर्मबंधन गति को दिखाने का प्रयास किया गया है।

पुष्प वाटिका जैसे सुगन्धित वातावरण में कृष्ण जैसे अवतारी पुरूष को नारी के समागम सिद्धान्त को प्रस्तुत कर, कुण्डलिनी जागरण के प्रक्रिया पद्धति में दिखलाया जा रहा है। कृष्ण और राधा का प्रेम तो ईश्वरीय अनन्त परीधि को लांघते हुए केन्द्रक बिन्दु के रूप में गोलोकवासी होकर, राधा-कृष्ण के नैसर्गिक देवत्व प्राप्त प्रेम, आस्था और विश्वास के रूप में वर्णन किया गया है।

राधा तो बाल विवाह के कुरीतियों के कारण बाल्यावस्था से ही विवाहित थी। कृष्ण और राधा के प्रेम प्रसंग का बर्णन उनके बाल्यावस्था एवं किशोरावस्था के निर्मल उम्र तक का ही नैसर्गिक प्रेम के रूप में किया गया है।

जहाँ कामवासना का कोई स्थान नहीं है । तो जन्म चक्र द्वारा सृष्टि का निर्माण कृष्ण ने, राधा के साथ समागम करके नहीं किया !

यह प्रतीक ऋषि सम्मत कच्छप योग में, अपने कुण्डलिनी चक्रो पर स्त्रैण और पुरूषत्व के कम्पन्न तरंग के बिन्दुगत एकाग्रता को प्रतिभाषित करती है। चूँकि जिस स्थूल जगत के मैथुनी समागम को हम कामवासना का मूलकेन्द्र मानते हैं, वह न वास्तविक आनन्द की सीमा है और न आनन्दातिरेक कि भावदशा है।

वह आनन्दातिरेक की भावदशा तो तभी संभव है, जब हम मनस

शरीर के चौथे चक्र अनाहत के केन्द्रक तक पहुँचकर, अपने ध्वनी कम्पन्न एवं ज्योति के कम्पन्न तरंग की परीधि को छोड़ कर, अर्द्धनारीश्वर का स्वरूप पकड़, उनके मैथुनी गति के कम्पन्न तरंग में समाहित हो, सृष्टि का केन्द्रक कम्पन्न तरंग हो पायें !

इन्हीं सिद्धान्तों को प्रतिपादित करते हुए आज दूरदर्शन, मोबाइल, कम्प्यूटर के द्वारा सूक्ष्मतम मैथुनी गति में विज्ञान का समागम स्वरूप देख रहे हैं। जो हमारे स्थूल जगत के कम्पन्न तरंग के, एक सदृश्य कम्पन्न तरंग में आने पर, इन मंत्रों की उपलब्धियाँ हमें प्राप्त होती है।

इन अदृश्य अर्द्धनारीश्वर स्वरूप को राधा और कृष्ण के नैसर्गिक प्रेम के रूप में देखा जा सकता है।

लेकिन चित्रण में कृष्ण को नीचे की अरणी एवं उनके पत्नी की श्रृंखला में रूक्मणी को ऊपर की अरणी के रूप में कुण्डलिनी जागरण के भगसमाधि के रूप में दिखलाया जा रहा है।

क्योंकि इस सृष्टि में, मानव योनिगत केन्द्रक में है। जहाँ उसे कुण्डलिनी शक्ति प्राप्त है। जो मूलाधार पर सर्पनी एवं ब्रह्मरंध्र पर सर्प के रूप में, अदृश्य शक्ति के रूप में हमारे मनिषियों ने वर्णन किया है।

हम बाहर के स्थूल जगत में भी सर्प की विभिन्न योनियों को देखते हैं। इस सृष्टि के निर्माण में हमेशा ऐसा देखा जा रहा है, कि जो योनिगत शरीर सूक्ष्म शरीर में होती है, वही योनिगत शरीर कर्मबंधन एवं भोग शरीर के रूप में स्थूल शरीर में भी होता है।

जो मैथुनी गति का स्वरूप एक परमाणु में है, वही मैथुनी गति का स्वरूप पूरी सृष्टि में है एवं एक परमाणु में पूरी सृष्टि की परिकल्पना की जा सकती है।

परमाणु के न्यूक्युलियर के नाभिक पर, स्त्रैण एवं पुरूषत्व के ऋण एवं धन विद्युत के प्रकाश तरंग गति की तरह, हमारे काम-कामेश्वरी की लीला अर्द्धनारीश्वर का स्वरूप पकड़े हुए है।

लेकिन आज अलबर्ट आईन्सटीन का न्यूक्यूलियर सिद्धान्त के विज्ञान की नींव हिलती दिख रही है। आईन्सटीन का शोधपत्र था कि ''प्रकाश गति 186000 मील प्रतिसेकण्ड से ज्यादा तेज, कोई भी कम्पन्न

गति, प्रकाश वेग से ज्यादा रफ्तार से गमन नहीं कर सकता है ।"

लेकिन आज के वैज्ञानिकों ने इस दावा को भी भंग कर दिया है। चूँकि यह गति आत्मा के आत्मगति की भी है ।

लेकिन आत्मा का भी कुछ भार है, तो उसको न्यूक्यूलियर विज्ञान के पद्धति में नाभिक को तोड़ कर, उसके ऋण और धन विधुत के अनन्तगामी ज्योतिर्मय प्रकाश तरंग को तोड़कर अलग-अलग कर, उसकी गति आत्मगति से भी ऊपर, कुण्डलिनी गति में 346000 मील प्रति सेकेण्ड से ऊपर आँका गया है ।

यही कुण्डलिनी गति, जो मूलाधार से लेकर अनाहत तक तीन कुण्डल खुलने की गति में वर्णन किया गया है । जो हमारे ब्यालिस लाख- थलचर, जलचर एवं नभचर की योनियों को भस्म करते हुए !

हमें मनुष्य योनि के केन्द्रक पर स्थितिप्रज्ञ अर्द्धनारिश्वर के रूप में हमें ले आता है । जहाँ हमें सर्प-सर्पनी के सूक्ष्म स्वरूप में कुण्डलिनी गति प्राप्त है ।

इन्हीं कुण्डलिनी को जगाने के स्वरूप में कृष्ण और रूक्मणी के संभोग समाधि के रूप में समागम को दिखलाया गया है । जिसकी उपलब्धि अध्यात्मिक स्वरूप के सूक्ष्म गति में, कुण्डलिनी जागरण तो है ही !

साथ-साथ इस सृष्टि को चलाने हेतु कृष्ण पुत्र, प्रधुम्न जैसे संस्कारी पुत्र की प्राप्ति भी है । जिसने माँतगी योग की साधना से-मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर एवं अनाहत तक की साधना कर-पृथ्वी तत्व, जल तत्व, अग्नि तत्व एवं वायु तत्व पर अधिकार प्राप्त कर, इसका उपयोग युद्ध भूमि में भी करते, दूरदर्शन पर "श्री कृष्ण सिरियल" में दिखलाया गया है ।

कुण्डलिनी साधना के भग समाधि में प्रधुम्न जैसे संस्कारी पुत्र हीं नहीं वरण बरबरीक, घटोत्कक्ष, कर्ण, अर्जूण जैसे महा पराकर्मी आत्माओं को योनिगत आकर्षण में ला आज भारतवर्ष को फिर से आत्मावान नर नारीयों से भरा जा सकता है ।

जितने राजा, महाराजा, या ऋषि सम्मत आत्माऐं नर-नारी के समागम में कोख में आते हैं, सभी चौथे शरीर मनस शरीर के कर्मयोग से आते हैं। उनमें स्वभाविक रूप से कुण्डलिनी गति के आकर्षण के कारण मानवीय उच्चतर गुण होते हैं ।

कुछ आत्माऐं तांत्रिक के तमस् कर्मबंधन गति के कारण आक्रमक स्वभाव एवं नरसंहारक भी आते हैं। वे सभी तीसरे सूक्ष्म शरीर के ऊपर की गति में पहूँचे, उच्च्य आत्माओं का आकर्षण है ।

पुस्तक में वर्णन किया गया है, कि जिस कुण्डलिनी गति को हम उर्ध्वगमन बोलते हैं, उसका रास्ता अधोगमन के मूलाधार केन्द्रक से है एवं नाभिकुण्ड के कामक्षेत्र तक में ही गर्भाशय में शिशु की गर्भस्थ स्थिति है।

चित्र में गर्भ में शिशु कैसे पैर और हाथ की स्थिति एक समग्रता की मुद्रा में रख, गर्भसमाधि की तामसिक स्थिति में रहता है, उसका चित्रण किया गया है ।

इस स्थूल जगत में आने के लिए, इस तासमिक स्थिति की समाधि की अवधि नौ महीना नौ दिन है । लेकिन वापस सूक्ष्म जगत में जाने की अवधि मानव जीवन के कर्मबंधित भोग द्वारा मृत्यु समाधि है । जिस समाधि में जाकर कोई वापस नहीं आता है ।

ध्यान द्वारा प्राप्त समाधि में भी हम स्थूल जगत सें सूक्ष्म जगत में प्रवेश करते हैं । लेकिन वहाँ से पूरे ब्रह्माण्ड की तरंग गति में जाकर, इस स्थूल शरीर के तरंग में भी हम आ सकते हैं एवं कुण्डलिनी तरंग गति में आकर, अपने थलचर, जलचर, नभचर के योनियों के पृथ्वीभार को तोड़ सकते हैं ।

इस गर्भ समाधि की स्थिति में भी हम नमकीन समुद्र जल की तरह गर्भाशय में नमकीन जल में तैरते हुए, विष्णु स्वरूपा होकर, बह्मा की तरह पुरनीपात पर अपना गर्भ समाधि लगाये हुए रहते हैं ।

हम प्राकृतिक रूप से शिव-शक्ति के प्रतीक में ब्रह्मा, विष्णु, महेश की तरह क्रमशः सृष्टिकर्त्ता, पालनकर्त्ता एवं संहारकर्त्ता के रूप में इस स्थूल जगत में प्रवेश कर अपना कर्मबंधित जीवन गति चलाते हैं ।

इसके बाद के चित्रण में गर्भ से निकलने के बाद शिशु अवस्था में आनंद की मुद्रा में ईश्वरीय रूप में, शिशु के दिव्य ओरामंडल में दिखलाया गया है । किसी तरह का भी समाधि, किसी रूप में हमें ईश्वरीय रूप दे देता है ।

इसी के प्रतीक में बच्चा ईश्वर की तरह निर्मल आनन्दातिरेक में दिव्य

आत्मप्रकाश लिए ईश्वरीय तत्व के प्रतीक में दृष्टीगोचर होता है । छः माह से दो साल तक की शिशुवत् स्थिति में बच्चे को पूर्वजन्म की स्मृति एवं कर्मबंधित कर्मफल याद रहता है । जिसकी अनुभूति में बच्चा कभी रोता है, तो कभी हंसता रहता है ।

चित्र के तीसरे स्वरूप में बालक की मुद्रा में चित्रण दिखलाया गया है । यह बच्चे के दो साल तक की स्थिति है एवं बच्चे इस स्थूल जगत के पृथ्वीभार के बहुत तत्वों को ग्रहण कर भौतिक शरीर के पाँचवी स्थिति के चित्रण तक में, जहाँ चित्र में बच्चे को रिंग से खेलता दिखलाया गया है।

यहाँ से हमारे भौतिक शरीर का पूर्ण विकास माना जाता है एवं षटचक्र की सभी कम्पन्न तरंग मजबूत एवं नियंत्रित ढ़ंग से मानसिक विकास भी करने लगता है । (पुस्तक के प्रथम भाग में "मस्तिष्क का विकासक्रम" नामक शिर्षक में चर्चा देखें) जन्म से चार वर्ष के अन्दर डेल्टा आवृत के कम्पन्न तरंग में रहकर, ईश्वरीय तत्व के ज्यादा नजदीक रहता है ।

चूँकि साँस की गति स्वाधिष्ठान के ऊपरी बिन्दु पर ताण्डेन बिन्दु के सम्पर्क में रहकर, नाभिकुण्ड तक अपना-पृथ्वीतत्व, जलतत्व, अग्नितत्व, वायुतत्व का भार ग्रहण कर नाभिकुण्ड के निर्मल सम्पर्क में भावना की स्वच्छता में कर्मबंधित है ।

चार वर्ष से छः वर्ष तक की स्थिति, चित्रण के पाँचवें स्थिति की श्रृंखला में पहुँचा देती है । यहाँ तक के मानसिक विकास क्रम में बच्चा, सूक्ष्मतम् आवृत के चार से सात कम्पन्न तरंग में रहता है ।

इस स्थिति तक बच्चे के ज्यादा नीद्रावस्था में रहने की स्थिति में कम्पन्न तरंग चार से सात प्रति सेकण्ड की कम्पन्न तरंग गति रहती है। हम युवावस्था तक की नीद्रा की स्थिति में थीटा कम्पन्न तरंग की स्थिति में रह सकते हैं ।

सात वर्ष से चौदह वर्ष तक भावशरीर का विकास होने लगता है एवं मस्तिष्क अल्फा स्तर के कम्पन्न तरंग में अद्वितीय रूप से काम करने लगता है । काम वासना का शरीर पूर्णतः भावनात्मक है, जो इन्हीं अल्फा स्तर के मानसिक तरंग में, नैसर्गिक प्रेम के रूप में पूर्ण विकास चौदह वर्ष के उम्र तक कर लेता है।

चित्रण में छटा डण्डा लिए एवं सातवाँ गेंद लिए बालक को चित्रित किया गया है । यहाँ तक भावशरीर के पूर्ण विकास हो जाने से कामवासनात्मक ग्रंथियाँ

अपने श्राव में भाव छोड़ने की स्थिति में आ जाता है । जिसके कारण लड़कियाँ रजस्वला एवं लड़के का वीर्यपतन का समय आ जाता है ।

चौदह वर्ष के उम्र तक शरीर का रकतकण एसप्लीन) से बनता है। जहाँ तक बचपन में फुदक कर चलने का आदत एवं खेलकुद में ज्यादा ध्यान का आकर्षण रहता है । इस चौदह वर्ष के बाद बोनमैरो से रक्त बनने लगता है और सूक्ष्मशरीर की अगले सात साल की गति तैयार होने लगती है ।

चूँकि मानव शरीर हमें कल्पना जगत में ले जाता है और हमारा कामक्षेत्र पूर्ण विकसित हो जाता है । जब हम पूर्ण स्वस्थ होते हैं, तो युवावस्था की स्थिति में हमारा मस्तिष्क चौदह कम्पन्न तरंग से उन्नीस कम्पन्न तरंग प्रति सेकेण्ड तक अपना कम्पन्न तरंग उत्सर्गित करता है ।

लेकिन क्रोध ईश्या परेशानी में यह कम्पन्न तरंग इक्कीस (21) से बाईस (22) तक का हो जाता है । चालीस तक पहूँचते-पहुँचते हमारी सारी एकाग्रता खो जाती है और हम पागलपन की स्थिति तक पहूँच जाते हैं ।

इन्हीं कम्पन्न तरंग के नियंत्रण हेतु श्वसन क्रिया को नमनियता बिन्दु के ताण्डेन बिन्दु तक लाने के लिए ध्यान, समाधि में जाने हेतु, अनु-लोम विलोम एवं प्राणायाम की प्रायोगिक चर्चा पुस्तक में विधिवत की गयी है ।

चित्रण में आठवाँ चित्र, हमारे सूक्ष्म शरीर को पूर्णतः निर्माण गति में पहुँच जाने का है । यह अवधि चौदह वर्ष से इक्कीस वर्ष की होती है । इस सूक्ष्म शरीर के विकासक्रम में हम ज्ञान-विज्ञान के सूक्ष्म तरंग से जुड़ जाते हैं ।

हमारी मनोआकांक्षाऐं हमारी कल्पनाऐं हमारे तार्किक शब्दावली, सभी अपना उच्चतम् शिखर पाने लगता है । नैसर्गिक प्रेम की सरसता, भक्ति की भावदशा कर्त्तव्यनिष्ठ होने की सामाजिक एवं पारिवारिक परिवेश ज्ञान-विज्ञान की तार्किक एवं व्यवहारिक अनुभूति सभी का कम्पन्न तरंग, अपना पंख फैलाकर आजाद पंक्षी की तरह उड़ान भरना चाहता है ।

इन्हीं तार्किक और ज्ञान-विज्ञान के श्रेणी में बड़े-बड़े वैज्ञानिक, संत, महात्माओं ने इस पृथ्वी पर जन्म लेकर, समाज एवं संसार को बहुत कुछ दिया । यहाँ तक की चक्रो की स्थिति माने! तो कामक्षेत्र के सारे चक्रो की प्रतिछाया हम पर

पड़ने लगती है ।

चूँकि सभी षटचक्र का मूलबिन्दु तो सूक्ष्म शरीर में रहता है । लेकिन उनकी प्रतिछाया के फलस्वरूप हमारा दैनिक जीवनगति भी चलता रहता है । क्योंकि षट्चक्र दल तो मूलाधार से ब्रह्मरंध्र तक सूक्ष्म शरीर में मेरूदण्ड द्वारा सुषुन्ना नाड़ी प्रवाह पर है एवं पृष्टभाग पर है ।

लेकिन अलग से छः चक्रो का वर्णन हमारे सन्मुख भाग में भी किया गया है । जो पृष्ट भाग एवं सन्मुख भाग के ऋण विद्युत एवं धन विद्युत क्रम में हमारे कर्मबंधित जीवनगति को भी चला रहे हैं ।

हम चित्रों में देख रहे हैं, कि जो ओरामंडल का आभा वलय बच्चे में है। वह हमारे युवावस्था के सूक्ष्म शरीर के इक्कीसवें साल तक, श्रृखलावत ज्योति का ओरामंडल मंद पड़ता चला आया है ।

चूँकि इस सांसारिक जीवन में अपने प्राणवायु पर पृथ्वी तत्व, जल तत्व, अग्नि तत्व, वायु तत्व का भार बढ़ाते चले जाते हैं । शिशुवत रहने पर जो श्वॉस की गति ताण्डेन के नमनियता बिन्दु से चल रही होती है। वह युवावस्था होते-होते इन भारीय तत्वो के कारण वक्षस्थल से चलने लगती है ।

हमारा सम्पर्क सैने-सैने अपने अन्दर स्थिति ईश्वरीय स्वरूप आत्म प्रकाश से टूटने लगता है ।

हमारे लंग्स (फेफड़ा) जो छः हजार स्पंजी सेल (छिद्र कोषा) से बने हैं । यहाँ पृथ्वी तत्व के दूषित वातावरण में, एक तीहाई में दो हिस्सा यानि चार हजार स्पंजी सेल (छिद्र कोषा) तक कार्बनडायऑक्साइड पी कर निष्क्रिय पड़े रहते हैं । हम केवल दो हजार स्पंजी सेल के द्वारा ऑक्सीजन ग्रहण कर अपने शरीर के कोषाओं को प्राणवायु पहूँचा पाते है ।

हमारे प्राण ऊर्जा का शक्ति तरंग इन भारीय तत्व के कारण अपना सूक्ष्मतम कम्पन्न गति खोने लगता है । हमारी आत्मा काम, क्रोध, लोभ, मोह के घेरे में कैद होकर, अपना आत्मप्रकाश घुमिल कर लेती है । (चित्र संख्या 46 व 47 में देखें ।) यह समय जवानी के मदहोशी का होता है ।

नौवे चित्र का चित्रण, जब हम मनोमय शरीर के विकास क्रम में पहुँचते हैं, तो वह समय 22 से लेकर 28 वर्ष तक के उम्र का होता है । यह समय पूर्णरूपेन

होश सम्हालने का समय होता है ।

जो दिव्यता हमने इन तीन शरीर भौतिक शरीर, भाव शरीर, सूक्ष्म शरीर के घुमिल विकास क्रम में खोया है, वह "ऊँ" का ध्यान, प्राणायाम, वासना का बदलता स्वरूप, प्रेमभाव जीवन जीने से हम अलौकिक चमत्कार एवं पूर्ण शक्ति सम्पन्न जीवन शैली से भरने लगता है। यह समय चौथे शरीर की उपलब्धि में चौथे चक्र के प्रतिछाया में भी काफी महत्वपूर्ण है ।

चूँकि हमारी सारी भावनाओं, कल्पनाओं, प्रेम के निर्मल स्वरूप को नैसर्गिक स्वरूप देने का समय होता है। इन्हीं चौथे शरीर की उपलब्धि में-जिसेस, मोहम्मद, महावीर, गौतम, रजनीश वगैरह को रखा जा सकता है।

महाभारत काल के भट्ट योद्धाओं का विवेकपूर्ण युद्ध कौशल एवं अध्यात्मिक ऊँचाई के संकल्पित कार्यशैली, सब इन्हीं मनोमय शरीर की गतियों में जानी जा सकती है।

इस समय अगर हम ध्यान समाधि प्राणायाम की जीवन शैली में जीते हैं, तो हमारा आत्म प्रकाश बच्चे की तरह निर्मल होकर, हमें-काम, क्रोध, द्वेष, हिंसा, अत्याचार के तमस् भाव से निकाल, उसका रूपान्तरण शान्ति, अहिंसा, प्रेम, मैत्री, मुदिता वगैरह में कर, हमें-संत, महर्षि, ऋषि के श्रेणी में ले जा सकता है ।

अगर हमारी जीवन शैली का विकासक्रम सही मार्ग पर चले, तो हमारा आत्म प्रकाश विश्व का आत्मप्रकाश हो सकता है।

लेकिन अगर हमारा जीवन शैली भारीय तत्वों का भार लेकर ही गुजरता है, तो हमारा ओरामंडल घुमिल ही होता चला जाता है एवं हम कर्मबंधित योनि के चक्रवात को मजबूत करते हुए, अपने जीवन गति को आगे बढ़ाते चलते हैं ।

चित्रण में दसवाँ एवं ग्यारहवाँ स्वरूप के चित्रण के जीवन शैली में, हम आत्म शरीर के विकास क्रम में पहुँच जाते हैं । जहाँ संसार के कर्तव्यों का पालन हमें- ब्रह्मा, विष्णु, महेश की तरह करते हुए, अपने परिवार, समाज, राष्ट्र के साथ समर्पित भाव से जीने की कला, हमें एक व्यवहारिक प्रेमपूर्ण जीवन प्रदान करती है ।

दसवें श्रृंखला के चित्रण में हाथ की अंगुली को ज्ञान मुद्रा में दिखलाया जा रहा है । यह उम्र व्यवहारिक हो या अध्यात्मिक, उपलब्धियों का उम्र होता है ।

वैज्ञानिकों में, विज्ञान की उपलब्धि, व्यापारी में घन वैभव की प्राप्ति में अर्थ

की उपलब्धि एवं अध्यात्मवेत्ता की अध्यात्म की ऊँचाई इन्हीं आत्म शरीर की गति में प्राप्त होती है। आत्म शरीर से नीचे षट्चक्र पर कुण्डलिनी कम्पन्न तरंग का 346000 मील प्रति सेकेण्ड का कम्पन्न तरंग का परा गति होता है ।

लेकिन यहाँ आकर, सर्पनी रूपी कुण्डलिनी का तीन कुण्डल खुलकर चौथा आधा कुण्डल, आत्मगति में 186000 मील प्रति सेकेण्ड का प्रकाश तरंग गति हो जाता है ।

हमने पुस्तक में बर्णन किया है, कि मनुष्य का जीवन गति उल्टे वृक्ष की तरह है। जिसके सापेक्ष में आत्मगति कर्मबंधन रहित होता है । लेकिन कुण्डलिनी गति कर्मबंधित है एवं कुण्डलिनी शक्ति का प्राण शक्ति में प्रवेश ही हमें थलचर, नभचर, जलचर एवं मनुष्य योनि से मुक्ति दिला सकता है ।

यहाँ आत्म शरीर पर हम स्थितिप्रज्ञ तो होते हैं, लेकिन "मैं" होने का अंहकार बचा रहता है । आनंन्दातिरेक की भावदशा तो रहती है, लेकिन अगर "मैं" होने का बोध रहेगा, तो "तू" होने का द्वन्द्वात्मक बोध तो रहेगा ही! मेरा आत्मस्वरूप होना प्रेम के आनन्दायक परिकोटा में ही संभव हो पायेगा !

इसलिए नारियाँ जब प्रेम के ज्योर्तिमय प्रकाश तरंग में आ जाती है तो उनका अपना "मैं" का अंहकार "तू" में समाने लगती है एवं पति ही परमेश्वर दिखने लगता है ।

चूँकि हिन्दू संस्कृति में प्रेमबंधन का द्वार पति के द्वारा हीं संभव माना गया है एवं हम अपने भग समाधि एवं स्पर्श समाधि में भी अनुभव एवं शास्त्रोक्ति वर्णन में देखते हैं, कि आत्मपवित्रता स्त्रियों का आभूषण है ।

यह नैसर्गिक प्रेम का आभूषण ही हमें आत्मा से आत्मा का मिलन कर विरल भावदशा में ले जा सकता है । प्रेम प्रदर्शन तो सभी विवाहिता नारियों में महसूस होती है। लेकिन यह प्रदर्शन जब तक आत्मियता की भावदशा नहीं पकड़े, तबतक ईश्वरतत्व के मिलन का बोध कैसे संभव है ?

इसी आत्म शरीर के विकास क्रम में में हम विशुद्धाय चक्र के प्रतिछाया में पहुँच जाते हैं । हमारी जीवन गति कुछ अध्यात्म की ओर मुड़कर, कुछ नयी चेतना में जीवन शुरू करना चाहती है।

लेकिन कुण्डलिनी जागृत अवस्था में यह पूर्ण आत्म चेतना का पाँचवा केन्द्र

होता है। जहाँ हमारी आत्मा काम, क्रोध लोभ मोह के घेरे से घिरी थी, वह अपना सारा घृणात्मक परिधि तोड़कर आत्मप्रकाश की ज्योति तरंग पकड़ लेती है ।

जागृत पुरूषों द्वारा इसी आत्म शरीर के विकास क्रम में वेद उद्भाषित हुआ एवं अमृत की खोज की कल्पना साकार हुई ।

कुण्डलिनी गति में इन्हीं कण्ठ चक्र के विकास से बाल्मिकी और तुलसी दास, रामायण लिख पाये । कबीर और मीरा प्रभूपाद में लीन होकर, इस दुनिया को प्रेम आस्था का कवित्वमय लयवद्धता में ज्ञानगंगा की रश्मियाँ बिखेर दी ।

चरक महराज एवं लूकमान वैद्य ने, हजारो पौधो के गुण अवगुण की संवेदनशील अभिव्यक्ति को जनकल्याण हेतु, इसे पृथ्वीवासी प्राणी को दे, आयूर्वेद की नींव डाली ।

ज्ञान-विज्ञान की जितनी श्रृंखला ऋषियों ने दी, सब इन्हीं आत्म शरीर के विकास एवं कुण्डलिनी के विशुद्धाय चक्र के आत्म गति में दी ।

क्योंकि आत्म शरीर और मनोमय शरीर का संधि स्थल हृदय है एवं ऊपर के अद्वैत से लौटकर ही कोई आत्म शरीर प्राप्त आत्मा इस संधि स्थल पर प्रेम संवाद में अपने कर्मबंधित संस्कार योनि को छू सकता है ।

चित्र के बारवें चित्रण में हाथ को कण्ठ के ऊपर दिखलाया जा रहा है । यह आत्मशरीर के आत्मबोध को दर्शाने हेतु का दशर्न है । जहाँ उम्र की ढ़लान मध्य बिन्दु पर आ जाती है ।

हम देख रहे हैं, कि जो आत्म प्रकाश गर्भावस्था में प्रवेश कर रही है, वही आत्म प्रकाश इस उम्र के ढलान पर अगर हमारा जीवन साधनामय है, तो काफी प्रकाशित रहती है।

लेकिन आत्म प्रकाश की गति तो इस स्थूल शरीर के उम्रगत परिधि में ही चलती है । अगर हम पृथ्वी के भारीय तत्वों के घेरे में रहते हैं, तो हमारा आत्म प्रकाश ही घुमिल नहीं रहता, वरण ओरामंडल भी घुमिल होता चला जाता है ।

आत्मा तो मरती नहीं ! इसलिए इस आत्म प्रकाश को, इस जर और जरा की स्थिति में होते हुए, मृत्यु की अग्नि में यह स्थूल शरीर भष्म होकर भी, हमारे कर्मबंधन का कर्मबंधित भोग सूक्ष्म शरीर के सात शरीर में भी हमें भोगना

पड़ता है ।

हम छठे शरीर ब्रह्म शरीर की स्थिति पा लेते हैं । यहाँ शिवलोक की व्याख्या की गयी है । जहाँ हम अपने पारिवारिक परिवेश की तुलना, शिव परिवार से कर सकते हैं ।

जहाँ हम संस्कारवान पुत्र-पुत्री, पत्नी, धन, वैभव प्राप्त कर भी "भग समाधि" एवं "स्पर्श समाधि" की गरिमा कायम कर ब्रह्मशरीर की स्थिति प्राप्त कर सकते हैं । हमारी आत्मा तो वही है, जो शिशुवत अवस्था में हमने पायी है ।

लेकिन उम्रगत एवं ज्ञानगत परिधियाँ बदलती चली गयी। और अपनी साधना स्थल हृदयगत प्रेम के हिडोले पर, अपनी पार्वती स्वरूपा पत्नी के आत्मगत प्रेम हिडोले पर, हम आत्मावान नर-नारी भी ब्रह्म शरीर पाने के अधिकारी हो सकते हैं ।

जहाँ हिमालय जैसी शान्ति है एवं जहाँ कुण्डलिनी जैसी निर्मल गंगा प्रवाह, प्रत्येक नर-नारी के दुखरूपी शंकर के जटा जैसे फैलाव से भी प्रेमरूपी गंगा प्रवाह में अविरल बह रही है । इस स्थूल शरीर का मृत्यु तो शाश्वत सत्य दिखता है ।

लेकिन हम चित्रण में देख रहे हैं कि आत्मा, गंगा के अविरल प्रवाह की तरह शिशु जन्म से मृत्यु संस्कार एवं सूक्ष्म जगत तक अपना एक अविरल प्रवाह बनाए हुए है ।

हमारी मृत्यु तो इस स्थूल जगत से निर्वाण की स्थिति में है और मेरा व्यालिसवाँ (42) वर्ष से उन्चास (49) वर्ष तक का जीवन बिलकूल निर्वाण की प्रतिछाया है ।

इस उम्र में प्रायः रजश्वला धर्म से निवृत होने में स्त्रियाँ एवं वृद्धावस्था की ओर बढ़ते पुरूष में, एकाएक छः महीना सालभर के लिए विरक्ती की भावदशा बनने लगती है ।

अगर इन निश्चित समय में परिवार के लोग उनकी भावना को नहीं समझें, तो वृद्धावस्था झल्लाहट एवं विकृति भावदशा की श्रेणी पकड़ लेती है ।

चूँकि निर्वाण शरीर की प्रतिछाया का संदेवनशील भावदशा अपना प्रभाव

बनाने लगता है, लेकिन हमारा जीवन अगर भारीय तत्वो के विकृत भावदशा में गुजरा है, तो हम सम्हल नहीं पाते।

यहाँ तक तो सारे ग्लैण्डस (ग्रंथियाँ) के श्राव स्थिर अवस्था में रहते हैं। लेकिन निर्वाण शरीर के गति के बाद ग्लैण्डस का रसश्राव कमने लगता है एवं वृद्धावस्था की ओर मानसिक एवं शारीरिक स्थिति में नहीं जीया है, तो हमारा आत्म प्रकाश एवं ओरामंडल धुमिल होने लगता है।

चूँकि काम, क्रोध, लोभ, मोह का परिधीमय परकोटा, आत्म प्रकाश के शरीर में स्थित सभी कोषाओं के आत्माओं को नहीं मिल पाता है। सैने-सैने हम मृत्यु की ओर बढ़ने लगते हैं।

लेकिन जिस मृत्यु को हम शाश्वत सत्य मानते हैं, वह वास्तविक में असत्य जीवन का भार, पंचतत्व में विलीन होना है।

चूँकि मृत्यु में जब हमारे शव को जलाया जाता है तो इस पंचतत्व से निर्मित शरीर का पंचतत्व आकाश, जल, अग्नी, वायु, अंतरिक्ष के पंचतत्व में मिलकर सृष्टि के रचना में घूमने लगती है।

यहाँ आत्मधारी स्थूल शरीर जो चौबीस तत्वों से बना है, केवल बारह तत्व अपने साथ लेकर, इस नाशवान शरीर को छोड़ देती है। आत्मा स्थित इस स्थूल शरीर की साधना से मनिषि भी "ऊँ" के चौबिस कम्पन्न तरंग से बाहर नहीं जा पाये हैं।

जबकि मृत्यु के बाद बारह तत्व ही आत्मा के साथ जाती है, तो बिना स्थूल शरीर के हम "ऊँ" के छत्तीस लोको में कम्पन्न तरंग को कैसे पकड़ सकते हैं!

इसलिए चौरासी लाख योनि में इस पृथ्वी पर केवल मनुष्य योनि को केन्द्रक माना गया है। जहाँ से उर्ध्वगति की यात्रा तो हम कुण्डलिनी शक्ति प्राप्त करके, कर सकते हैं! लेकिन अधोगति की यात्रा तो हमारा भारीय कर्मबंधन ही है।

जब हम इस स्थूल शरीर के प्राण रहित शव को अग्नि में स्वाहा करते हैं, तो कर्मबंधित सात शरीर की अभिव्यक्ति बनी रहती है एवं आत्मा अपना कर्मबंधित श्रृंखला लिए जन्म-मरण के प्राकृतिक गति से गुजरती रहती है।

हमारी मृत्यु पर भी गुरूत्वाकर्षण का प्रभाव है। पृथ्वी के

चुम्बकीय क्षेत्र की गति में हमारा मूलाधार से उठने वाला कुण्डलिनी शरीर भी धन विधुत राहू के स्वरूप में उर्ध्वगामी रहता है। लेकिन हमारी मृत्यु ब्रह्मरंध के केतु रूपी ऋण विधुत से आती है । चूँकि आवागमण का रास्ता ऋण विधुत से है, जो शक्तिरूपा शिव-शक्ति के प्रतीक में है ।

कर्मबंधित मनुष्य जीवन केवल सातबार मिलता है। जो लाखो वर्ष में भी हमारे कर्मसंस्कार के अनुसार ही पूरा होता है । इसके बाद अपने कर्मगति में, हमें ऊपर की योनि में जाना है या नीचे की योनि में जाना है, इसकी व्याख्या (चित्र संख्या 27 में) की जा रही है ।

हम चित्र में देख रहे हैं कि जो आत्मा बच्चे में आत्म प्रकाश लिए है, वहीं आत्मा बढ़ती उम्र की योनियों में परिधिय सर्किल (वृत) बना कर बच्चे के नीचे नरकंकाल से भी आत्म प्रकाश की लकीर में परिलक्षित हो रही है ।

ऊपर के चित्रों में दिखलाया गया है कि सात शरीर की आत्मगत एवं योनिगत श्रृंखला में अगर हम ध्यान साधना, समाधि, प्राणायाम एवं सहजता में जीते हैं, तो शिव-शक्ति के रूप में स्थितिप्रज्ञ हो सकते हैं।

कुण्डलिनी गति के तीन कुण्डल के योनिगत चक्रवात थलचर, जलचर एवं नभचर के योनियों के कुण्डलिनी अग्नि में स्वाहा हो जाने के बाद भी, हमारा आत्म शरीर, ब्रह्म शरीर एवं निर्वाण शरीर को नष्ट नहीं किया जा सकता है !

चूँकि आत्मा तो अमर है एवं अपने कर्मबंधन रहित योनिगत चक्रवात को तोड़ते हुए स्थितिप्रज्ञ के ब्रह्मबिन्दु पर आ चुकी है । इसलिए इन तीन शरीर का विनाश नहीं है ।

निर्वाण शरीर में आकर, अगर आत्मा का रूपान्तरण दिव्यराज्य के ज्योतिर्मय प्रकाश के उद्गित उद्भव में हमारी आत्मा प्रवेश कर जाती है, तो यहाँ अमरत्व प्राप्त आत्मा का राज्य है, जहाँ अंधकार नहीं है, पूर्ण शक्ति, ज्योतिर्मय प्रकाश के केन्द्रक में समाया हुआ है। चित्रण में इसकी व्याख्या को अर्द्धनारीश्वर के नीचे दूसरे श्रृंखला में दिखलाया गया है ।

कर्मबंधन-अधोगति एवं उर्ध्वगति में

चित्र संख्या-28

चित्रित चित्र का वर्णन चित्र संख्या 27 एवं विषय "सूक्ष्मलोक" में बृहत रूप से की गयी है । अब कुछ संक्षिप्त बिवरण दिये जा रहे हैं ।

मानव जीवन कर्मबंधित एवं योनिगत श्रृंखला में है । मैं समझता हूँ कि अपना जीवन अपने अहंकार में चला रहा हूँ ! लेकिन जीवनगति ग्रह नक्षत्रो के डिग्री-कोण के अनुपात में, दुख-सुख का कारण है । हमारा सौरमंडल जिसमें लाखो-करोड़ों ग्रह, उपग्रह, उल्का पिण्ड, नक्षत्र, तारे अपनी गुरूत्वाकर्षण परिधि में धूम रहे हैं । सभी योनिगत श्रृंखला के कर्मबंधित योनिगत परिवार हैं !

अभी-अभी हिन्दुस्तान समाचार के माह जनवरी 2012 में निकला है कि **"ग्यारह" सौरमंडल में मिले 26 नये ग्रह"!**

नासा के खगोलविदों का दावा है कि "केपलर टेलिस्कोन" द्वारा ग्यारह सौर मंडल में 26 नये ग्रहों का पता लगा लिया गया है। केपलर अभियान से पहले पता था कि पूरे आकाश में शायद पाँच सौ ग्रह हैं ।

"दो साल के अभियान में मुट्ठी से भी छोटे अनुपात में ब्रह्माण्ड में झाँका गया है । तो केपलर ने फिर (60) साठ से अधिक ग्रहों का पता लगा लिया है एवं तेइस सौ ऐसे पिण्ड हैं, जो ग्रह का रूप ले सकते हैं । हमारी आकाशगंगा सभी आकार एवं कक्षाओं वाले ग्रहों से पटा है ।

वैज्ञानिकों की खोज है, कि कुछ का आकार पृथ्वी से डेढ़ गुणा अधिक, तो कुछ का बृहस्पति से भी बड़ा आकार है । साथ ही पन्द्रह ग्रह ऐसे हैं, जिनका आकार पृथ्वी और नेपचुन के बीच है ।

हांलाकि यह तय नहीं किया जा पाया है, कि इनमें कितने ग्रह धरती, मंगल, शुक्र और बुद्ध जैसे हैं । जहाँ चट्टाने पायी जाती है । अथवा वे बृहस्पति, शनि, युरेनस और नेपच्यून जैसे हैं, जो गैस से बने हैं !"

ऊपर का उदाहरण देने का तात्पर्य यह है कि हम जो योनिगत जीवन जी रहे हैं यह केवल हमारी पृथ्वी पर का ही योनिगत परिधि नहीं है । इन नक्षत्रों को

भी योनिगत संस्कार में माना जा सकता है। इनकी भी मृत्यु एवं जन्म की परिधि खरबों वर्ष में टूटने-बनने से, प्राकृतिक ईश्वरीय गति में जाना जा सकता है।

लेकिन चित्रित चित्रण में हम केवल पृथ्वी की श्रृंखला के व्यालिस लाख योनिगत क्रम को दर्शाने का प्रयास कर रहे हैं । हो सकता है, सौरमंडल के अन्तरिक्ष में लाखों और योनियाँ हों ! जो उर्ध्वगति के योनिगत चक्रवात को पूरा करता हो !

चित्रण अधोगति के प्रेत के स्त्रीत्व और पुरूषत्व के चित्रण से शुरू किया गया है । प्रेत योनि तो अधोगति में जाय या उर्ध्वगति में हमारा सूक्ष्म शरीर तो जरूर इस योनि को भोगेगा।

क्योंकि यह योनि हमारे जन्मों के आवागमन का मुख्य भोग योनि है । यानि अन्ध बिन्दु कहा जा सकता है । जब हमारी मृत्यु हमारे ब्रह्मरंध्र से, हमारी आत्मा का भार कम करने हेतु हमारी ओर बढ़ती है, तो हमारे दस प्राण मुख्यप्राण में केन्द्रीत होने लगते हैं । (प्राण विज्ञान के विषयों में बृहत चर्चा की गयी है)

इस स्थूल शरीर तक, आत्मा हृदय के अन्तिम दशा तक, घड़कने तक सभी प्राणों को संबल दे, अपने आत्म प्रकाश में केन्द्रीत करती रहती है ।

लेकिन हमारा आत्म प्रकाश हमारे कर्मबंधित जीवन शैली के जीने के ढ़ंग के अनुसार होता है ।

आत्मा तो सर्वव्यापी है, लेकिन योनिगत श्रृंखला में अपना स्वरूप बदलती रहती है । उसे न दुख होता है और न सुख होता है । न उसे अग्नि में जलाया जा सकता है और न शस्त्र उसे काट सकती है !

तो यह भोग कौन भोगता है ? भोग हमारा कर्मगत, योनिगत, श्रृंखला है! जो हमारे भावदशा से पैदा लेती है । हम व्यवहारिक जीवन में धन, वैभव, स्त्री, पुत्र, बन्धु, बाँधव का महत्व देते हैं ।

लेकिन हमारी भावना ही हमें अधोगति एवं उर्ध्वगति की योनिगत श्रृंखला में ढ़केलती है । शरीर तो यंत्र है । इसमें धड़कते हृदय केन्द्र पर ही भावना का मुख्य केन्द्र है एवं योनिगत चक्रवात का कारण है ।

जब हम मूलाधार पर कुण्डलिनी जागरण द्वारा सुषुम्ना नाड़ी के ब्रह्माण्डीय विद्युत तरंग पर ब्रह्म में प्रवेश करने की सूक्ष्मगति पाते हैं; तो हमारा हृदय का नियंत्रित धड़कन ही केन्द्रीत होने पर हमारे ब्रह्मयात्रा में

सहयोगी होता है ।

सूक्ष्म शरीर की गति में किसी भी यांत्रिक विधि से प्रवेश नहीं किया जा सकता है । यहाँ तो भावलोक ही उसका मुख्य दरवाजा है । अतः हम उर्ध्वगति पायें या अधोगति, वह हमारे भावनामय मनोवृति से तय होता है ।

चूँकि मृत्यु भी एक समाधि है! जहाँ से हमारी आत्मा पुनः इस यांत्रिक शरीर में प्रवेश नहीं कर पाती है । लेकिन समाधिस्थ का गुण तो कुछ क्षणों के लिए आता ही है ।

हम मृत्यु के कुछ क्षणों में ही अपने कर्मो का लेखा-जोखा को देख लेते हैं एवं हमारे कर्मफल के अनुरूप हीं हमारी भावदशा बनती है और अगले जन्म की योनिगत श्रृंखला तैयार होती है ।

प्राकृतिक नियमावली में अपने अधोगति एवं उर्ध्वगति के हम स्वयं जिम्मेवार हैं । कोई भगवान हमारे गतियों को तय नहीं करने आता है । हमारी भावदशा ही तो, अपने- पृथ्वी तत्व, जल तत्व, अग्नि तत्व, वायु तत्व, आकश तत्व के भारीय कम्पन्न पर ही, अपना योनिगत श्रृंखला तैयार करती है ।

हम भक्तिभाव में, मंत्रभाव में, या साधना के किसी भी भावदशा में अपना केन्द्रक किसी ईश्वरीय रूप में मान लेते हैं ।

लेकिन भला जो महारेणु के केन्द्रक में समाया हुआ है एवं केवल महारेणु में समाकर पूरे सृष्टि को सम्हाले हुए है! वह प्राकृतिक नियम तोड़कर, कैसे एक व्यक्ति विशेष के लिए बाहर आ सकती है !

वह तो हमारी आत्मा में समायी हमारा ही स्वरूप है, जो हमारे भावना, हमारे प्रार्थना, हमारे भक्तिभाव में बाहर निकल कर आ जाती है एवं हम अपने हीं आर्शिवाद से अनुगृहीत होते रहते हैं ।

यह तो महारेणु में समाये ईश्वर की तृप्ति की भावदशा की व्याख्या है। लेकिन हम मानव अपने-क्रोध हिंसा, काम वासना, द्वेश, घृणा की अपनी हड्डी एवं माँस चबाकर, अपने अधोगति की भावना के अहंकार में, अपने जीवन का उद्देश्य-प्रेम, करूणा, मैत्री, मुदिता- जो इन्हीं भारीय तत्व का दूसरा छोड़ है; उससे दूर भागकर प्रेत योनि की कष्टमय प्रताड़ित जीवन गति को स्वीकार कर लेते हैं ।

जो हमारे भावदशा के विकृति स्वरूप में प्रेत योनि की हजारो साल की प्रतारणा में अपने ही भारीय कम्पन्न में जलता हुआ, हमें दुख के बोझिल योनिगत चक्रवात में रखे रहता है ।

हम उर्ध्वगति के कम्पन्न तरंग में आयें, तो समाधिस्थ मृत्यु समाधि के बाद भी हमें प्रेत योनि में तो जाना ही पड़ेगा ! लेकिन उसका स्वरूप शान्तिदायक एवं तृप्तिदायक होगा ।

यह हमारे यांत्रिक शरीर में स्थित मनोभाव की भावनात्मक भावदशा पर निर्भर करता है । हम जैसे वातावरण में रहते हैं, उस वातावरण का कम्पन्न तरंग हमारे कर्मफल की दिशा को बदलता रहता है । अगर हम साधु संत के वातावरण में उनकी कुटिया में, उनके सतसंग एवं आर्शिवाद के तरंगक्षेत्र में होते हैं, तो हमारी भावदशा शान्ति, आशिर्वाद का कम्पन्न तरंग पकड़-आस्था, विश्वास, प्रेम का स्वरूप पकड़ लेता है।

वही अगर हम कामुकता के वातावरण एवं वासनात्मक खेल खेले गये, महल या राजप्रसाद में रहते हैं, तो उनका सतसंग या उनका आगोश हमें वासना, घृणा, द्वेश के कम्पन्न गति में, अधोगति की मनोवृति पैदा करती है। हमारे विचार तरंग को, हमारे जर्रो दिवाल भी कैसेट (रिकार्डर) की तरह अपने ग्रुभ (दरार) में संगहित (रेकार्ड) करते रहते हैं ।

इसलिए जिस वातावरण में हम रहते हैं, वहाँ कोई रहे या नहीं रहे, उन दूष्ट एवं सत्कर्मी आत्माओं का कम्पन्न तरंग हमपर अपना प्रभाव डाल, हमारे भावदशा पर अपना ग्रुभ (दरार) तो पैदा करता ही है । उदाहरण के स्वरूप एक छोटी कथानक प्रस्तुत की जा रही है ।

श्रवण कुमार जिनकी मातृ-पितृ भक्ति इतिहास के सुनहरे पन्ने में लिखी गई है। माता-पिता को अपने ''कामर'' स्वरूप भार पर ले जाते हुए एक जंगल से गुजर रहे थे। जंगल में प्रवेश करते ही, एकाएक उनके भावदशा में आया कि ''मैं क्यों इन बूढ़े-बुढ़िया का भार ढ़ो रहा हूँ! मुझे भी अपने परिवार के सुख-सुविधा का ध्यान रखते हुए आनन्दमय जीवन यापन करना चाहिए! और उन्होंने अंधे माता-पिता का कामर जमीन पर रख दिया ।

लेकिन विवेक में भावना आयी की इनको जंगल में छोड़ने से जंगली जानवर

खा जायेगा। इसलिए जंगल से बाहर छोरू ! श्रवण कुमार ने अंधे माँ-बाप का कामर उठाया और जंगल से बाहर की ओर प्रस्थान कर दिया।

लेकिन जंगल से बाहर आते हीं उनकी मनोदशा में भावनात्मक उभाड़ आने लगी। भावना में आँखें अश्रुपुरित होने लगी, की अंधे माता-पिता के प्रति ऐसे कुविचार मेरे मन में क्यों आया ? जंगल से बाहर एक ऋषि की कुटिया थी । जहाँ जाकर उन्होंने श्रद्धापूर्वक ऋषि से निवेदन किया कि ऐसे अधम एवं कुविचार उनके मन में क्यों आयें ?

ऋषि ने बताया कि "इस जंगल में अधोगति प्राप्त राक्षस की दूष्ट आत्मा अपना कम्पन्न तरंग छोड़ती रहती है । जिसके कारण जंगल की परिधि में ऐसे कुविचार किसी भी तपस्वी एवं आप जैसे मातृ-पितृ भक्त की मनोदशा पर अपना प्रभाव छोड़ती है । इसलिए यह जंगल तपस्वी एवं साधक के लिए वर्जित है ।"

तात्पर्य यह है, कि हम अपने सामाजिक एवं पारिवारिक परिवेश में भी, अपने दैनिक जीवन शैली को उच्च मनोवृति के संस्कार में पलने दें !

जैसी हमारी भावना बनेगी, हमारा योनिगत कर्मफल भी वैसे ही तैयार होगा एवं हमें अधोगति और उर्ध्वगति की वैसी ही भावदशा बनेगी। जबकि हमारा शुद्धतम भावदशा ही, हमें शान्तिदायक, प्रेरणादायक ज्ञान-विज्ञान के प्रेतत्व योनि में हमें ले जायेगी ।

चित्रित चित्रण में अधोगति की योनिगत भोगदशा में थलचर, जलचर एंव नभचर के योनियों के कर्मयोग में दिखलाया गया है ।

नारी तत्व जो सृष्टि के मूल में अर्द्धनारीश्वर की तरह है। उसके हाथ में डाल और फुल सहित वृक्ष की टहनी के रूप में दिखलाया जा रहा है । इसके संदर्भ में पुस्तक में चर्चा की गयी है, कि मनुष्य का विकास उल्टे वृक्ष की तरह है । उसी के प्रतीक में नारी तत्व, जो सृष्टि के मूल में अर्द्धनारीश्वर का रूप लिए डाल सहित फुलों के गुच्छक के रूप में है, उसी का चित्रण दिखलाया जा रहा है ।

उज्जवल प्रकाश के अण्डाकार घेरे में, गर्मस्थ शिशु से लेकर युवावस्था तक में, कली से खिले गुलाब के रूप में, युवावस्था को ईश्वर में अर्पण के रूप में दिखलाया जा रहा है । यह समय होता भी है, भौतिक शरीर, भाव शरीर एवं सूक्ष्म शरीर के विकास क्रम का ।

इन्हीं शरीरों के विकास क्रम में हमारी मनोदशा के मनोभाव की नींव पड़ती है ।

इस युवावस्था का खिलखिलाता लावण्य एवं आत्मिक सौन्दर्य से भरा जीवन ही ईश्वर तत्व के मूल दरवाजे पर दस्तक देने का होता है! हम अपने करूणा, प्रेम, आस्था, विश्वास, मैत्री की प्रगाढ़ता या अपने मानसिकता के विकास क्रम में ही सुविचार पैदा कर अपने पुष्प स्वरूपा सुगंधित जीवन का भावनात्मक अर्पण कर सकते हैं ।

चित्र का दूसरा भाग-मनोमय शरीर, आत्म शरीर और ब्रह्म शरीर के स्वरूप को, अधोगति की मानसिक दशा में भोगने से प्रेतत्व की दूष्टता पूर्ण योनि गति भोगने के रूप में है । हमारा जीवन शैली अगर शिशुवत जीवन से ही निर्मल एवं शान्तिदायक नही होता है, तो सभी भारीय तत्वों का भार (लग्स) फेफड़ा एवं हमारे श्वाँसो की गति पर सवार होकर, हमें अधोगति के रास्ते पर डाल देता है ।

इसी के निवारण में श्वॉस गति से भारीय तत्व हटाने हेतु श्वॉस पर नियंत्रण प्राणायाम एवं कुण्डलिनी जागरण की विधियों का बर्णन पुस्तक में किया गया है ।

मनिषियों द्वारा दिव्य दृष्टि से देखी गयी शास्त्रों की योनिगत चक्रवात को हम इस तरह वर्णन कर सकते हैं ! ''योनिक्रम मे (9) नौ लाख वार जलचर, बीस (20) लाख वार पेड़, पत्थर इत्यादि स्थावर योनि, ग्यारह लाख बार कीड़े, दस लाख बार पंक्षी बीस लाख बार पशु में जन्म लेने के बाद मनुष्य योनि से हमारी लाखों योनि ऊपर की यात्रा में उर्ध्वगति में शुरू होती है ।''

तात्पर्य यह है कि लाखों योनियों के अधोगति एवं उर्ध्वगति में मनुष्य जीवन ही एक ऐसा योनिगत श्रृंखला है! जहाँ हमें कुण्डलिनी शक्ति प्राप्त है एवं सारे नारकीय योनियों की गति को तोड़कर हम उर्ध्वगति के पुष्पक विमान पर सवार हो सकते हैं ।

ये सारे अधोगति की योनियाँ हमें तीन चक्रो की स्थिति मूलाधार, स्वाधिष्ठान एवं मणिपुरक चक्र तक भोगने पड़ते हैं । इसके बाद कामक्षेत्र का अंध बिन्दु मणिपुरक चक्र और अनाहत के बीच तक में अंध बिन्दु पर समाप्त होता है ।

जैसे बहुमूल्य रत्न एवं धातुएँ बहुत कम उपलब्ध होती है और दुर्लभ भी होते हैं । वैसे ही हमारे दुर्लभ योनि में मानव योनि है। जहाँ से उर्ध्वगति पकड़ा जा सकता है !

राजा, ऋषि, संत, मनिषि, वैज्ञानिक, राजनेता, तत्ववेता, आदर्शवादी, समाजसेवी सभी इन चौथे केन्द्रक के चौथे मनस शरीर के भोग शरीर से ही पैदा लेते हैं । लेकिन राज्य और समाजिक कुटिलता में समाज से जुड़े ये आत्मावान पुरूष भी अपना व्यक्तित्व खोकर, अधोगति का कर्मबंधन पकड लेते हैं एवं उर्ध्वगति के सारे रास्ते बन्द कर लेते हैं ।

हम ऊपर के बर्णन में देख रहे हैं, कि अधोगति की लाखो योनियाँ केवल कामक्षेत्र के तीन केन्द्रों में नियंत्रित एवं नियोजित होती है। जहाँ तक बोनमैरो का क्षेत्र है । किशोरावस्था के वय संधिकाल तक एसप्लीन रक्तकण बनाता रहता है,

जब तक श्वाँसों पर इस कूटिल समाज के अहंकार द्वेष, घृणा, का भार नहीं चढ़ जाता । उल्टे वृक्ष की कल्पना की तरह, हमारा आत्मचेतना ब्रह्मरंध्र से आत्मा तक आती है। आत्मा चित्शक्ति एवं चित्शक्ति मनोमय शक्ति द्वारा हमारी प्राण ऊर्जा को नियंत्रित रखती है । मनोमय शरीर के क्षेत्र में ही हमारा कामक्षेत्र है एवं कुण्डलिनी जागरण का परिधिय तीन कुण्डल का क्षेत्र कर्मबंधित गति में है ।

इसलिए मनुष्य जीवन जो केवल सातबार की श्रृंखलागति योनि चक्र में मिल सकती है, वहाँ से ही हम इन लाखों योनिगत चक्रवात को कुण्डलिनी जागरण द्वारा तोड़ सकते हैं । दूष्ट आत्माओं का शरीर धारन करना इन नारकीय योनियों का चक्रवात है।

हम क्यों इतने अपुर्व मनुष्य योनि को अपने द्वन्द्वात्मक प्रवृतियों में बर्बाद कर रहे हैं ! जहाँ तक यह पुस्तक पहुँच रही है, उन्हें अपूर्व विवेकवान मनुष्य योनि का योनिगत श्रेणी की प्राप्ति की श्रेणी में समझा जा सकता है !

हम उठें ! सम्भलें !

तोड़ डालें इस योनिगत चक्रवात को ।

मलेच्छ मर्दनी

चित्र संख्या- 29

यह चित्रण तिब्कतन शैली में गौतम तंत्र से लिया गया है । ऊपर गौतम के ज्ञान प्राप्ति पर देवी-देवताओं को पुष्प बरसाते एवं शंखनाद करते दिखलाया जा रहा है । बीच में गौतम को शिष्यों के बीच उपदेश करते दिखलाया जा रहा है । गौतम ने शुरू के छः सालो में तंत्र पर भी बहुत प्रयोग किये थे । उसी के प्रतीति में काली को मलेच्छ मर्दनी के स्वरूप में दिखलाया जा रहा है । काली के स्वरूप के पिछे के अण्डकार वलय में, ब्लू रंग में काम, लाल रंग में क्रोध, हरे रंग में लोभ एवं उजले रंग में मोह की प्रतीति दर्शायी गयी है ।

यह ओरामंडल प्रत्येक मनुष्य के तीन शरीर एवं ब्रह्मरंध्र के पीछे आभामंडल के रूप में उसके तमस्, रजस् एवं सतज् भाव में विद्यमान रहता है । जिसकी भावदशा जैसी रहती है उसका कम्पन्न तरंग वैसा ही ओरामंडल एवं आभामंडल निर्मित करता है ।

काली को शंखनाद करते दिखलाय जा रहा है । इसकी व्याख्या हमारे काम, क्रोध, लोभ, मोह के तमस्, रजस् के भावनात्मक एवं कर्मविधित कम्पन्न तरंग को तोड़ कर, हमारा आत्मिक सतज् भावदशा में आ जाने के प्रतीति में है ।

काली के एक पैर के नीचे राक्षसी वृति का स्वरूप नीले वर्ण में पट अवस्था में मूलाधार पर एवं दूसरे पैर के नीचे साधक के योगनिन्द्रा की अवस्था में लाल रंग के स्वरूप में अनाहत पर दिखलाया जा रहा है। काली का स्वरूप लाल रंग में दिखाने का तात्पर्य यह लगाया जा सकता है कि काली शक्ति का प्रतीक है । शक्ति, रूधिर द्वारा हमारे सारे शरीर के कोषा एवं नस नाड़ियों में व्याप्त है। जो रूधिर जब तक हृदय घड़कता है, तबतक शरीर के प्रत्येक कोषा एवं नस नाड़ियों में अपना धड़कन कायम किये रहता है ।

लेकिन यह घड़कन प्रत्येक मनुष्य में अलग-अलग कम्पन्न तरंग में अपना गति बनाये रहता है । आज विज्ञान ने अपने हृदय तरंग मापक ई०सी०जी० मशीन से, इस तरंग गति को माप कर जाना है, कि किसी भी मनुष्य का धड़कन उसके तमस्, रजस्, सतज् भावदशा के कारण एक जैसा नही होता है ।

इसी के आधार पर कम्प्युटर का निर्माण हो रहा है; कम्प्युटर, हृदय के धड़कन को पासवर्ड के रूप में पकड़ेगा एवं इस कम्पन्न तरंग में किसी दूसरे का किसी भी तरह का पासवर्ड प्रवेश नहीं करेगा ।

अतः हमारे बैखरी वाणी का शब्दावली भी शंखनाद की तरह हमारे भावनाओं के प्रवाह तरंग में कम्पित होती है । हमारी आयु के अनुसार बच्चे, जवान, बुढ़े में रक्तचाप एवं रक्त प्रवाह में उनकी बदलते भावदशा के कारण अलग-अलग समय में अलग-अलग कम्पन्न तरंग में होती है । जिसका चित्रण काली के मुकुट में दिखलाया जा रहा है ।

पैर के नीचे जो राक्षस एवं देवतुल्य साधक का स्वरूप दिखलाया जा रहा है, यह हमारे साधना के स्तर को प्रदर्शित कर रहा है । शक्ति की उपासना तांत्रिक-मांत्रिक भी तमस् भाव में करते हैं एवं सतज् भाव में ऋषि मनिषि, साधु, संत भी करते हैं । जिसमें भैरवी की साधना प्रणाली को प्रशस्त माना गया है । लेकिन तांत्रिकों का ध्यान मंत्र उच्चारण में टूटते हुए चलता है एवं वे बिलकुल होशो-हवास में रहते हैं एवं उनकी आँख की मुद्रा में कौरनियाँ ऊपर चढ़ी हुई होती है ।

लेकिन ऋषि, मनिषि, साधु, संत एवं सदगृहस्थ की साधना सतज् भाव में साम्भवी मुद्रा में होती है। इसी के स्वरूप में पुस्तक में भग समाधि एवं स्पर्श समाधि की व्याख्या की गयी है ।

चूँकि तांत्रिकों की साधना कामक्षेत्र से ऊपर केवल मणिपुर एवं अनाहत के अंधबिन्दु तक ही जा सकती है एवं योनिगत जन्म श्रृंखला में, उन्हें तामसिक योनियाँ ही उपलब्ध होगी । कुण्डलिनी जागरण से दो कुण्डल खुलने तक थलचर, जलचर, नभचर की अधोगति की योनियाँ तो भस्म होगी!

लेकिन उन्हें अधोगति के साधना स्वरूप में डाकनी, राकनी, लाकनी के पृथ्वी तत्व, जल तत्व एवं अग्नि तत्व के भारीय कम्पन्न तरंग से ऊपर की गति नहीं मिलेगी । जो पृथ्वी के गुरूत्वाकर्षण क्षेत्र में है एवं तामसिक योनियों के प्रवृति में चंगेज खाँ, हिटलर, तैमुरलंग जैसी निकृष्ट आत्माओं के जन्म का कारण होगा ! वे द्वेश, हिंसा, घृणा का सैलाब लिए, इस मानव समाज को भयंकर त्रासदी के तामसिक दौड़ से गुजारेगा !

तांत्रिक-मांत्रिक की तामसिक साधना, वासनात्मक प्रवृति के तमस् स्वरूपा

स्त्री-पुरूष के समागम से भी हो सकती है । जिसको श्यामा मार्ग की श्रेणी में रखा जा सकता है । लेकिन ऋषि, महात्माओं, संतो की साधना कच्छप मार्ग से अपने स्त्रीत्व एवं पुरूषत्व के केन्द्रों का साधते हुए होती है ।

लेकिन हम सद्गृहस्थ की साधना, निर्मल प्रेम प्रवाह में शक्तिरूपा पत्नी या नैसर्गिक प्रेम प्रवाह में प्रेमिका के साथ ही हो सकती है ! जिसमें तीसरा कुण्डल खुलकर, मनुष्य योनि के कर्मगत श्रृंखला को भी तोड़कर, आत्मगति में ब्रह्म यात्रा पर हमें डाल सकता है।

इसी के प्रतीति में काली के एक पैर के नीचे राक्षसीवृति को पट की अवस्था में पृथ्वी तत्व की भारीय अवस्था में दिखलाया जा रहा है एवं सतज् अवस्था के साधक को योगनिद्रा की मुद्रा में आकाश तत्व की ओर अपना भारीय तत्व छोड़ते हुए, काली के पैर के नीचे दिखलाया जा रहा है ।

शक्ति तो काली के रूप में दोनों तरह के साधकों में संचरण कर रही है। लेकिन एक का संचरण उर्ध्वगति में है एवं दूसरे का संचरण अधोगति में है।

सवाल है, हमारी ऊर्जा का बहाव किस दिशा में है ! हमारी भावनात्मक मनोदशा ही हमारे साधना का उर्ध्वगति एवं अधोगति का कम्पन्न तरंग पकड़ा सकता है । भावनात्मक भावदशा तभी पृथ्वी तत्व, जल तत्व, अग्नि तत्व, वायु तत्व का भारीय तत्व छोड़ सकता है, जब हमारा श्वसन क्रिया नाभिकुण्ड के ताण्डेन बिन्दु पर स्पर्श करता हो !

अतः किसी भी साधना में अपने मनोदशा को शुद्ध करने के लिए, हमें अपने श्वसन क्रिया पर नियंत्रण हेतु-प्राणायाम, ध्यान, समाधि की व्यवस्था को सुदृढ़ करना है । जिसके प्रतीक में नीचे के देव को बड़े पेट के साथ एवं गौतम के ध्यानावस्था में, ज्ञान मुद्रा में दिखलाया जा रहा है ।

काली के गले में नरमुण्ड की माला दिखलाई जा रही है । यह प्रतीक है हमारे किसी भी स्वरूप में सैकड़ों जन्मों की बलिदान की! जिसका कम्पन्न तरंग जिस भावदशा में चलती है, हमारी योनिगत श्रृंखला उसी भावदशा के अधोगति एवं उर्ध्वगति में गमन कर पाती है।

आत्मा अमर है

आत्मा और शरीर अलग नहीं है जो हिस्सा इन्द्रियों के सीमा के अन्दर हो आती है वह शरीर है एवं जो हिस्सा हमारे इन्द्रियों के बाहर रह जाती है, वह आत्मा है। मतलब अदृश्य शरीर का नाम आत्मा है और दृश्य आत्मा का नाम शरीर है। पहली स्थिति से दूसरी स्थिति में पहुँचना ही ध्यान है !

मृत्यु का मतलब है, शरीर से बाहर हो जाना। जन्म का मतलब है शरीर के भीतर आ जाना, जन्म और मृत्यु तो दो छोड़ हैं, दोनों छोड़ के बीच जीवन है। लेकिन हम तीनों में बेहोश है। अगर होशपूर्वक मृत्यु हो तो होश पूर्वक जन्म भी होगा और होशपूर्वक जीवन भी होगा। **जन्म, मृत्यु, और जीवन ये "आत्मा" के लिए महत्वपूर्ण घटनाएँ है। ये तीनो घटनाएं होशपूर्वक घट जाय तो समझ लें कि हमे ज्ञान नेत्र उपलब्ध हो गया। ये तीनों घटनाएं होशपूर्वक, कुण्डलिनी जागरण के बाद ही संभव है।**

अशान्ति का अर्थ है बाहर घूमना और शान्ति का अर्थ है - भीतर घूमना। कष्ट के तल और दुख के तल अलग-अलग हैं। कष्ट परिधिगत असुविधा का नाम है और दुख केन्द्रगत संताप का नाम है। कष्ट अनगिनत हो सकते हैं। लेकिन दुख एक ही होगा। सारे कष्ट अगर खत्म भी जो जाय तो दुख का अस्तित्व बना रहेगा। दुखः ही अज्ञान है। परिधि अनित्य है वह कभी भी समाप्त हो सकता है। मतलब शरीर कभी भी नष्ट हो सकता है। मगर केन्द्र नित्य है, शाश्वत है। कभी भी वह किसी काल में नष्ट नहीं हो सकता है।

आत्मा अमर है। यानि केन्द्र अमर है। जिसे हम मृत्यु समझते हैं वह परिधि की समाप्ति है, यानि शरीर का बिनष्टीकरण। केन्द्र तो आनन्द का झरना है।

हममें सबसे बड़ी अज्ञानता है केन्द्र के प्रति जागरूप नही होना। हम केन्द्र के दुखगत स्वभाव को पकड़ते हैं। **यह अज्ञानता का दुख आनन्द में बदलने के लिए कुण्डलिनी जागरण ही रास्ता है। ऊँ ध्वनि मूलाधार से जीवन है, तो सहस्त्रार की ओर आत्मगत ऊर्जा का केन्द्र है।** अनित्य शरीर को छोड़ने के बाद भी नित्य शरीर ऊँ के रथ पर चढ़कर नित्य में समाहित हो सकता है। दुःख मन का विषय है एवं आनन्द आत्मा का विषय है।

आप शिव राज हैं!

इन्द्र जिमि जम्भ पर, बारभ सुअम्भ पर !
रावण सदम्भ पर, रघुकुल राज हैं !!
पौन बालि बाँह पर, शम्भू रतिनाह पर ।
त्यो सहस्त्रार पर, आप शिवराज हैं ।।
कामनी कन्त सौं, यामनि चन्द सौं । पावस मेघ घटा सौं !
किरति दान सौं, सुरत ज्ञान सौं । प्रिति बड़ी, सम्मान महा सौं ।
(कवि भूषण के कवित सहयोग से)

4. **भावार्थ** :- जिस तरह ईन्द्र, जम्भ नामक राक्षस पर विजय प्राप्त कर पाया! बराह (सूअर) अवतार में भगवान, शुम्भ-निशुम्भ नामक राक्षक का विनाश कर, पृथ्वी का उद्धार कर पाये! अहंकारी रावण पर जिस तरह रघुकुल के मर्यादा पुरूषोत्तम राम ने दूष्टता का विनाश कर, मानवता की नींव डाली। राजा बलि नामक अहंकारी सम्राट पर बावन अवतार स्वरूप में विष्णु ने विजय पायी! भगवान शंकर, जिस तरह रति के पति कामदेव को भस्म कर, कामशक्ति पर नियंत्रण पायी!

उसी तरह आप, नर-नारी स्वरूप में शिव शक्ति के स्वरूप में शिव परिवार के अपने स्वरूप में, सूक्ष्म शरीर स्थित षट्दल के परम शून्य बिन्दु के सहस्त्रार केन्द्र पर अवस्थित हो, स्थितिप्रज्ञ होने वाले हैं! जिस तरह प्रेम अह्लादित कामनी स्वरूपा पत्नी, शिव-शक्ति के समतुल्य बिन्दु पर हमें नैसर्गिक आनन्द से भर देती है!

चन्द्रमा के चन्द्र त्योसना में पपिहरा-पी कहाँ ! पी कहाँ ! का अह्लादित प्रेम पीरा के नैसर्गिक स्वर लहरी में हमारे आत्मा तक को झकझोड़ डालती है।

धधकती अग्नि, धनधोर घटा के बारिश से शान्त हो कर, शीतलता प्राप्त कर लेती है। धन सम्पदा के लिप्सा को शान्त कर, अन्तिम मृत्यु के क्षण में भी हमारी अन्तरात्मा संतृप्त भावदशा प्राप्त कर, हमारी दानी स्वरूपा मानवाकृति में भी, हमारी कृर्ति को अनन्त काल तक सुरक्षित रखती है।

प्रिति का महत्व प्रेम स्वरूपा होने में है। जहाँ 'तू' और 'मैं', एकाकार बिन्दु में समाकर हमें आत्मकेन्द्रीत कर देती है! महानता बड़ों के सम्मान करने में है। जहाँ हमारी सारी स्मिता केन्द्रीत होकर, हमें आस्था और विश्वास का अमृतमय झरना बना, हमें गोमुख से निकलते विशाल गंगा का स्वरूप दे देती है।

प्राण शक्ति

शरीर में प्राणों की स्थिति

शरीर में सर्व प्रथम प्राण का प्रवेश वायु रूप में है। वायु ही प्राण के रूप में परिणत होकर मानव देह में कर्म या स्पंदन का कारण होता है। गर्भ में बालक के विकास का प्रधान कारण प्राण है। यह मानव के स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण तीनों शरीर के निर्माण में बराबर भागीदारी रखता है।

गर्भस्थ बालक के शरीर में जब बालक के सारे अंगों का निर्माण हो जाता है, तो प्राण दस भागों में विभक्त होकर शरीर के कार्य के अनुसार शरीर के दस स्थानों में स्थित होकर अलग-अलग रूप में शरीर के भौतिक, मानसिक एवं अध्यात्मिक रूप में काम करने लगता है। लेकिन प्राण तो है, एक ही। अपने कार्यक्षेत्र के अनुसार उनका नाम अलग-अलग है।

प्राण

मुख्य प्राण		**उपप्राण में**	
1.	व्यान	1.	धनंजय
2.	उदान	2.	नाग
3.	प्राण	3.	कुर्म
4.	समान	4.	कृंकल
5.	अपान	5.	देवदत

व्यान प्राणः- शरीर में आकश तत्व के ब्याप्त होने के रूप को व्यान प्राण द्वारा सम्पूर्ण शरीर के भागों में ब्याप्त होना माना गया है। वैसे पूरे आकाश में व्यान की व्याप्ति है।

व्यान प्राण शरीर के विकास के साथ सात्विक, रजस् और तमस् तीनों प्रकार के गुण को ग्रहण करते हुए सात्विक अवस्था में ज्ञान-विज्ञान, राजसिक अवस्था में क्रियात्मक रूप, एवं तामसिक अवस्था में शारीरिक क्रिया व्यापार को बनाये हुए है।

उदान प्राण :- यह हृदय प्रदेश से लेकर कंठ तक अपना कर्तव्य निभाता है। समाधि की अवस्था में सत् प्रधान, जागृत अवस्था में, रज् प्रधान, एवं निद्रावस्था में तम्-प्रधान होकर 24 घंटे श्वसन क्रिया द्वारा जीवन व्यापार को संचालित करता रहता है।

क) सत् प्रधान :- समाधि का विषय है।

ख) <u>रज् प्रधान :-</u> खाँसी, गले में शोथ, व्यायाम में, युद्ध में, पर्वत पर चढ़ने में, मैथुन काल में, दौड़ते समय इस रज प्रधान उदान प्राण का वेग अति प्रचण्ड हो जाता है।

ग) **तम् प्रधान** :- तम् प्रधान उदान प्राण नीद्रा, तथा मुर्छा की अवस्था में सक्रिय रहता है। सत् एवं रज् के क्रिया रूपों का ज्ञान बन्द होकर केवल, अधंकार, जड़ता और शून्यता सी छायी रहने का बोध होता है।

उदान प्राण के क्रियाकलाप खाद्य, पेय, लेह्य चूसना आदि को क्रियाविन्त करना है एवं पदार्थो को निगलना, अन्दर से बाहर धकेलना, थूक फेकना, अन्दर ले जाना बमन, शरीर को उठाये रखना, प्राण को हृदय तक और हृदय के ज्योति को मस्तिष्क तक ले जाना, सूक्ष्म और कारण शरीर का स्थूल शरीर से सम्बन्ध बनाये रखना, सब इसी उदान प्राण के क्रिया-कलाप हैं।

<u>प्राण :-</u> प्राण हृदय प्रदेश का सबसे संवेदनशील अवस्था है। पूरे शरीर की बहत्तर हजार नसों-नाड़ियों के नियंत्रण का केन्द्र प्राण है। यह हृदय प्रदेश जिसमें आत्मा का निवास है। पंचविवर ज्योति द्वारा पंचकोशा से पूर्ण सम्बन्ध बनाये रखता है।

प्राण के ही कुपित होने पर नाना प्रकार की व्याधि व्याप्त होती है तथा प्राणायाम द्वारा इसके ही नियंत्रण से सारी व्याधियाँ दूर भी हो सकती है। पूरे स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर, कारण शरीर, सबों में ऊर्जा का बंटबारा उनके क्रिया कलापों के अनुसार प्राण ही करता है।

यह चौबिसों घंटे सक्रिय रहता है। यह फुफ्फुंस, जिगर, तिल्ली, अमाशय, पक्वाशय तथा हृदय के ठीक ठाक कार्य करने में, प्रथम उदान प्राण का कार्य रूप है। प्राण का ही मुख्य रूप से आत्मा से सम्बंध बने रहने के कारण, चेतन और अचेतन का व्यापार चलता रहता है। चेतन आत्मा प्राण में स्थित है।

यदि सारे शरीर में आत्मा की व्यापकता मानें, तो हृदय प्रदेश एक ऐसा स्थान है, जहाँ से शरीर के सारे कर्मबन्धन जो 154 ग्रथियों पर ब्याप्त है। सबसे उसका संबंघ बना हुआ है। **प्राण के साधना से ही हम आत्मदर्शन कर सकते हैं।**

स्त्रियों का यह प्राणक्षेत्र ही सबसे सबल होता है। समाधि अवस्था में जाने के बाद भी प्राण शक्ति ही शक्ति रूपा स्त्री तत्व का दर्शन कराती है।

जिस तरह साक्षीभाव मध्यस्थ बिन्दु है। उसी तरह प्राण भी सभी प्राणों में मध्यस्थ बिन्दु है। यही पूरे चेतन को कम्पायमान बनाये रखती है। आत्मा चेतन है। जो प्राण को गतिशील बनाये रखती है।

आत्मा एवं प्राण का संयोग ही सृष्टि का कारण है। आत्मा तो न किसी को ग्रहण करता है और न छोड़ता है। गमना-गमन का सारा व्यापार प्राण का ही है।

प्राण शक्ति के साधना से ही हिप्नोटाईजर बहिर्मुखी साधना आज्ञाचक्र पर करके, किसी को भी सम्भोहित करके बहुत सारी बीमारियों या पूर्व जन्म के संस्कारों और उपलब्धियों को जान जाते हैं।

प्राणोंपचारक साधक अन्तर्मुखी साधना के फलस्वरूप ही किसी भी अस्वस्थ व्यक्ति को स्वस्थ, करने में समर्थ हो पाता है। चूँकि कोई भी बीमारी पहले मन पर जाती है और ओरा मंडल पर स्पष्ट दिखने लगती है। मन पर जाने से पहले प्राण शक्ति पर व्यतिक्रमण आता है।

क) सत्व प्रधान प्राण :- समाधि की अवस्था में सूक्ष्म और शान्त होकर निर्विकल्प अवस्था पैदा करती है एवं आत्मा से सम्बन्ध स्थापित कर आत्म स्वरूप हो जाती है।

ख) रजस प्राण :- हृदय का रक्त संचार व्यायाम, प्राणायम, युद्ध काल, पर्वत पर चढ़ने, उछलने, कूदने, दौड़ने एवं मैथुन काल में प्राण का वेग बहुत प्रचण्ड हो जाता है। भय के समय एवं कामोत्तजना के समय इस रजस् प्राण का कार्य प्रमुख हो जाता है।

ग) तम-प्रधान प्राण :- मूढ़ता, जड़ता, आलस्य, नीद्रा तथा शुन्य समाधि तमूप्रधान प्राण के क्रिया-कलाप है। शारीरिक रूप से कर्म करने की अनिच्छा होती है। प्राण का प्रवाह जीवनपर्यंत मंद और तीव्र होता रहता है। रुकता कभी नहीं।

समान प्राण :- इसका कार्य हृदय क्षेत्र से लेकर नाभि तक होता है। उदर इसका निवास स्थान है। उदर में, यकृत, अमाशय, पक्वाशय, पिल्हा, छोटी आँत, बड़ी आँत के पूरे क्रिया-कलापों पर इसका नियंत्रण है। इन ग्रंथियों के रस-रसायन एवं ऊर्जा के बटवारे में इसका पूरा क्रिया-कलाप है। सतज़्, रजस्, तमस् के अनुसार इनके क्रिया-कलापों में अन्तर आ जाता है।

क) **सतज् समान प्राण** :- श्वास, प्रश्वास का संघात, विशेषतः नाभि केन्द्र तक हैं। ध्यान में जाने के बाद यह प्राण सात्विक हो जाता है। इसके अधिनस्थ ग्रन्थियाँ तो अपना व्यापार समाधि में भी बन्द नहीं करती, लेकिन प्राण का आधात बहुत मंद हो जाता है।

ख) **रजस् समान प्राण** :- यह प्राण अंतःकरण में काम, क्रोध, लोभ, मोह, ममता, राग, द्वेष, भय आदि के उत्पन्न होने से रजोगुनी प्राण कुपित हो जाता है। मनुष्य के इसके अन्तर्गत आने वाले सभी ग्लैन्डस कुपित होकर विभिन्न रोग पैदा करते हैं। अतः रजोगुनी प्राण को समभाव में रखने पर ही साधक की सफलता है।

ग) **तमस् समान प्राण** :- आलस्य, तन्द्रा, जड़ता, मूढ़ता और अकर्मन्यता में यह प्राण क्रियाशील रहता है और इनके आश्रित ग्रन्थि (ग्लैन्स) शिथिल हो जाते है। सत्व तथा रजस प्राण की उच्य अवस्था में यह गौण प्रतीत होता है।

अपान प्राण :- यह नाभि से लेकर गुदामार्ग और अवव्यक्त रूप से पैर तक अपना कार्यक्षेत्र बनाये रखता है। कुण्डलिनी शक्ति का निवास इस अपान प्राण मे ही है।

जो अग्नि तत्व प्रधान होने के कारण उद्ववगति करने की क्षमता रखती है। बाँकी मणिपूर, स्वाधिष्ठान और मूलाधार चक्र पृथ्वी तत्व की अधिकता से निम्न गमन करती रहती है।

साधना के बल पर कुण्डलिनी जागृत होने पर इन केन्द्रो की भी गति उर्ध्वगामी हो जाती है। मलमूत्र, रज्-वीर्य, विर्सजन बालक का पोषण इसी अपान प्राण के अन्तर्गत है। सतज्, रजस् एवं तमस् के अनुसार अपान प्राण के क्रिया-कलापों में भी काफी भेद रहता है। पाँचो उपप्राण - धनन्जय, नाग, कूर्म, कृंकल और देवदत्त का कार्यक्षेत्र कन्ठ से ऊपर होता है।

क) **धनन्जय प्राण** :- यह पूरे शरीर में त्वचा के द्वारा व्याप्त है। शोथ, चोट वगैरह में इसका क्रियारूप है। धनन्जय प्राण शरीर से सब प्राण निकल जाने के बाद तीन दिन तक शरीर में व्याप्त रहता है।

ख) **नाग उपप्राण** :- इसका निवास का स्थान मुख है। उदगार, हिचकी के समय यह प्राण को कम्पायमान कर देती है। उदान प्राण क्षेत्र से भी इसका सम्बन्ध है।

ग) **कूर्म उपप्राण** :- नेत्र में इसका निवास है। नेत्र के संकोचन एवं खुलने में यह क्रियाशील रहती है। त्राटक काल में यह प्रसुप्त सी हो जाती है। लेकिन जागृत अवस्था में इसका व्यापार नितरंतर चलता रहता है।

घ) **कृंकल उपप्राण** :- कण्ठ में इसका निवास स्थान है। जुम्भाई लाना और उसपर नियत्रण ही इसका मुख्य कार्यक्षेत्र है।

ङ) **देवदत्त** :- नासिका में इसका निवास है। छींक पर इसका नियंत्रण है।

बसेरा

रे यामी क्या तेरा क्या मेरा,
रे यामी क्या तेरा क्या मेरा।
लाज न मरहि कहत् घर मेरा,
रे यामी क्या तेरा क्या मेरा।।
चारि पहर निशि भोड़ा,
जैसे तरूवर पंखि वसेरा,
रे यामी क्या तेरा क्या मेरा।
जैसे बनिये हाट पसारा,
सब जग का सो सृजनहारा
रे यामी क्या तेरा क्या मेरा,
रे यामी क्या तेरा क्या मेरा।
वे ले जाड़े, वे ले गाड़े,
इन दुखियन दोऊ घर छाड़े,
कहत कबीर सुनहो रे लोई,
हम तुम बिनशी रहेगा सोई।
रे यामी क्या तेरा क्या मेरा,
रे यामी क्या तेरा क्या मेरा।।

(कबीर)

मृत्यु के समय प्राण की स्थिति

मृत्यु के समय सभी दस प्राण, प्राण में समाहित होकर प्राणवायु में विलीन हो जाते है।

मृत्यु के समय कष्ट तो बहुत है, लेकिन यह प्राकृतिक देन है, कि मर्फिया के इन्जेक्शन के प्रभाव की तरह मनुष्य बेहोश हो जाता है। सर्वप्रथम अपान प्राण अपने कार्यक्षेत्र को समेटता है। व्याण भी समेटने लगता है। उसका कार्यक्षेत्र पैर तक होने से पाव ठंडा होने लगता है।

अपान शरीर में सबसे पीछे आता है और सबसे पहले जाता है। अपान के कारण ही मृत्यु के समय मल-मूत्र विसर्जन होता है। जिसको निकृष्ट मृत्यु मानते है। अपान का कार्य तो बन्द होने से नाभि केन्द्र से नीचे का व्यापार बिल्कुल बंद हो जाता है। फिर भी धनन्जय प्राण वहाँ उपस्थित रहता है।

व्यान का भी इस क्षेत्र से अपना व्यापार समेट लेने से मल-मूत्र, रज्-वीर्य का बनना एवं निष्कासन बन्द हो जाता है। इसके बाद ''समान प्राण'' का कार्यक्षेत्र बन्द होने लगता है।

जिसमें आँते, अमाशय, यकृत, पिल्हा का कार्य बन्द करने से रस, रूधिर मलमूत्र विजर्सन, रज् ब्रीज बनना सभी बन्द हो जाते हैं। व्यान जो सर्वव्यापी है, वह भी यहाँ से अपना प्रभाव क्षेत्र हटा लेता है।

समान प्राण के क्षेत्र तक की सारी गति समाप्त होने के बाद भी, हृदय गति एवं श्वसन क्रिया अव्यवस्थित रूप से कार्य करती रहती है। हृदय की गति मरण काल में सबसे अन्त में बन्द होती है। जब तक श्वसन क्रिया चलती है, प्राण, उदान और व्यान का व्यापार चलता रहता है। सारे प्राण-प्राण में ही समाहित होते जाते है।

इसलिए हृदय गति अंतिम में बन्द होने पर ही मृत्यु प्राप्त होती है। प्राण शक्ति तो हृदय में ही है। अतः सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर का संबंध जबतक हल्का रूधिर का भी संचार होता रहता है, तबतक स्थूल शरीर से बना रहता है।

प्राण और समस्त शरीर के तेज का संबंध प्राण से ही रहता है। उदानप्राण और प्राण का गमना-गमन श्वसन क्रिया बन्द हो जाने के बाद ही होता है। मुखद्वार से उदान प्राण के निकल जाने पर सर्व साधारण की मृत्यु होती है। मल-मूत्र के त्याग के साथ तामसिक व्यक्तियों की मृत्यु होती है।

मुख और नासिका से घरड़-घरड़ आवाज करते हुए श्वास-प्रश्वास मन्द होकर मृत्यु की स्थिति पैदा करती है।

सात्विक तत्वज्ञानियों की मृत्यु में कुछ भिन्नता रहती है। प्राण, अपान, व्यान और उपप्राण जब अपना कार्य बन्द करने लगते है, तो सूक्ष्म शरीर भी इन्द्रियों, मन, बुद्धि आदि का कार्य समेट कर, कारण शरीर जिसमें आत्मा है, उसमें अपने को समाहित कर हृदय की गति मन्द होते हुए, स्थूल शरीर को छोड़ देती है।

लेकिन उच्च साधक योगियों तत्वज्ञानियों का प्राण ब्रह्मरंध्र होकर गमन करता है। मुँह के ऊपर तालू के भाग जहाँ <u>ललना चक्र</u> होता है, उसमे भी छेद करके प्राण ब्रह्मरंध्र से निकलता है। ब्रह्मरंध्र का भेदन करते हुए, हृदय और ब्रह्मरंध्र से निकलने वाले प्राण को अति उच्च श्रेणी की मृत्यु मानी गयी है।

सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर की मृत्यु तो प्रलय काल तक भी नहीं होती। वे कर्मबंधन के अनुसार आवागमन के रास्ते को अपनाएँ हुए रहते हैं।

मरते समय सभी प्राण व्यान में सिमट जाते हैं, जो शरीर व्यापी होते हुए समग्र विश्वव्यापी है।

आत्मा कारण शरीर में रहते हुए सूक्ष्म शरीर में निवास करते हुए चौबीस तत्व से बने स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण शरीर, बारह तत्व अपने स्थूल शरीर में छोड़ते हुए एवं बारह तत्व अपने साथ लेकर शरीर से बाहर निकल जाती है।

प्रेतत्व मनुष्य की आत्मगति

प्रकृति में सूर्य द्वारा नियंत्रित सातों रंग का स्वभाव अलग अलग है। इन्हीं सातों रंग के विकिरण को दिखाने का प्रतीक सूर्य के सात घोड़े के रथ पर सवार होने का चित्रण है।

भला व्यावहारिक जीवन में सूर्य का घोड़े एवं रथ से क्या संबंध हो सकता है। अन्य अनेक कई चित्रों कि तरह यह भी प्रतीकात्मक है।

इन रंगों का वेभलेन्थ वैज्ञानिक पहले अंगस्ट्रोम में नापते थे अब तो अनेक विकसित तरीके आ गये हैं।

(अ) लाल का वेभलेन्थ बहुत शक्तिशाली होता है। लेकिन वेभलेन्थ बड़ा है। लाल शक्ति का प्रतीक है एवं स्थूल शरीर में प्रतीकात्मक है।

(ब) पीला या नारंगी - सूक्ष्म शरीर के आभामंडल का प्रतीक हैं. रजस् स्वभाव का प्रतीक है।

(स) ब्लू (नीला) का वेभलेन्थ सबसे छोटा होता है और यह सबसे ज्यादा ताकतवर है। पूरा अंतरिक्ष ही सफेद और काले के समिश्रण से ब्लू (नीला) हो रहा है।

(ह) सफेद और सुनहला तो दिव्यमंडल का प्रतीक है। यह सत्वगुण से युक्त सतज् स्वभाव का प्रतीक है।

हमारे ओरामंडल पर "ऊँ" की 36 ओरामंडल की तरह इन प्रकाश का आभामंडल है। वह हमारे चित्त्वृति और शारीरिक वृत्ति के अनुरूप हमारे ओरामंडल के वलय पर बराबर चित्रित होता रहता है।

हमारे शरीरगत जितनी बिमारियाँ होती है वह पहले हमारे मन पर आती हैं एवं उसका चित्रण ओरामंडल पर आ जाता है। हमारी मृत्यु का संकेत तो छः माह पहले ही ओरामंडल पर आ जाता हैं।

ओरामंडल का प्रभाव हमारे शरीर के अंदर अणुओं में बसे हर आत्मा पर भी होता है।

जिनके आत्मप्रकाश से हमारे शरीर से साधारणतया छः ईन्च से एक फूट तक शरीर के अनुरूप ओरामंडल से, जागृत, स्वप्ना, सुषुप्ती और तुर्यावस्था में क्रमशः बीटा, थीटा, अल्फा और डेल्टा किरणों का प्रकाश तरंग निकलता रहता है।

1. स्थूल शरीर की भाषा बैखरी है। एक सेकेण्ड में स्थूल शरीर का 32 कम्पन्न है।

2. **सूक्ष्म शरीर** की भाषा मध्यमा है। यानि प्रेतलोक की ध्वनि एक सेकेन्ड में 28 से 32 कम्पन।

3. ब्रह्म शरीर की भाषा पश्यन्ति हो जाती है। इसकी गति एक सेकेण्ड में 10,485576 से 34359733333 अरबों तक हो जाती है।

कुण्डलिनी जागरण के उपरान्त हमारी साधना का जो स्तर होता है उसके अनुरूप हमारे अन्दर से हमारे सूक्ष्म शरीर से वैसा प्रकाश तरंग निसर्गित होने लगता है।

4. परा का वेभलेन्थ अरबो-खरबो में है।

रेडियो, टी०भी०, मोबाईल पर जिस फ्रिक्वेंशी पर प्रसारण होता है। उसी फ्रिक्वेंशी पर वेभलेन्थ को देने पर हमारे यंत्र जीवित हो उठते हैं और हमें संदेश देने लगते हैं एवं चित्र दिखाने लगते हैं।

ऐसा कहा जाता है कि अरूणाचल प्रदेश से 20 कि०मी० दूर एक बौध तवांग मढ़ है जिसमें केवल पाँच सौ बौध साधक के साधना की व्यवस्था है। उन साधकों का ऐसा विश्वास है कि, बुद्ध पूर्णिमा के दिन मठ की फ्रिक्वेंशी बुद्ध के सतज़् फ्रिक्वेंशी में चली आती है ।

बुद्ध द्वारा प्रसारित मनोभाव साधक के मनोभाव पर आने लगता है। यह क्षेत्र आजकल तिब्बत क्षेत्र में पड़ता है और तेजपुर स्टेशन से उतर कर जाना पड़ता है।

तिब्बत के बीहर में हिमालय में एक ज्ञानगंज मठ की चर्चा उच्चवर्ग के साधक चर्चा करते हैं । कहा जाता है कि चतुर्थ आयाम में मठ की स्थिति में है।

इसमे वैश्वानर जगत के साधक एवं उससे ऊपर के साधक साधना करते रहते हैं। कोई भी साधक जब उच्च अवस्था के कम्पन्न में चले आते हैं तो वैश्वानर जगत की आत्माएं उन्हें अपने स्तर के कम्पन में लाकर, इस चर्तुथ आयामी ज्ञानगंज मठ में ले जाते हैं ।

साधना की उच्चतर स्थिति में पहुँच जाने के बाद फिर संसार में जन कल्याण के हेतु भेज देते हैं। सूर्य भी चतुर्थ आयामी होने से स्वास्तिक के चिन्ह में वर्णित है। ज्ञानगंज मठ में हजारों वर्ष के साधक बालक जैसे देखेने में आते हैं, वहाँ स्वशन क्रिया का कोई महत्व नहीं है।

स्वशन क्रिया तो इस भौतिक शरीर के प्राणी के लिए आवश्यक है। हमेशा हरा कोहरा प्रकाशवान फैला रहता है एवं चर्मचच्छु से परे है।

ठीक उसी तरह कुण्डलिनी जागरण के बाद साधना के जिस स्तर तक हम पहुँचे होते हैं। उनलोगों की उच्च आत्माओं के द्वारा निसर्गित तरंगे हमारे सूक्ष्म शरीर से निकले वेभलेन्थ (तरंग दीर्घा) पर हमें अपना प्रसारण देने लगती है। जिसको हमारा अवचेतन मन ग्रहण करने लगता हैं।

हम कुछ भी नही समझ पाते कि हमारा ज्ञान, विज्ञान, हमारी संकल्प शक्ति का प्रतिफल कहां से आता है। लेकिन भाष्कराचार्य ने बैठे-बैठे सूर्यमंडल की सारी व्याख्याएँ कर डाली।

चरक महाराज ने आयुर्वेद की इतनी व्याख्याएँ तैयार कर दी, कि प्राणी मात्र की चिकित्सा के सारे आयाम खोल डाले। भृगुमहाराज ने भृगुसंहिता तैयार कर दिया। प्राणियों के पल-पल के जीवन से मृत्यु की संभावनाओं तक जान लिया। गौतम, महावीर तप में बैठे-बैठे ही ज्ञान को प्राप्त होकर ज्ञानियों के उच्चासन पर जा बैठे।

वेद, उपनिषद, गीता, रामायण और कितने ही संवेदनशील ग्रन्थों के रूप में ज्ञान, विज्ञान और कितने ही तार्किक युक्तियां और प्रमाण हैं, जो हमारे ओरामंडल के विकसित प्रतिफल के उदाहरण हैं।

हम ऋषि, मुनि साधु संतो के आश्रम पहुंचते ही उनकी ओरामंडल के परिधि में आ जाते हैं। एवं केवल शान्त बैठ जाने से ही हमारे अन्दर उठने वाले सारे मानसिक तनाव एवं उथल-पुथल शान्त हो जाते हैं।

इसका कारण उनके अचेतन शरीर एवं मनोदशा के प्रभाव क्षेत्र में आने के कारण होता है। कुण्डलिनी जागरण के प्रत्येक चक्र के भेदन पर ओरामंडल का विकास बढ़ता चला जाता है। ब्रह्मशरीर तक पहुँचते-पहुँचते उनका ओरामंडल विश्वस्तरीय हो जाता है।

अब हमें जरूरत है कि काम कामेश्वरी की साधना से अपने कुण्डलिनी को जगाकर उनके ओरामंडल के पवित्र ओरामंडल में अपने आत्मप्रकाश को मिला कर अपने आत्मा को भी उच्चगति प्राप्त करवा सकें !

तीर्थों के भी ओरामंडल बन जाते हैं, अगर मूर्ति उच्च संकल्पयुक्त कुण्डलिनी से जगे हुए महात्माओं द्वारा स्थापित हो।

चूंकि मूर्ति में प्रवाहित उच्च शक्ति की फ्रिक्वेंशी का चुम्बकत्व उच्च आत्माओं के आमंत्रण का केन्द्र हो जाता है एवं मूर्ति भी अपना आभामंडल बना लेती है।

जिसका प्रकाश मंदिर के गुम्बजों से विकिरण होने लगता है, और उच्च आत्माएं अपने मध्यमा भाषा से पढ़कर वहां के वातावरण में व्याप्त रहती है।

सजग कुण्डलिनी जागृत उच्चआत्माओं के द्वारा मूर्ति अगर स्थापित नहीं होती है। तो वह मूर्ति, मृतबत् है। उसपर चढ़ाए गए हमारे सारे अक्षत फूल, प्रार्थना सब बेकार जा रहा है।

हमारी प्रार्थना हमारा ध्यान चाहें वे अध्यात्मिक हो या शारीरिक, यह भी हम ध्यान एवं प्रार्थना, किन केन्द्रों पर करते हैं, उस पर निर्भर करता है।

कुण्डलिनी जागरण होने पर साँसों में पृथ्वी तत्व, जल तत्व एवं अग्नि तत्व का कमना तो पता चलता है !

.लेकिन नाभिकुण्ड से ऊपर जाने पर वायु तत्व का पता लगाना सिर्फ आचरण एवं बताये गये निश्चित विधि के प्राणायाम द्वारा ही ज्ञात हो सकता है। अग्नि की प्रकृति हमेशा ऊपर आकाश की ओर होती है।

अतः शरीर में अग्नि तत्व की भी पहचान वायु तत्व की तरह ही सम्भव है। शरीर से पृथ्वी तत्व, जल तत्व एवं अग्नितत्व जो तीनों चक्रों नाभिकुण्ड तक के साधना के श्वॅासों की गति साम्यावस्था में आने पर ही श्राप और आर्शीवाद बुलेट की तरह अगले को बेध डालती है।

मनुष्य की जब भी मृत्यु होती है; तो आत्मा, कारण शरीर, और सूक्ष्म शरीर के साथ निकलकर, मृत्यु से कुछ क्षण पहले ही अपना शरीर एक अंगुल के बराबर बनाकर उसमें मृत्यु की घटना घटित होते ही प्रवेश कर जाती है।

जैसे प्रत्येक दिन निद्रा में 10 मिनट, शरीर के सारे नस नाड़ियाँ शान्त हो जाते हैं, वैसे ही आत्मा भी अंगुलिस्त बराबर शरीर में कहाँ जाता है और कुछ ही क्षणों में वापस अपने, शब एवं प्रियजन के बीच अदृश्य रूप में कैसे चला आता है पता नहीं।

फिर श्राध में दस दिन में प्रेत के दश अंगों का निर्माण हो जाता है अदृश्य सूक्ष्म शरीर के कारण शरीर में बैठे आत्मा, प्रेत के स्वभाव को ग्रहण कर प्रेतत्व योनि के कर्मबंधन में बंधकर सैकड़ों जन्म आगे पीछे के कर्मबंधनों की श्रृंखला कायम करने में लग जाती है।

पहले ही व्याख्या की गयी है कि प्रेतयोनि अतृप्त अवांछित एवं अशोकार्य की योनि है। मनुष्य के मृत्यु के समय जैसी कर्मबंधन की गांठ होती है। दुख या सुख की श्रृंखला में बंधे सूक्ष्म शरीर को वैसी ही भावनात्मक दुखगत एवं सुखगत भावनाओं का एहसास होता रहता है।

चूंकि प्रेत में स्वयं सृजन की क्षमता नहीं होती है। इसलिए जिस तरह के वातावरण में मृत्यु होती है, वह वातावरण एवं परिस्थिति उसे प्रेतयोनि में भी भुगतना पड़ता है।

कर्मबंधन तक स्थूल शरीर के बीमारियों एवं दुखों को भी प्रेतयोनि में झेलना पड़ता है। प्रेत की निर्माण की तरह ही जब हम किसी देवता या देवी के मंत्रों का जाप करते हैं, तो बार-बार मंत्रों के प्रहार से उपयुक्त कम्पन्न (फ्रिक्वेंशी) पर देवी देवता के शरीर के अंगों का निर्माण होता रहता है।

मंत्र के पूर्णाहुति पर ही सभी अंगों के निर्माण हो जाने पर देवताओं, देवियों का वांक्षित रूपों में दर्शन हो पाता है एवं वांछित इहलोक पारलौकिक उपलब्धि प्राप्त हो पाती है।

आत्मा का भी कुछ भार लगभग सूक्ष्म शरीर के साथ है। जब प्राणवायु निकलती है, तो घर की खिड़की खरखरा जाना भी देखा गया है।

अमेरिका में शीशा के कमरे में बंद मरते शरीर से आत्मा निकलते वक्त, शीशे का कमरा टूट जाते देखा गया है।

आभामंडल एवं प्रभामंडल

सृष्टि में चेतन-अचेतन में सभी कुछ योनिगत क्रमानुसार अपना आभामंडल बनाये रहता है । चूँकि न्युक्युलियर सिद्धान्त की तरह प्रत्येक परमाणु में इलेक्ट्रॉन एवं प्रोटॉन की विद्युतिय गति नाभिक के न्युट्रान पर अपना ब्रह्माण्डीय गति बनाये रहता है । सूर्य, तारे, नक्षत्र की तरह मनुष्य का भी अपना आभामंडल एवं प्रभामंडल होता है ।

सूर्य में भी ऋषिलोक, सिद्धलोक, देवलोक के स्वरूप में आभामंडल है एवं उसका बिखराव पूरे सौरमंडल में है । उसी के रंगो के बिखराव में सभी नक्षत्र एवं आकाशीय पिण्ड, अपना अलग-अलग ओरामंडल बनाये हुए है ।

उसी तरह मनुष्य में भी ओरामंडल ब्रह्मरंध्र पर, मनःशक्ति एवं आत्म शक्ति के रूप में अपना ओरामंडल मुखमंडल के चारो ओर बनाये रहता है । इस ओरामंडल का विद्युतीय तरंग, सूर्यमंडल के ग्रह, नक्षत्रों के ओरामंडल की तरह हमारे शरीर के चक्रो, दस प्राण एवं पंचतत्व के प्रकाश तरंग में पूरे शरीर पर भी अपना प्रभामंडल बनाये रहता है ।

ओरामंडल मनुष्य के विचार तरंग, उसकी मानसिकता एवं शारीरिक स्थिति के अनुसार अपने प्रकाश तरंग का वलय बनाती है। जो हमारे काम, क्रोध, लोभ, मोह के भारीय तत्व में अपना वृत क्रमशः काला (ब्लू) लाल, हरा एवं सुनहला (पीला एवं उजला) के प्रकाश वृत में होता है।

इस प्रकाश बृत का तरंग प्रतिक्षण हमारे मानसिकता एवं शारीरिक स्थिति में बदलता रहता है। जिसकी ब्याख्या पुस्तक के कई प्रकारण में कि गई है एवं (चित्र संख्या- 2, 3, 6 एवं 7) में दिखलाई भी गई है ।

क्योंकि हमारी बैखरी वाणी एवं हमारे सोच की विचारधारा, अपने प्राण ऊर्जा का तरंग गति मध्यमा पश्यन्ति एवं परावाणी में परिवर्तित करते हुए, हमारे मनः स्थिति से उठते चित्शक्ति एवं आत्मशक्ति के अनुरूप अपना प्रकाश वलय नितसर्गित करती रहती है ।

कोई भी पिण्ड अणुओं का समुह होता है एवं अणुओं में इलेक्ट्रॉनिक गति है । हम दिवाल को भी ठोस देखते एवं मानते हैं। लेकिन दिवाल भी अणुओं का समुह है एवं अणुओं में परमाणविक गति है ।

इसलिए कोई भी मकान या भवन अपना प्रकाश बलय बना लेती है । हमारी सोच एवं विचारधारा भी अणुओ के ग्रुभ (दरार) पर, अपना प्रतिबिंब, प्रकाश तरंग के रूप में अंकित करती रहती है ।

इसलिए मंदिर एवं पवित्र स्थानो की एक अलग ओरामंडल बन जाती है । जो सूक्ष्म शरीर प्राप्त प्रेतात्मा भी अपनी विचारधारा के तमस्, रजस् एंव सतज् स्वरूप में, उस ओरामंडल के आभा को पहचान पाती है ।

वे अपने कर्मगत स्वभाव के कारण, उस आभामंडल से आकर्षित होकर, दिव्यस्थलो- मंदिर, मस्जिद, गुरूद्वारा, गिरजाघर या निकृष्ट स्थलो- जुआखाना, शराबखाना, वैश्यालय में, अपने सूक्ष्म शरीर में उपस्थिति बनाये रहती है ।

ये प्रेतात्मा भी हमारे ओरामंडल एवं आभामंडल के बलय से हमारी भावनाओं एवं विचारधारा को पढ़कर हमारी ओर आकर्षित एवं विकर्षित होते रहते हैं । हमारा प्रकाशवलय प्राण ऊर्जा का निस्तरण एवं आकर्षण का मुख्य संवाहक होता है ।

इसलिए हमारे प्रेमपूर्ण या वासनात्मक मैथुनी समागम की स्थिति में निम्न या उच्चश्रेणी की आत्माऐं, हमारे ओरामंडल के जिस ज्योतिर्मय कम्पन्न तरंग से अपना तरंग मिला लेती है; उन्हीं श्रेणी की आत्मा हमारे रज् एवं वीर्य के मिलन बिन्दु पर कोख में गर्भधान कर पाती है ।

जिस तरह हमारी स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर एवं कारण शरीर और सात शरीर की व्याख्या में भौतिक शरीर, भाव शरीर, सूक्ष्म शरीर, मनस शरीर, आत्म शरीर, ब्रह्म शरीर एवं निर्वाण शरीर होता है

उसी तरह हमारी आभामंडल एवं प्रभामंडल की तीन परत और सात परत हमारे महर्षि, मनिषियों ने अपने दिव्यदृष्टि एवं अनुभव से जाना है ।

मुख्यतः प्राण चिकित्सक तीन परत की रूप-रेखा परख पाते हैं । तीनों परत इन मानवाकृत तीन शरीर की तरह साधारणत्या दो फीट दूरी में सिमटी होती है । पहला बाहरी परत कवच की तरह कार्य करती है । बाहरी वातावरण में रहने वाले किटाणुओं, हानीकारक अन्य विचार तरंगों आदी से हमारे शरीर और मन की

रक्षा करती रहती है । हमारी रोमकुपो और तत्वा के तत्व से निकलने वाली विजातिय दव्यों एवं विकारो को बाहर निकालती है। हमारी प्राण ऊर्जा जितनी जीवन्त होती है, उसी अनुपात में वह अनन्त के स्रोतो से प्राप्त, प्राण ऊर्जा का संवाहन कर पाती हैं।

प्रभामंडल की मध्यवर्ती (बिचली) परत, प्राण शक्ति के नीचे वाली परत तक, अपनी प्राण ऊर्जा का वलय बनाये रहती है एवं एक दूसरे से दूध-पानी की तरह घूली मिली रहती है ।

प्रभामंडल की मध्यवर्ती परत, शरीर के दो ईंच के दूरी से शुरू होती है। जहाँ तक शरीर के चक्रो का स्पंदन प्राण केन्द्रों एवं चक्रो के आभामंडल से अपनी प्राण ऊर्जा आकर्षित एवं नितसर्गित करती रहती है ।

आभामंडल एवं प्रभामंडल की सूक्ष्म तरंग की गति बहुत सूक्ष्मान्तर में, जलते दिये की लौ की तरह अपनी प्राण ऊर्जा का स्पंदन बनाये रहता है । प्रभामंडल की बाहरी परत से दस ईंच दूरी से यह मध्यवर्ती प्रभामंडल अपना परत बनाये रहता है । जो बाह्रय परत से घुला-मिला अपना स्वरूप बनाये रखता है । इस मध्यवर्ती प्रभामंडल की परतें मनुष्य के विश्वास, प्रेम, आशा, श्रद्धा आदि के सकारात्मक भावदशा में उज्जवल एवं पवित्र प्रभामंडल बनाता है ।

लेकिन नाकारात्मक भावदशा में इन पर कालिमा एवं काम, क्रोध, लोभ, मोह का भारीय प्रकाशवलय अपने स्वरूप में विशादात्मक प्रभामंडल बनाये रखता है ।

बाह्रय परत का प्रभामंडल दस ईंच एवं मध्यवर्ती प्रभामंडल एक फीट का प्रकाश तरंग नितसर्गित करता रहता है । जो शरीर के दो ईंच तक की दुरी के अदृश्य स्पर्श बिन्दु पर, अपना अदृश प्रभामंडल बनाये रहता है । प्रभामंडल का निम्न परत जो शरीर से दो ईंच दूर से अपना आभामंडल बलय बनाये रहता है, उसपर प्राण शक्ति के ऊर्जा वलय का सीधा प्रभाव देखने को मिलता है ।

चूँकि वह चक्रो एवं शरीर के दस प्राण एवं पंचभूत तत्वों से सीधा सम्पर्क में रहता है । इसलिए प्राण ऊर्जा का घनत्व इस परत पर ज्यादा प्रभावी देखा जाता है । मनुष्य के स्वास्थ्य एवं मनोविचारों का ज्यादा घनात्मक एवं ऋणात्मक प्रभाव प्राण चिकित्सक अपने अदृश्य स्पर्शज्ञान से परख पाते हैं ।

इसलिए कोई भी प्राण चिकित्सक शरीर के दो ईंच दूर से शरीर के पृष्ट

भाग एवं सन्मुख भाग से, अपने हथेली को अदृश्य स्पर्शज्ञान द्वारा प्राणवलय की स्थिति को भॉफ लेते हैं ।

जहाँ प्राणतत्व ज्यादा घना रहता है, वहाँ का प्रभामंडल इस प्रकार बढ़ा रहता है, जैसे सूजन सी आ गयी हो । जहाँ प्राणतत्व कम होता है, वहाँ का प्रभामंडल कुछ दबा या कटा सा महसूस होता है । प्रभामंडल में भूरापन या कालिमा भी प्राण चिकित्सक अपने स्पर्शज्ञान या दिव्यदृष्टि ज्ञान से जान लेते हैं ।

प्रभामंडल और भौतिक शरीर में घनिष्ट संबंध होता है । दोनों एक दूसरे पर अपने प्राण ऊर्जा के आभामंडल का प्रभाव बनाये रहता है। जहाँ का प्रभामंडल दबा या उठा होता है, वहाँ शरीर पर कोई न कोई रोग होता ही है ।

इसलिए प्राण चिकित्सक जहाँ प्राण ऊर्जा को जमा या घना या कम पाते हैं; उसको उचित सीमा तक अपने प्राण शक्ति के प्रवाह द्वारा समबिन्दु पर ले आते हैं एवं प्राण ऊर्जा के क्षिन्न प्रवाह को व्यवस्थित कर, रोगी को रोग मुक्त कर देते हैं ।

गुरूदेव, पत्नी, मित्र, शत्रु किसी के भी सानिध्य में हम बैठे हों, तो उनके ओरामंडल का प्रकाश तरंग एवं विचारधारा भी हमारे ओरामंडल को प्रभावित करता है एवं हमारे विचारधारा के प्राण तरंग पर अपना अमिट छाप छोड़ता है ।

ऋषियों ने चन्द्र एवं सूर्य भ्रमण के परिधि की गनणा कर अनेक नक्षत्रों, ग्रहों से निकलने वाले प्रकाश तरंग के अनुरूप व्रत, त्योहार एवं मुर्हुत को परिभाषित किया है एवं उसके अनुरुप भी व्रत त्योहार करने से हमारा ओरामंडल बदलता है ।

दूष्टात्मा या साधूआत्मा प्रेत भी, हमारे विचार तरंग को हमारे शरीर एवं मस्तिष्क के ओरामंडल से नितर्गित प्राण तरंग के द्वारा ही, हमारी मनोदशा एवं मनोभाव को पढ़ पाते हैं ।

प्रेतत्व प्राप्त आत्मा होते तो हम ही मनुष्य से दूध पानी की तरह घुले-मिले ! लेकिन उनका विचार तरंग का आकाश ही बदल जाता है । मनुष्य का विचार तरंग बैखरी भाषा के अनुरूप चलता है एवं प्रेत का विचार तरंग मध्यमा वाणि में चलता है । मध्यमा वाणि का विचार तरंग सूक्ष्म शरीर की आत्मगति है ।

किसी के मृत्यु के छः महीना पहले उसका संकेत ओरामंडल पर चला आता है । आकसमिक या स्वभाविक या गोली लगने के मृत्यु का संकेत भी ओरामंडल पर छः महिना पहले से आना शुरू हो जाता है ।

मृत्यु कर्मबंधित है !

इसलिए मृत्यु की घटना हमारे शरीर के मनः स्थिति में, बहुत पूर्व से ही घटित होने लगती है। हमारे कपाल कुहर (सेरेब्रेटा कैभिटि) के न्यूरान सेल जो प्रतिदिन पाँच हजार सेल टूटकर अमृत बुन्द बनाती है ।

वह जब अपने टूटने एवं क्षरण के अन्तिम क्षण में पहुँचती है; तो हमारी मृत्यु अगले कर्मबंधित योनि प्राप्त करने हेतु, स्पष्टतः हमारे ओरामंडल पर प्रकाश तरंग बदलते हुए, दृष्टिगोचर होने लगता है। मृत्यु की सारी घटना, बहुत पहले से शरीर में घटित होने लगती है।

लेकिन ओरामंडल पर छः माह पहले से उसकी काली छाया पड़ने लगती है। आकस्मिक मृत्यु जो कर्मबंधित ही होता है !

अकाल मृत्यु के रूप में प्रेतत्व प्राप्ति के बाद, हमारे अगले जन्म में प्रवेश कर जाती है एवं बची हुई जीवन के भाग को पूरा कर बाल्यावस्था में ही मृत्यु को प्राप्त कर लेती है।

इसलिए बहुत बच्चे अल्पायु में ही मृत्यु प्राप्त कर लेते हैं।

अतः ओरामंडल हमारे स्थूल जगत से सूक्ष्म जगत तक का आयना है।

प्राणऊर्जा एवं प्राणवायु में सूक्ष्मान्तर

प्रतक्षतः तो सूर्य किरण ही चौरासी लाख योनि में अपने सातों रंग द्वारा ईथरिक एवं न्यूट्रान के कम्पन्न में, प्राण संचरण का कारण प्रतीत होता है । लेकिन हमारे स्थूल एवं सूक्ष्म जगत में जहाँ बराबर सृष्टि एवं विनाश लीला चलती रहती है । उसके मूल में भी सूर्य के सातो रंग, जिसके विश्लेषण में भाष्कराचार्य ने हजार किरण की व्याख्या की है; जो देव, दानव, मनुष्य एवं थलचर, जलचर, नभचर सबों में प्राण संचरण करती रहती है; उसी को सृष्टि का कारण माना है !

लेकिन सूर्य का किरण प्राण नहीं है ! वह तो प्राण संचरण का केवल माध्यम है । स्थूल एवं सूक्ष्म जगत में जो भी प्राण संचरण की गति आती है, वह तो किसी ईश्वरीय एक बिन्दु का कम्पन्न तरंग है । जो प्रतिपल, प्रतिक्षण सृष्टि का विनाश एवं सृजन करती रहती है ।

सृष्टि का विस्तार तो किसी क्षण नहीं रूकता । उसकी परिधि भी चौरासी लाख योनि के परिधि की तरह बराबर अनन्त की ओर विस्तार पकड़े हुए है और हम मनुष्य भी अपनी आत्मा में केन्द्रीत होकर उस विस्तार का केन्द्रबिन्दु हैं ।

हमारे स्थूल जगत में जिसकी जैसी संरचना रहती है, प्राण शक्ति अपना वैसा ही स्वरूप एवं गति बना लेती है । अगर मानवतन के स्थूल शरीर में ही प्राण संचरण होती है; तो जिस समय गर्भ में हमारा गर्भाधान स्वरूप में बीजारोपन होता है।

प्राण आत्मा की गति में, कारण शरीर होने हुए, सूक्ष्म शरीर में अपना गति बनाते हुए, स्थूल शरीर के नस, नाड़ियों, कोषा एवं ग्रन्थि पर अपना अलग-अलग कार्यक्षेत्र का बँटवारा कर लेती है । मन दो भागों में विभक्त हो जाता है; अर्न्तमन और बहिर्मन ।

लेकिन दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू के तरह हैं । हमारी मानसिक गति में ही क्या ? अगर ब्रह्माण्ड में अद्वैत की स्थिति मानते हैं, तो वह भी द्वैत के रूप में दोनो पहलू एकाकार होकर मिश्रित रूप लिए ही तो रहता है ! बिना द्वैत के अद्वैत की कल्पना ही व्यर्थ है ।

मनुष्य योनि में ही अगर मन की सांसारिक स्थिति माने ! तो आधा मन आत्मा के पक्ष में होता है एवं आधा मन शरीर के पक्ष में

होता है । एक सिक्का के दो पहलू की तरह या नदी के दो पट्टों की तरह माने, तो एक किनारा आत्मा है तो दूसरा किनारा शरीर है । मन दोनों किनारा का सेतु है । दो पट्टों के बीच मन कील है । तो हम अपने मनुष्यतन के बगैर, आत्मा के स्वरूप को कैसे अलग माने ?

जिस तरह हमारी छाया हमारा साथ नहीं छोड़ती । उसी तरह स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर, कारण शरीर का चक्रवात आत्मा का साथ नहीं छोड़ती । केवल प्राण ऊर्जा का क्षेत्र बदलता रहता है । यह प्राणऊर्जा अद्वैत से द्वैत के रूप में वापस परिधि की ओर बढ़ने में, शक्तिरूपा स्त्री एवं शिवरूपा पुरुष के रूप में, इस सृष्टि के संचरण चक्र को चलाने में सक्रिय हैं ।

लेकिन हमेशा से हमारे मनिषियों ने व्याख्या की है कि सृष्टि की उत्पत्ति शक्ति से है । देवी भागवत में जितने शक्ति स्वरूपा देवियों का वर्णन है, सबों में पार्वती को श्रेष्ठ माना गया है एवं पार्वती को शिव की अर्द्धांगिनी के रूप में दर्शाया गया है । जो अर्द्धनारीश्वर के रूप में शिव-शक्ति का मिलन ही सृष्टि है। हमारे स्थूल जगत के सभी प्राणी के साथ-साथ, हम मनुष्य के नर-नारी का भी योगमाया है ।

पुरुष का मिलन तो क्षणिक संयोग की प्रक्रिया है । लेकिन नारी शक्ति के गर्भ की बहुत ऊँची व्याख्या की गयी है । स्थूल जगत में भी कर्ण और अर्जुन का जन्म सूर्य और इन्द्र के प्राण संचरण के केन्द्रीभूत ऊर्जा एवं पाण्डव, धृतराष्ट्र, बिदूर का जन्म, व्यासदेव के तप से प्राप्त चक्षु प्राण शक्ति के केन्द्रीभूत ऊर्जा से भी, बिना शारीरिक मैथुन के भी इतने प्राणवान और ज्ञानवान बच्चें का जन्म का कारण बना। समागम में पुरुष का क्षणिक सहयोग भी सहायक होता है ।

लेकिन हमारे गर्भस्थ शिशु तक का प्राण संचरण का माध्यम तो माता का गर्भ ही होता है । माँ नौ महीने बच्चें के सभी अवयव में प्राण संचरण का माध्यम होती है । स्थूल जगत में जन्म लेकर भी बच्चा माँ के सीने से लगा दुग्धपान करता रहता है । वहाँ तो बच्चा माँ के स्तन से ही खेलता रहता है । कामुकता का कोई भाव तो नहीं आता !

इसी की परिकल्पना में देवियों को माँ स्वरूप में देखा गया है एवं

मातंगी योग को सर्वोपरि माना गया है । काम वासना रहित होकर नग्न स्त्री को देखकर सतज् भावदशा में रहना प्राकृतिक रूप से मनुष्य रूप में पुरुष के लिए बहुत बड़ी बात हो जाती है । यह पुरुष के षट्चक्र के केन्द्रों पर स्त्रैण और पुरुषत्व का सामंजस्य समभाव में आकर ऋण और धन का मापदन्ड बराबर हो जाने पर ही सम्भव है ।

हम अपने भगवान राम और कृष्ण को या गौतम, महावीर को बिना दाढ़ी-मूँछ के स्त्रैण भाव में देखते हैं । यह उनकी शान्तिदायक एवं प्रेममय मुद्रा होती है । इसका कारण उनके साधना स्वरूप में कुण्डलिनी जागृत षट्चक्र दर्शन में सुषुम्ना के प्राण ऊर्जा क्षेत्र में स्त्रैन और पुरुषत्व का ऋण और धन विद्युत के समभाव में आ जाने पर ही सम्भव प्रतीत होता है ।

दोनों के समभाव के प्रतिकात्मक ही करूणा, मैत्री, मुदिता की अवस्था पार कर भगवत् स्वरूपा प्रेममय एवं आनन्दमय निर्झर का स्वरूप पकड़, ये भगवान स्वरूपा अवतार ही क्या ! हम भी चिनानन्द आनन्द स्वरूपा कैवल्य प्राप्त कर सकते हैं ।

हम समझते हैं कि हमारा दुखःसुख, मान-अपमान हमारे ईश्वरीय देन का कर्मफल है । लेकिन नहीं ! प्रकृति तो अपना सारा नियंत्रण अपने नियमावली से करती है । उसे हमारे हिंसा-अहिंसा, दुख-सुख से कोई लेना-देना नहीं है । वह अनवरत अपना सारा कार्य प्राण ऊर्जा के जिम्मे थमाए हुए है । जिसका जो स्वरूप है, उसी में प्राण ऊर्जा अपना अस्तित्व बना लेती है ।

प्रकृति में लाखों, करोड़ो-तारे, नक्षत्र जो एक निश्चित चक्रवात में घूमते है एवं नष्ट और सृजित होते रहते हैं । प्रकृति उसमें भी अपना हस्तक्षेप नहीं करती। वह तो प्रकृति की नियमावली में प्राण ऊर्जा का संचरण करती रहती है ।

हम समझते हैं कि तुफान आ गया या एटमिक विस्फोट होगा, तो पृथ्वी का बहुत प्राणी नष्ट हो जायगा । लेकिन सूर्य पर तो असंख्य आणविक विस्फोट प्रतिपल, प्रतिक्षण होता रहता है, उसको कौन नियंत्रित करता रहता है। जबकि बहुत सारे आकाश गंगा में सैकड़ो, हजारों सूर्य की मौजुदिगी की परिकल्पना ही नहीं वास्तविकता है एवं सूर्य का अपना-अपना सौरमंडल है । जिसमें अरबों पृथ्वी जैसी जलवायु एवं

असंख्य निम्न एवं उच्च स्तर के बौद्धिक प्राणी हो सकते हैं ।

इसलिए बन्धुओं !

हमारा दुख-सुख, मान-अपमान, सत्य अहिंसा, घृणा-द्वेष सब हमारे स्थूल जगत की योगमाया है । हमारे अन्दर जो आत्मा है, वह भी अनन्त के प्राण ऊर्जा के स्रोत से ऊर्जा लेकर हमें आत्मावान बना रही है ।

जो भी स्वर्ग-नर्क, मान-अपमान हम भोग रहे हैं; सब हमारे कर्मफल की परिधि का चक्रवातीय परिणाम है । प्रकृति को इससे कोई लेना-देना नहीं है! वह तो अवाध गति से अपने पूरे ब्रह्माण्ड का नियंत्रण अपने कर्तव्य पालन के स्वरूप में कर रही है ।

बराबर चर्चा की गयी है कि हम प्रकृति के ही एक अणु हैं; प्रकृति हममें समायी हुई है । इसलिए जब हम अपने मानव जीवन का स्वरूप समझ, अपने कर्तव्य पालन का स्वरूप अगर सामाजिक एवं पारिवारिक परिवेश में निर्वाहन करते हैं, तो हम पर ईश्वरीय स्वरूप उतरने लगता है ।

अद्वैत से द्वैत में योनि के चक्रवातीय स्वरूप में जब हमारा आत्मखंड विखंडित हो, स्त्री और पुरुष का स्वरूप पकड़ता है; तो सृष्टि निर्माण की गति, काम-कामेश्वरी के विशुद्ध रूप के बगैर, न राष्ट्र निर्माण कर सकता है और न परिवार निर्माण कर सकता है और न हमारा व्यक्तित्व निर्माण कर हमें ईश्वरीय रूप दे सकता है ।

इसका प्रमाणिक स्वरूप, श्री नरसिंह स्वामी कलकत्ता के मधुपुर वासी काली साधक की साधना से प्राप्त योग साधना द्वारा, कलकत्ता यूनवर्सिटी में (1932) में दिखलाया गया था ।

इस योगी का दावा था कि वगैर प्राणवायु के भी निःशब्द श्वाँसगति के बिल्कुल बन्द हो जाने पर भी, यह स्थूल शरीर जीवित रह सकता है । शरीर में सूक्ष्मतम श्वाँस की गति नाभिकुण्ड के मध्य में होती है । वहाँ भी श्वाँस की गति न मालूम होना मृत्यु की स्थिति है ।

यूनिवर्सिटी में एक आयोजन के रूप में बहुत सारे डाक्टर एवं उच्चवर्गीय

अधिकारी लोग एवं जनता को आमंत्रित किया गया । डाक्टर की एक अलग टीम बनाई गई, जाँच सर्टिफिकेट देने के लिए ।

साधक का निवेदित शर्त था कि सम्पूर्ण जाँच के बाद अगर डाक्टर की टीम पूर्णरूपेन आश्वस्त होकर उन्हें मृत जान ले; तो उनके मृत्यु का घोषणा करते हुए, उच्च अधिकारी का दस्तखत एवं मोहर लगाते हुए उनका मृत्यु प्रमाण पत्र बना दें एवं उनके मृतवत् हाथ में थमा दें ।

समाधि में जाने से पहले उन्हें संखिया, पोटाशियम साइनाइड या उससे भी तीव्रतर साँप का विष दे दिया गया । योगनिद्रा के पूर्ण स्वरूप में चले जाने पर आधा घंटा बाद डाक्टरों ने उनका परीक्षण हर विधि एवं दृष्टिकोण से करके पाया, कि योगी के शरीर में कहीं भी प्राण के लक्षण नहीं हैं । श्वाँसगति तो नहीं ही चल रही थी । पूर्ण स्वस्थ लेकिन मृत्वत अवस्था में तीन घंटे बाद परीक्षण किया गया ।

लेकिन जो संखिया एवं सर्प का बिष दिया गया था वह भी शरीर के आँतो में ज्यों का त्यों पड़ा था । रक्त प्रवाह में बिल्कुल नहीं जा पाया था ।

यह प्रमाणिकता भी सामने आयी कि योगी के योग साधना द्वारा, रक्त ने भी किसी बिष को ग्रहण नहीं किया था । फिर भी योगी चिरनिद्रा के शान्तिदायक स्थित में निष्प्राण धरातल पर सोया पड़ा था ।

डा० सी० वी० रमण की अध्यक्षता में डाक्टरों ने सभी प्रशिक्षण से सुनिश्चित होकर, मृत्यु प्रमाण पत्र बना दिया और मृत पड़े योगी के हाथ में थमा दिया ।

जाँच के लगभग एक घंटे बाद वह काली साधक योगी उठकर बैठ गया और उस मृत्यु प्रमाणपत्र को अपने अंटी में रखते हुए, मेडिकल चिकित्सा को एक खुली चुनौती दे डाली; कि बगैर प्राणवायु के भी प्राण ऊर्जा के माध्यम से जीवन शैली चलाई जा सकती है ।

हठ योगी अपने रक्त प्रवाह पर भी अपना नियंत्रण कर, किसी भी अजैविक पदार्थ को ग्रहण नहीं कर सकता है । यही योगनिद्रा के साधना की स्थिति समाधि की योग साधना हो सकती है एवं मनुष्य नियोजित मृत्यु द्वारा इहलोक-परलोक का भ्रमण कर, फिर अपने स्थूल शरीर में वापस लौट सकता है ।

हम कम्प्यूटर या लैपटैप में देखते हैं कि नेट के द्वारा ध्वनि संकेत आने में बहुत सारे वायरस (सूक्ष्म विजातीय तरंग) प्रवेश कर जाती है । उसके रोकने या हटाने के लिए एन्टीवायरस (सूक्ष्म विजातीय तरंग का अवरोधक) लगाकर उस विजातीय तरंग को रोकते हैं या निकालते हैं ।

उसी तरह जितने मंत्र उच्चारण किये जाते हैं, उसमें एन्टीवायरस की तरह मंत्रभेद के अनुसार 'ऊँ' की ध्वनि तरंग या ध्यान तरंग जरूर लगाते है । प्रत्येक मंत्र में 'ऊँ' उनमें तमस् भाव में प्रवेश किये विजातीय ध्वनि तरंग को निकाल बाहर करता है । चूँकि यह विजातीय ध्वनि तरंग प्रत्येक अक्षर या शब्दध्वनि, तरंग ध्वनि के साथ मंत्र ध्वनि तरंग में प्रवेश कर जाता है । जिसको 'ऊँ' के ब्रह्माण्डीय ध्वनि तरंग से ही निकाला जा सकता है ।

आज इलेक्ट्रानिक युग में जितने आणविक संचरित उपकरण बनाए जाते है, सब एक निश्चित बिजली की प्राण शक्ति के संचरण के अनुरूप बनाए जाते है । उपयोग में आने वाली ज्ञान-विज्ञान एवं प्रायोगिक जानकारी के लिए चित्रित डाईग्राम के पैनल बोर्ड में त्वरित बिजली प्रवाह के लिए केवल यांत्रिक प्रवाह का - ताँवा, सोना, प्लेटिनम इत्यादि जैसे उच्च प्रवाह सुचालक (कन्डक्टर) द्वारा बिजली प्रवाह के लिए प्राण ऊर्जा प्रवाह की प्रणाली में बनाएं जाते हैं ।

अवरोध या गति पैदा करने के लिए कैपीसीटर (गुणित ताकत) लगाये जाते हैं एवं सूक्ष्म से सूक्ष्म ध्वनि तरंग, प्रकाश के ऊर्जा प्रवाह में, अपनी प्रवाह व्यवस्था कायम करते हैं ।

दुनिया क्या ! आज ब्रह्माण्ड के सूक्ष्म ध्वनि तरंग एवं प्रकाश तरंग का प्रवाह यहाँ बैठे-बैठे रिमोट कन्ट्रोल से नियंत्रित किया जा सकता है । इसी यांत्रिकी विधि से जिसका तंत्र, ध्वनि तरंग एवं प्रकाश तरंग है - उपग्रह, मोबाइल, कम्प्यूटर बगैरह की बहुत विकसित प्रणाली कायम कर ली गयी है।

ठीक उसी तरह मंत्र और तंत्र की अभिव्यक्ति भी मानव इतिहास को ज्ञान-विज्ञान से प्लावित करता रहा है । परमाणु की तरह अक्षर या शब्द में असंख्य बिन्दु होते है जो हमारे प्राणवायु में उच्चरित ध्वनि तरंग का सहारा ले अनन्त की प्राण ऊर्जा का संचरण क्षेत्र बना लेता है ।

इसलिए हमारे मनिषीयों ने चौथे शरीर, मनस शरीर के उपर की गति से उतर कर, इस प्राण संचरण के लिए बहुत यांत्रिक रेखांकित यंत्र बनाए । ये यंत्र ताम्बा, चाँदी, सोना, प्लेटिनम इत्यादि में उनके त्वरित प्राण ऊर्जा के संचरित प्रवाह के स्वरूप में बनाएँ गये ।

अक्षर के प्रमाणिक बिन्दुवार व्यवस्था के संकलन को जान, मंत्र विज्ञान के द्वारा इस अंतरिक्ष के विशाल प्राण ऊर्जा के संचरण के उद्गम का नियंत्रण, रिमोट कन्ट्रोल की तरह जाना । उन्हीं की समुचित प्राणिक ऊर्जा के संचरण के नियंत्रण में, मंत्रों का भी उद्भव हुआ ।

इन मंत्रों को हमारे ऋषि, मनीषियों ने हमारे शरीर के षट्चक्रों और नस नाड़ियों के प्राणिक प्राण ऊर्जा की संचरित व्यवस्था को जान, उसके उद्घोष एवं उच्चारण का स्वरूप एवं चित्रित यंत्र में प्राण ऊर्जा संचरण की व्यवस्था को सृजित किया ।

'ऊँ' शब्द का वैसे तो कोई शाब्दिक अर्थ ही नही है ! लेकिन इसमें संचरित प्राण ऊर्जा को छत्तीस तरंग एवं असंख्य प्रकाश तरंग के रूप में चित्रित किया गया है । (चित्र संख्या-10) इन्हीं तंत्र-मंत्र का सहारा ले महाभारत काल में बहुत सारे युद्ध कौशल दिखलाये गये ।

प्राण ऊर्जा के संचरण की सूक्ष्मतम व्यवस्था जानकर, कृष्ण जैसे मानवरूपी नारायण ने, घटोत्कच के पुत्र बरबरीक का सिर काटकर भी महाभारत का संग्राम देखने तक नरमुण्ड को जिन्दा रखा। यह उनके कोषा में प्राण ऊर्जा के संचरण ज्ञान एवं मंत्र विज्ञान के द्वारा प्राण ऊर्जा के संचरण को ही प्रतिभाषित करता है ।

महाभारत काल में किन्हीं महारथी के रथ पर वहुत ज्यादा अस्त्र-शस्त्र एवं तीर कमान नहीं लदे होते थे । बाण, प्राण संचरित ऊर्जा प्रवाह में जाकर फिर तरकश में वापस आ जाता था । जिसको 'रिपू विद्या' कहते थे ।

आज भी इलेक्ट्रॉनिक युग में ड्रोन से हमले किये जाते हैं । उसमें कोई मनुष्य नहीं रहता है । केवल लाऊंचर एवं जेट को रिमोट कॉन्ट्रोल द्वारा नियंत्रित किया जाता है । रॉकेट लांउचर द्वारा कोई बम आकाश में निश्चित गति पकड़ने से पहले ही बम द्वारा आकाश में ही नष्ट कर दिया जाता है । हजारों मील दूर तक मिसाइलें दागी जाती है ।

पुरातन काल से आजतक प्राण संचरण की गति तो वही है । केवल उसके छोड़ने एवं नियंत्रण के आयाम बदल गये हैं। परमाणिक पद्धति को जितना नियंत्रित ढंग से पाँच हजार साल पहले जाना गया, हमारा विज्ञान अभी वहाँ तक नहीं पहुँच पाया है और न पहुँच पायेगा ! क्योंकि प्राण ऊर्जा का संचरण तो अनन्त से है एवं कण-कण में अपने-अपने प्रारूप में व्याप्त है ।

जबकि विज्ञान आत्मगति 186000 मील प्रति सकेन्ड भी नहीं आ पाया है । हमारी आत्मगति के अलावे कुण्डलिनी गति को 345000 मील प्रति सेकेण्ड में हमारे मनीषियों ने जाना ।

बल्की प्रत्येक मानव नर-नारी में इसका विज्ञान अच्छून रूप में प्राण ऊर्जा प्रवाह में देख काम ऊर्जा के महत्व को जान, स्त्री-पुरुष की वैवाहिक व्यवस्था को बहुत सुदृढ़ पारम्परिक सूत्रों में बाँधने का प्रयास किया गया । जिसका प्रयोगात्मक स्वरूप इस तीन भाग के छोटी पुस्तक में समाहित करने का प्रयास किया गया है ।

हम हिमालय को बड़ा मानते है । कंचनजंघा और गौरी-शंकर के उच्चतम शिखर पर चढ़ाई की होड़ लगाये बैठे हैं । जबकि परमाणु जैसे एक इकाई नर-नारी में असिमित प्राण ऊर्जा क्षेत्र का नियंत्रण कर, पूरे पृथ्वी को छोटा कर देने की क्षमता है । हिमालय तो बहुत बड़ा दिखता है ।

लेकिन एक परमाणु तो नंगी आँखों से क्या अणुविक्षण यंत्र से भी नहीं देखा जा सकता ! अगर लाख परमाणु को एक पर एक रखा जाय तो पतले बाल से भी पलता ही दिखेगा । इसमें इतनी अपरिमित शक्ति है, कि छोटा से छोटा परमाणु बम एक देश को जलाकर बर्बाद कर दे ।

जबकि हम-आप जैसे मनुष्य में सूर्य में होते असंख्य परमाणु के विस्फोट के तरह प्राण ऊर्जा केन्द्रों के नियंत्रण कक्ष में परमाणविक ऊर्जा का विक्षेपण एवं संघात की सारी शक्ति भी भरी पड़ी है । जरूरत है हम नर-नारी को उसके केन्द्र को समझ साधनारत होने की !

प्रकृति मेरे लिए कहीं खड़ा नहीं है । वह तो अवाध गति में प्रकृति में अपने प्राकृतिक नियम में संचरण कर रही है । जरूरत है! हमको उस प्राण ऊर्जा

के तात्विक परिवेश में अपने प्राण ऊर्जा के संकलन की ।

उदाहरण के लिए हम एक खाली कमरे में दो तानपुरा जैसे बाद्ययंत्र में, एक को कमरे के एक कोने में खड़ा करके रख देते हैं । दोनों वाद्य यंत्र के तारो को एक जैसे कम्पन्न में उसके मुठ से नियंत्रित कर सूर और ताल के हिसाब से कस कर, एक को कमरे के कोने में व्यवस्थित कर देते है ।

कमरे के मध्य में बैठकर एक संगीत साधक उच्च कम्पन्न स्वर लहरी में तानपुरा बजाता है, तो कोने में रखा तानपुरा उसी तान के स्वर लहरी में स्वयं गूंजने लगता है ।

उसी तरह हमारा सभी दस चक्रिय केन्द्र हमेशा संगीतमय कम्पन्न गति में विभिन्न साज के रूप में कम्पन्न करता रहता है । जब हमारे साधना स्वर से हमारी प्राणिक गूंज उनके ताल में ताल मिलाने लगती है तो कमलदल के रूप में वर्णित देवी देवताओं के संगीतमय कम्पन्न लोक से हमारा सम्बन्ध हो जाता है एवं सूक्ष्म शरीर की गति में हम ब्रह्माण्डव्यापी होने लगते हैं ।

इन्हीं कम्पन्न का प्रायोगिक रूप पिछले कई शताब्दी में देखा गया । बैजू बावरा ने अकबर के दरबार में तानसेन के अहंकार स्वरूपा संगीत के दावे को, अपने प्राण ऊर्जा की स्वर-लहरी से धरासायी कर दिया ।

बैजू बावरा ने अपने आत्मीय प्राण ऊर्जा के स्वर कम्पन्न में शीशे के ग्लास में रखे पत्थर को, स्वर लहरी के कम्पन्न के प्रभाव से, ग्लास फोड़ कर पानी से बाहर निकाल दिया ।

बिहार प्रान्त के दरभंगा जिला के महाराजा महेश ठाकुर के दरबार में साढ़े चार सौ वर्ष पहले, अमता के मल्लिक गायक राधा कृष्ण मल्लिक एवं कर्ताराम मल्लिक जो दोनो भाई थे, अपने युगलबंदी स्वर लहरी में बुझे दीप को दीपक राग गाकर जला दिया एवं मेघमलार गाकर बिना मौसम का घुमड़ते काले-काले बादल पैदाकर रिमझिम बारिश पैदा कर दी ।

आजकल इन्हीं कम्पन्न की गति को पकड़ कर फिक्वेनशी बम में सैकड़ों मील दूर बैठे बिध्वंशक गतियाँ पैदाकर दी जाती है । चिकित्सा विज्ञान ने भी इस कम्पन्न गति के सूक्ष्मतम प्रयोग में सफलता पायी है । लेजर किरण द्वारा शरीर में कई शल्य चिकित्सा सम्भव हो पाया है ।

इसलिए हम साधक जैसी प्राण ऊर्जा शक्ति अपने में संकलित कर पायगें; वैसी ही हमारी कर्मफल की गाँठ खुलेगी एवं बनेगी ।

काम-क्रोध की प्राण ऊर्जा प्राण शक्ति के ईश्वरीय स्रोत से स्थूल शरीर के मूलाधार और स्वाधिष्ठान चक्र बिन्दु पर अपना चक्रवात कायम रखता है । जो मानसिक उद्वेग में अचेतन मन की गति से बाहर निकल कर आ जाता है । इन उद्वेगों को हम किसी भी सांसारिक परिस्थिति में रोक नहीं सकते । अगर प्रवाह रूकती है, तो अन्तर चेतना पर अपना दबाब बनाती है ।

इन मानसिक गतियों पर, हम बाद में पश्चाताप करते हैं । हमारी चिंता ही हमारे प्राणिक केन्द्रों पर जमा होकर हममें अनिद्रा पैदा करती है । वह तीर की भाँति नुकीली होकर हमें व्यग्र करती रहती है ।

इसलिए बचपन में शिशु अवस्था तक, पैदा लेने के बाद हम गहरी नीद्रा में बीस, बाइस घंटा सो पाते हैं । चूँकि मानसिक गति पर किसी भी बच्चे में चूभन नहीं होता और न अहंकार होता है ।

लेकिन ज्यों-ज्यों हमारी उम्र बढ़ती है एवं भौतिक शरीर, भाव शरीर का विकास हो परिपूर्णता पाते हैं, तो यही नींद आठ घंटे की हो जाती है । बुढ़ापा तक जाते-जाते तीन से चार घंटा सोना मुश्किल हो जाता है । चूँकि बुढ़ापा तक हम दैनिक, मासिक, वार्षिक के क्रमिक- चिंता, द्वेष, हिंसा, का बोझ अपने मन पर डाल लेते है ।

इसलिए बन्धुओं !

अपने सूक्ष्म जगत के अभियान में जाने से पहले, अपने स्थूल शरीर की गति में प्राणवायु की गति को नियंत्रित कर अपने चेतन-अचेतन मन को हिंसा, द्वेष, घृणा-अपराध, काम, क्रोध के भारीय शब्दबोध एवं अज्ञान बोध से दूर कर, ज्ञानबोध के ईश्वरीय मध्यमा एवं पश्यन्ति वाणी क्षेत्र में उर्ध्वगमन करना है ।

अपने दामपत्य जीवन के प्रेम, आस्था, विश्वास का संबल पकड़ स्वर्ग-नर्क के एहसास से ऊपर चले जाना है ! इस स्थूल जगत के स्थूल शरीर के प्राणवायु का नियंत्रण बिन्दु नाभिकुण्ड है । लेकिन यहीं प्राणवायु जब ताण्डेन तक समाधि की स्थिति में निःशब्द एवं शारीरिक शून्य बिन्दु के कम्पन्न पर चली जाती है, तो

सूक्ष्म शरीर की गति में हमारी आत्म-चेतना चली जाती है ।

इसलिए किसी भी योगीक एवं तांत्रिक विधि की साधना करने में कपालभाँति एवं लोम-विलोम का प्राणायाम सधना आवश्यक है ।

तंत्र-मंत्र हमारे ऋषियों एवं मनिषीयों द्वारा जो तैयार किया गया है, वह आज भी उसी तरह सत्य है । जैसे दुर्वासा के दिये आवाहन मंत्र से कुन्ती ने सूर्य, इन्द्र, धर्मराज को आमंत्रित कर लिया था ।

विश्वामित्र सूर्य से गायत्री मंत्र एवं वशिष्ट ने तांत्रिक विधि से तारा का प्रादुर्भाव कर लिया था । चौसठ योगनियों का आवाहन एवं युद्ध के विभीषिका के अस्त्र-शस्त्र का घातक आवाहन मंत्र की कम्पन्न गति आज भी उसी तरह प्रकृति में मौजूद है ।

लेकिन इन मंत्रों में जो प्राण ऊर्जा संचरण होगी, उसका माध्यम मेरे श्वाँस लेने का देवत्व विधि खो गया है । इसी श्वाँस के प्राणवायु एवं प्राण ऊर्जा का मध्यस्थ बिन्दु जब ताण्डेन के शून्य बिन्दु पर मिलती है, तो हम प्राण शक्ति के अनन्त ऊर्जा की ओर बढ़ चलते हैं ।

आज कम्प्यूटर एवं उपग्रह में वायुगति से कोई ऊर्जा का संचरण नहीं होता। केवल शक्ति ऊर्जा का संचरण, उसके पैनलबोर्ड में बने कम्पन्न बिन्दु के सर्किट में दौड़ जाती है ।

हम असंख्य बिन्दुओं में अपने स्वर कम्पन्न और प्रकाश कम्पन्न को विद्युत ऊर्जा द्वारा दूरस्थ बिन्दु पर फेंक भी पाते है एवं दूरस्थ बिन्दु पर ग्रहण भी कर लेते हैं । इसमें प्राण ऊर्जा का प्रवाह ईथर के प्रवाह गति में हो जाता है ।

हम काम-क्रोध, लोभ-मोह, से कभी ऊपर नहीं उठ सकते ! जबतक इस ताण्डेन बिन्दु तक जाकर श्वाँस की गति स्थिर बिन्दु तक, स्थिर नहीं कर लेगें । बच्चा नाभिकुण्ड से श्वाँस लेकर ताण्डेन द्वारा प्रकृति से जुड़ा हुआ मानसिक एवं शारीरिक विकास क्रम से जुड़ा होता है । वही विकास क्रम उसके संसार की वासना और अहंकार का कारण भी होता है ।

अगर हमारे श्वाँस की गति, नाभिकुण्ड पर नियंत्रित होकर ताण्डेन बिन्दु पर अपना कम्पन्न नियंत्रित करती है; तो श्वसन ही हमारे काम, क्रोध को सत्य, अहिंसा एवं प्रेम में बदल देता है ।

कुण्डलिनी साधक के श्वाँस गति में पृथ्वीभार, जलभार, अग्निभार एवं वायुभार क्रमिक साधना-क्रम में कम होने का कारण, श्वाँस की प्राणायाम मुद्रा में नाभिकुण्ड पर अपना नियंत्रण क्षेत्र बना लेना ही है । हमारे अध्यात्मिक एवं बौद्धिक विकास में हमारा तीन केन्द्र ज्यादा सक्रिय रहता है ।

(1) **बुद्धि केन्द्र**

(2) **हृदय केन्द्र**

(3) **नाभिकेन्द्र**

सांसारिक गति में जब हम बुद्धि से काम लेते हैं, तो यह केन्द्र बिल्कुल हमसे दूर रहता है एवं बुद्धि से लिया गया निर्णय हमेशा उचित और सत्य नहीं हो सकता है । मस्तिष्क तो किसी पेड़ के विकासक्रम में फूल और फल देने की स्थिति की तरह है ।

पेड़, पौधे भी पृथ्वी से ही जुड़े होते है, लेकिन प्राण शक्ति का प्रवाह, गहरे जाकर प्राण ऊर्जा से ही प्राण लेती है । पत्ता पर जल डालने से पेड़-पौधे का विकास क्रम नहीं है । उसमें तो जड़ के सींचन से, प्राण ऊर्जा अनन्त के प्राण प्रवाह से प्राप्त होती रहती है ।

उसी तरह नाभिकुण्ड पर नियंत्रित प्राणवायु के प्राणायाम मुद्रा में प्राण ऊर्जा के संचरण से ही, हम मानवीय बुद्धि विकासक्रम में ज्ञान-विज्ञान की श्रृंखला से जुड़ सकते हैं ।

हृदय भावना का केन्द्र है, जो स्त्रियों में काफी मजबूत पाया जाता है, एवं वे पुरुष की अपेक्षा प्रेम और प्रार्थना में ज्यादा ऊर्जावान हो पाती हैं । स्त्रियों में नैसर्गिक प्रेम की सम्भावना बहुत सबल हो सकती है, अगर नाभिकुण्ड पर प्राणवायु का नियंत्रित संबेदन ताण्डेन के नमनीयता बिन्दु पर सध जाय !

इस बिन्दु पर प्राणवायु द्वारा नियंत्रित प्राणवायु अंतरिक्ष के अनन्त ऊर्जा क्षेत्र से जुड़ जाती है एवं उनके द्वारा लिए गये निर्णय बिल्कुल प्राकृतिक सत्य से जुड़ा होता है ।

इन्हीं नमनीयता बिन्दु के साधना पर ब्रह्मचर्य सध सकता है एवं किसी भी ऋषि, महात्मा साधु, संत का आशीर्वाद या श्राप, प्राकृतिक रूप से फलिभूत हो सकता है ।

कोई भी हमारे अवतार या भगवान अगर मानव कोख में पैदा लेगें, तो प्राकृतिक रूप से मानव के किसी मानवीय सिद्धान्त से ऊपर कोई लीला नहीं कर सकते ! कथित भगवानों की जितनी लीला है, सब हमारे आपके जीवन स्वरूप से ऊपर नहीं जा सकती ! प्रकृति अपना कोई भी सूत्र या गति किसी भी परिस्थिति में हेर-फेर नहीं कर सकती है ।

आज कम्प्यूटर, लैपटॉप, थ्री जी वगैरह सब में यांत्रिक की इलेक्ट्रोनिक गति उनके पैनल बोर्ड के सर्किट के बनावट एवं ऊर्जा संचरण के नियंत्रण विधि पर निर्भर करती है । विश्व का नियंत्रण कक्ष मेरा छोटा सा लैपटॉप हो जाता है ।

उसी तरह तंत्र-मंत्र कुण्डलिनी साधना गति, सभी नाभिकुण्ड पर श्वसन नियंत्रण पर ही सम्भव हो सकता है । बगैर श्वाँसो के नियंत्रण गति पर पहुँचे कोई भी तांत्रिक, मांत्रिक विद्या का साधना बहुत ही खतरनाक है । इसलिए बगैर योग्य गुरु के सानिध्य एवं निर्देशन के ऐसा कोई भी तांत्रिक-मांत्रिक विधि नही अपनाना चाहिए ।

प्राण शक्ति के प्राण ऊर्जा क्षेत्र में अनन्तगामी होने का सहज एवं सरल माध्यम मेरा प्राणवायु ही है । काम ऊर्जा, प्राण ऊर्जा एवं प्राणवायु का 'ऊँ' के ध्यानस्थ समाधि से प्राप्त, ज्ञान ऊर्जा ही योग साधना द्वारा राष्ट्र एवं समाज निर्माण की ईकाई बिन्दु है एवं स्त्रैण शक्ति एवं शिवरूपा पुरुष शक्ति की उर्ध्वगमन का प्राकृतिक रास्ता है ।

गौतम महावीर या हिमालय पर तप करते कोई भी ऋषि-मुनि, सभी तपस्या के साधना-बिन्दु पर नमनियता के ताण्डेन बिन्दु पर ध्यान सधने पर ही ज्ञान ऊर्जा स्रोत से जुड़ पाये हैं ।

एकान्त एवं निर्जन में ध्यान सधने का मतलव ही है; श्वाँस भार से पृथ्वीतत्व, जलतत्व, अग्नितत्व, वायुतत्व के भार का कम हो जाना, काम, क्रोध, लोभ, मोह पर नियंत्रण पाकर दया, प्रेम, क्षमा, अहिंसा, करूणा, मैत्री, मुदिता की अवस्था प्राप्त कर लेना है !

प्राण ऊर्जा - एक रूपान्तरण प्रक्रिया

प्राण व ऊर्जा में ताकत है । यह एक रिमोट कन्ट्रोल की प्रक्रिया है । प्राण की साधना एक रिमोट कन्ट्रोल की साधना के समतुल्य है । एक रिमोट का बटन दबाकर विस्फोट किया जा सकता है, तो प्राण ऊर्जा के द्वारा भी हम शरीर में होने वाली बीमारियों में विस्फोट कर सकते हैं । जब हमारे हाथ में रिमोट होता है और हम जो चैनल देखना चाहें, देख सकते हैं । इसी तरह प्राण ऊर्जा के द्वारा हम शरीर के हर भाग का अवलोकन कर सकते हैं ।

कैसे हम प्राण ऊर्जा के द्वारा रूपान्तरण कर सकते हैं, इसको समझने के लिये सर्वप्रथम ऊर्जा को चढ़ाना आना चाहिए । उसी ऊर्जा के द्वारा हम रूपान्तरण प्रक्रिया से रोगी के रोग दूर करने में काम ले सकते हैं । रूपान्तरण प्रक्रिया के पहले रोगी को रोग का विश्लेषण, अवधि, कार्यक्षमता व बला-बल आदि कई बातों का पूर्वानुमान कर, फिर जिस प्राणतत्व की कमी होती है, उस पर ऊर्जा का कार्य सजगता के साथ किया जाता है ।

प्राण ऊर्जा ही व्यक्ति को रोग के साथ-साथ उसके जीवन को रूपान्तरित करने में मदद करती है । एक ड्रिप लगाकर, इंजेक्शन देकर व्यक्ति की ऊर्जा को रूपान्तरित करने में समय लग सकता है। किन्तु प्राण शक्ति में समय नहीं लगता है । यह तो तुरंत काम करती है और शरीर को लाभान्वित करती है । हम इसके महत्व को कम न समझें ! जरूरत है, रूपान्तरण प्रक्रिया का चैनल समझने की ।

आज इस प्राण ऊर्जा के रूपान्तरण की बहुत अधिक आवश्यकता है, जो हमारे सम्पूर्ण जीवन को ही बदल देती है । ऐसा अगर हो जाये तो संसार में कोई व्यक्ति रोगी ही नहीं रहेगा ।

प्राण ऊर्जा - अभय की ओर पहला कदम

जब किसी रोगी को जैसे ही रोग का पता चलता है, वह अपने रोग को मिटाने के लिये आतुर रहता है । वह जिसके सानिध्य में इलाज ले रहा है, वो उसे अभय कर दें, तो उसके सुख की सीमा का आंकलन नहीं किया जा सकता । प्राण ऊर्जा उसी का एक रूप है । जैसे हमें एक वृक्ष अपनी छाया देता है; उसी तरह प्राण

ऊर्जा के प्राण चिकित्सक के पास जाते ही व्यक्ति निर्भय हो जाता है ।

मन की शान्ति के साथ-साथ प्राण ऊर्जा धीरे-धीरे व्यक्ति को इतना अभय बना देती है, कि उसके शरीर में या तो रोग शीघ्र नष्ट हो जाते हैं, या फिर उसे रोगों से लड़ने की प्रतिरोधक क्षमता का स्वयं ही विकास हो जाता है । प्राण ऊर्जा में शरीर को प्राणवन्त बनाने के लिये व्यक्ति को अभय मिलना जरूरी है ।

यह बात सत्य भी है, कि जिसकी (विल पॉवर) आत्मशक्ति मजबूत होती है, वो बड़े से बड़े रोग से भी लड़कर जीत जाता है । क्योंकि उसका प्राण तत्व मजबूत होता है ।

आज स्थितियाँ डराने की, भय दिखाकर कमाने की व आते ही रोगी के मनोबल को तोड़ने की प्रक्रियाऐं कार्य कर रही है । उसका दुष्प्रभाव यह होता है, कि एक तो वह पहले से ही रोग से लड़ रहा है, दूसरा धन से बर्बाद हो रहा है, तीसरा बिगड़ी मानसिकता उसको अन्दर से अन्दर ही खाये जा रही है । उसे जरूरत है सम्बल की !

अतः आज प्राण ऊर्जा के द्वारा इसकी छत्रछाया में रहकर, चिकित्सा लेना व अपने आपको प्राणवन्त बनाना अत्यन्त जरूरी है। जब भी कोई रोगी आये तो उसे पहले अभय देना, एक सफल प्राण चिकित्सक की प्रथम प्राथमिकता होनी चाहिये।

प्राण ऊर्जा – संचय एवं उपयोग

यह एक ऐसी ऊर्जा है, जिसे प्रतिदिन रिचार्ज भी करना होता है और यह समय पर खर्च करने के काम भी आती है । ऊर्जा को चढ़ाना, अंगों पर व चक्रों पर इकट्ठी करके रखना व सहस्त्रार पर ऊर्जा को स्थिर रखना, यह सब बुद्धिमता के कार्य हैं । ऊर्जा मात्र बोलने, ध्यान करने, भूखे रहने, तप करने, त्याग करने इन सबसे इकट्ठी तो हो सकती है !

लेकिन उसका प्राण ऊर्जा में तारतम्य बिठाना यह गुरू विद्या है। एक-एक अंग से, नाभियों की शुद्धि के जाल से होते हुए इसे इकट्ठा करना होता है और प्राण का कार्य करते समय इसे नियमबद्धता से उपयोग करना होता है । इसमें अनुपात, उपयोग का संचय दोनों को एक निश्चित मापदण्ड में रखना होता है । क्योंकि ऊर्जा की अधिकता व न्यूनता दोनों ही खतरनाक होती है ।

ऊर्जा जमा करने हेतु, अपने सम्पूर्ण जीवन की कार्य प्रणाली को बहुत व्यवस्थित करना होता है । अपना खानपान, रहन-सहन, शुद्ध आचार-विचार, आहर-विहार व समता इन सबको जीवन में स्थान देना होता है । तब कहीं जाकर यम, नियम, आसन का पालन करते हुये, ऊर्जा शरीर में ठहरना शुरू होता है । उपयोग करने की प्रक्रिया बहुत जटिल है ।

क्योंकि रोगी की विकृत ऊर्जा यदि हमारी ऊर्जा से मिल गई, तो हम स्वयं रोगग्रस्त हो जायेंगे । अतः देश, कालभाव, रोग आदि का अध्ययन करते हुये रोगी के बला-बल को समझते हुये ऊर्जा उपयोग करने का अभ्यास आना चाहिये । कितनी ऊर्जा, कितने समय, कितने माह, कितने वर्ष तक देनी है, उसका भी अवलोकन एक प्राण चिकित्सक को करना होता है । रोगी को 10 मिनिट तक प्राण ऊर्जा पर कार्य करने से उसकी वस्तु स्थिति का सही आकलन होता है । यह जल्दबाजी की प्रक्रिया है ही नहीं !

प्राण ऊर्जा - भूत, वर्तमान एवं भविष्य का प्रतिबिम्ब

प्राण ऊर्जा पर कार्य करते हुये जब इनके साधक, इसे साधना का रूप देकर प्राण तत्व को मजबूत बना लेते हैं, तो उन्हें अपने प्राणों को इकट्ठा करना व उसका दर्शन करना सहज हो जाता है । इसका परिणाम यह होता है, कि रोगी के भूत, वर्तमान व भविष्य की जानकारी एक प्राण चिकित्सक के दर्शनशास्त्र की मजबूती, रोगी के रोग का पूरा चिट्ठा खोल देती है ।

आज रोगी को किसी को दिखाने के लिये, सामान्यतः अपना रोग अपने मुँह से कहते हैं और सामने वाले उस बात को सुनकर या तो सलाह या औषधि या टैस्टिंग रिपोर्ट कराकर फिर यह निर्णय कर पाते हैं, कि क्या इलाज दें ?

किन्तु प्राण ऊर्जा के साधक को अपनी दर्शन चिकित्सा पर इतना विश्वास होता है, कि वह रोगी को देखने मात्र से यह अनुमान लगा लेते हैं, कि इसका रोग किस श्रेणी का है, व यह रोग ठीक ही होगा या नहीं और ठीक होगा तो कब तक ? एक सफल प्राण चिकित्सक भविष्य के रोगों से भी रोगी को आगाह कर देते हैं ।

हमारे कर्मों का लेखा-जोखा एक सफल प्राण चिकित्सक के नजरों के सामने होता है । उनको भी इसकी छंटाई करनी होती है, कि कैसे रोग का निस्तारण किस

माध्यम के द्वारा किया जाय । वे हमारे शरीर की आंतरिक व बाह्य स्थिति से पूर्ण रूप से परिचित होते हैं । प्राण ऊर्जा में यदि उन्हें दर्शनशास्त्र से यह जानकारी होती है, कि यह रोगी औषधि से ठीक नहीं होगा, तो उसे मार्गदर्शन भी बराबर देना होगा, तो वे वही प्रक्रिया अपनाते जायेंगे ।

आज के इस युग में प्राण ऊर्जा के द्वारा रोगों की मुक्ति, एक महान जनसेवा का कार्य है । प्राणाचार्य ही ये बता पाते हैं कि सुख चारो तरफ से आ रहा है, तो समझो दुख आने ही वाला है ।

प्राण ऊर्जा - धातुओं की सबलता का द्योतक

जैसा कि विदित है सप्त धातु-रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्राणु यह धातुएँ हमारे जीवन को पोषण करती हैं और हमारा जीवन इन धातुओं पर ही टिका है । जब ये धातुऐं विकृत हो जाती हैं, तो रोग आ घेरते हैं । फिर ओज और तेज की बात करना ही व्यर्थ है ।

प्राण ऊर्जा धातुओं को बलिष्ट व मजबूती प्रदान करती है । प्राण ऊर्जा के साधक बताते हैं कि हमारी कौन सी धातु कमजोर है, जिससे धातुऐं मजबूत होती हैं उससे रोग दूर भागता है। हम जब पहली धातु को ही नहीं संभाल सकेंगे, तो हमारा प्राणतत्व दिन-प्रतिदिन क्षीण होता चला जायेगा। कैसे हम इन धातुओं को सम्बल प्रदान करें ?

उसकी प्रक्रिया मात्र प्राण ऊर्जा के द्वारा ही सम्भव है। एक सफल प्राण चिकित्सक शरीर में जहां-जहां धातुएँ क्षीण होती जा रही है, उन्हें मजबूत करने के लिये औषधि, मार्गदर्शन के द्वारा अंगों पर कार्य करते रहते हैं। उनका उद्देश्य प्राण को सजाना व संवारना होता है।

क्योंकि हम जब-जब रोते हैं, तो प्राण दुःखी होता है और वह अन्दर ही अन्दर सिमटता चला जाता है । जब-जब हम प्रसन्न होते हैं, तो वह आत्मविभोर, उल्लासी, आनन्दमय व हँसमुख होता चला जाता है ।

यह सीधी गणित है, कि प्राण जब भी मजबूती के साथ खुश होगा, तो हमारे शरीर के विकारों को बाहर फेंकेगा, अन्दर रहने नहीं देगा। औषधि के साथ-साथ रोगी को प्राण ऊर्जा के द्वारा जो आवश्यक निर्देश मिले, उनका पालन करना चाहिये

। और काम, क्रोध, मोह, लोभ से दूर रहते हुये, मन को शान्त रखने का अभ्यास करना चाहिये। प्राण चिकित्सक को पंचतत्वों को सम में लाने के साथ-साथ धातुओं पर भी पैनी नजर रखनी होती है।

यह एक नाप की प्रक्रिया है, कि कहां घटत और कहां बढ़त हो रही है। जैसे जमीन का काम करने वाले व्यक्ति का पृथ्वी तत्व बढ़ जायेगा। व्यक्ति की शक्ल सूरत से ही एक सफल प्राण चिकित्सक उसकी धातुओं की पूर्व की व वर्तमान स्थिति का पता लगाकर चिकित्सा का मार्ग तय करते हैं। नियमतः प्राण ज्वलनशील है, अग्नि दीप्तकर है और अग्निमांध सारे रोगों की जड़ है । अतः प्राण का ह्रास शरीर शास्त्र की दृष्टि से रोगों का मूल कारण है। अतः इसे सबल बनाकर धातुओं का, दोषों का, तत्वों का संरक्षण करना चाहिए। प्राणः इदम, सर्वम् ।

प्राण ऊर्जा - प्राणोपचार और समुद्रघात

नाड़ी देखना, औषधि देना, शिथलिकरण करना, पैर उतारना, चढ़ाना, थेपन करना, ताड़न करना आदि हम रोज प्राणोपचार में देखते आये हैं और जब भी कोई नया रोगी आता है, तो उसे यही समझ में आता है कि यहां प्राणोपचार इसी प्रकार होता है । किन्तु इससे ऊपर प्राणोपचार एक अति उच्च्य कोटि की प्रक्रिया है। जिसको यदि बृहद् रूप से समझने लगें, तो इतना बिस्तार है, कि जिसको समझना आसान नहीं है ।

कोई रोग पुराना होता है, देरी से मिटता है, कोई रोग तुरन्त होता है, तुरन्त मिटता है। कोई रोग जल्दी तो होता है, लेकिन देरी से मिटता है, आदि अनेक तरह के रोग हैं। प्राणोपचार व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक तीनों रूपों को समग्र विकास करने का सशक्त माध्यम है।

औषधि से ज्यादा प्राणोपचार के माध्यम से मिली बोधी, रोग के साथ-साथ जीवन दर्शन भी करा देती है। आज हर व्यक्ति केवल रोग की बात करता है । रोग होने का कारण और वह रोग दुबारा न हो उसके प्रति सजग नहीं है। बस एक बार ठीक होने का भाव, बार-बार रोग को जन्म दे देता है।

प्राणोपचार एक ऐसी प्रक्रिया है, जो रोगी द्वारा पूर्ण समर्पण करते हुये और पूर्ण श्रद्धा के साथ प्राण चिकित्सक के पास आकर कराता है, तो उसके रोग का

ही नहीं उसके समग्र जीवन का विकास हो जाता है। प्राण ऊर्जा के साधक रोगी की पारिवारिक स्थिति, रोगी के बलाबल, उसके स्वभाव, उनकी आर्थिक स्थिति, उनकी वास्तविक जीवनशैली आदि अनेक बातों को ध्यान में रखते हुये, उन्हें क्रमबार यह तय करना होता है कि कैसे प्राण ऊर्जा के कार्य को और उससे होने वाले लाभों को रोगी तक पहुंचाये।

क्योंकि आज हमारी कार्यशैली इतनी बदल गई है, कि कोई सा रोग, किस वक्त हमें घेर लेगा, इसका हमें भी पता नहीं। पूर्व में लोग अपने प्राण तत्व के बारे में बहुत सजग रहा करते थे ।

जैसे तप, त्याग आदि के द्वारा वो अपने शरीर में होने वाले विकारों की शुद्धि, इनके माध्यम से करते थे। हर चीज की अति से वे बचते थे। चाहे खानपान हो, चाहे आहार-विहार हो, चाहे मौज-शौक हो। उनकी जीवन शैली में एक निश्चित कार्यक्रमता रहती थी और वे स्वयं ही प्राण तत्व को मजबूत करने का प्रयास नहीं करते थे, वरन् अपने सम्पूर्ण परिवार को भी इसके लाभों से परिचित कराते थे। एक संस्कारमय बीज जब परिवार में पड़ जाता है और सबके प्राण तत्व मजबूत रहते हैं, तो प्राण ऊर्जा की मदद बहुत कम लेनी पड़ती है।

आज के युग में सब विपरित हो रहा है। आज रोग के साथ-साथ बाहरी रोग भी हमें घेरे जा रही है। हमारी उनसे लड़ने की क्षमता भी क्षीण हो चुकी है। क्योंकि हमें कोई मार्गदर्शक ही नहीं मिल पाता है और फिर हम जगह-जगह अपने दुःखों को दूर करने के प्रयास में - डॉक्टर, वैद्य, ज्योतिषि, तांत्रिक, पूजा-पाठ आदि अनेक प्रयासों से प्रयत्न करते रहते हैं।

प्राण ऊर्जा एक ऐसी विद्या है, जो हमारे सम्पूर्ण शरीर को रोगों का समुद्रघात कर देती है, सारी बाधाओं से मुक्त कर देती है। हमारी सामर्थ इतनी मजबूत बना देती है, कि हमें बाहरी सहारों की मदद नहीं लेनी पड़ती।

हम इतने ज्ञानवान और परिपक्व हो जाते हैं, कि हर मंजिल आसान नजर आती है। एक सफल प्राण चिकित्सक तब तक प्रयत्न करते रहते हैं, जब तक कि उनकी शरण में आया हुआ रोगी, अपनी मंजिल तक न पहुंच जाये। वो उसे यदि ठीक नहीं कर पा रहे हैं, तो पुर्नविचार करते रहते हैं और अपने कार्य में डटे रहते

हैं।

आज एक अच्छे वातावरण को पैदा करने की जरूरत है । जिससे कि रोगी को या दुखियारे को अपने रोग की पीड़ा महसूस न हो और वह अपने आपको एक सफल प्राण चिकित्सक के आगे समर्पित कर दे। प्राणोपचार में जब भी प्राणोपचार की प्रक्रिया अपनाई जाती है, तो कुछ दिन बाद व्यक्ति वापिस पहले वाले रोग के स्थान पर ही आ जाता है। तब, जब प्राणोपचार किया जाये, उसी वक्त औषधि के द्वारा समुद्रघात की प्रक्रिया भी अपनाई जाती है। जिससे कि रोग दुबारा हावी न हो सके।

जैसे उदाहरण के लिये एक व्यक्ति पेट दिखाने के लिय आया, प्राणोपचार किया, उसे वायु बहुत बन रही है । तो उसके उपरान्त उसे उसी वक्त कुछ औषधि देकर वायु का निस्तारण उस स्थान से हटाया जाये, तब कहीं जाकर वह रोग कुछ दिनों बाद नहीं होगा। क्योंकि शरीर में एक रोग एक स्थान पर होने के उपरान्त वापिस वहीं अपना स्थान बना लेता है।

एक प्राण चिकित्सक शरीर के हर स्थान पर प्राण ऊर्जा का कार्य करते हुये, समुद्रघात की प्रक्रिया को अपनाते हैं। तब कहीं जाकर रोगी स्वस्थ मन, स्वस्थ चित और प्रमोद भावना में आ जाता है। आज ऐसे ही प्राण चिकित्सकों की जरूरत है, जो हमारे विस्तार किये हुये रोगों पर समुद्रघात की प्रक्रिया अपनाते हुए, उसका सम्पूर्ण नाश कर दे। यह सब कार्य तब संभव है, जब रोगी भी शांत हो और चिकित्सक भी सरल हों। तब मंगल भावना का रूप प्रदर्शित होगा और एक प्राण चिकित्सक दुसरे को ठीक करके अत्यधिक प्रफुल्लित होंगे। मरीज तो होगा ही! जरूरत है एक ऐसा वातावरण बनाने की जिससे समुद्रघात की प्रक्रिया का ज्ञान विस्तार ले सकें।

मंगल हो !

प्राण ऊर्जा - मंगल, मैत्री और मोक्ष

मंगल! यानि पाप का क्षय पुण्य का उदय। प्राण ऊर्जा करती क्या है ? दुःखों का रोगों का अंत करना! आज आरोग्य भारती जयपुर में बाहर भी यही लिखा है, यानि मंगल हो ! प्राणीमात्र की मंगल कामना प्राण ऊर्जा की प्रथम सीढ़ी है। हर व्यक्ति का दुःख अलग-अलग

सीमाओं में बंटा हुआ है, कोई रोग से दुःखी, कोई सुख से, कोई परिवार से, कोई समाज से, कोई देश से आदि-आदि। प्राण ऊर्जा सभी रोगों के उपचार में सहायक होती है,

क्यों ?

यह हर तरह के इलाज जानती है। पुण्य प्राप्त करना, पुण्य बांधना यह हम सब जानते हैं। लेकिन कर्मों की निर्जरा करने का रास्ता प्राण ऊर्जा के साधक ही बता पाते हैं एवं हमारे कर्मों को इतना मजबूत बना देते हैं, कि दुष्कर्म हमारे पास ही नहीं फटकते। खराब भाव दिमाग में ही नहीं आयेगें। आज इसको बताने वाले बहुत कम लोग हैं, जो हमारे पाप कर्म और पुण्य कर्म की जानकारी हमें दे सकें।

प्राण ऊर्जा में गहन मंगल जुड़ा हुआ है, जो सारी बाधाओं से मुक्त कर परम लक्ष्य की ओर पहुंचा देता है। प्राण ऊर्जा का कार्य मैत्री से जुड़ा हुआ है। मैत्री यानि चिकित्सक व रोगी का संबंध परिपक्व होना चाहिये। क्यों आज एक सफल प्राणोपचारक के पास व्यक्ति को जाने की इच्छा करती है ? उनके दर्शन मात्र से वह ठीक हो जाता है। वह उनको दिखाने के लिये घंटो इंतज़ार भी करता है। वह थकता है, रूकता है, आगे बढ़ता है, फिर उनके पास पहुंचकर आनंदित होता है, जैसे मानो गढ़ जीत लिया हो !

जब इतना उमंग और उल्लास लेकर कोई व्यक्ति जब प्राणाचार्य के पास पहुंचता है, तो उसकी आंतरिक स्थिति प्राणाचार्य को प्रतिबिम्बित हो जाती है और उस वक्त उनका दर्शनशास्त्र तुरन्त कार्य करता है। वे रोगी के सुख और दुःख का आंकलन तुरंत आत्म प्रभाव से कर लेते हैं। उस वक्त रोगी का मैत्रीभाव देखकर प्राण चिकित्सक भी एक कदम आगे बढ़ाते हैं और उनके दुःख में सहज ही शामिल हो जाते हैं।

प्राण चिकित्सक के पास जब रोगी दिखाने आये, तो वे उसका आंकलन कर, तुरंत दुःख की बात नहीं करते, तुरंत ही उसकी कमी को सहज उजागर नहीं करते। वे देखते हैं, कि कैसा रोगी उनके सामने बैठा है। उससे मैत्री बनायेंगे, पहले सारी बात उसकी सुनेंगे, आतुर नहीं होंगे, फिर रास्ता निकालेंगे।

" क्या है वक्त ए पीरी दोस्तो की बेरूखी का क्या गिला,
बचकर चलते हैं, सभी गिरती हुई दीवार से"

प्राणचिकित्सक गिरते हुए को उठाते हैं । यह क्रम एक बार, दो बार, हो

सकता है कई बार करना पड़े, जब तक कि उनका व रोगी का मैत्रीभाव मजबूत न हो जाये । जिस दिन यह मैत्रीभाव मजबूत होगा, उसी दिन से रोगी प्राणाचार्य की सलाह, उनके प्रति आदर वो उनको समर्पित हो जायेगा। प्राण चिकित्सक आते ही रोगी के अवगुणों की बात नहीं करते। पहले उसके गुणों का गुणाणुवाद करते हैं, तब उसकी आत्मीयता उनसे जुड़ती है। यहीं से एक प्राण चिकित्सक का मार्ग चिकित्सा का मार्ग प्रशस्त हो जाता है।

जब एक व्यक्ति मंगल के साथ-साथ मैत्री रूप में भी बंध जाता है, तो प्राण ऊर्जा का लक्ष्य उसे मोक्ष प्राप्ति यानि लक्ष्य प्राप्ति तक पहुंच जाना होता है। जीवन में हर व्यक्ति अपने-अपने तरीके से जीवन जी रहा है, बढ़िया खा रहा है, अच्छी जगह रह रहा है, आर्थिक स्थिति भी सम्पन्न है, किसी को शायद कोई रोग भी नहीं है।

हर तरफ से खुशहाली का वातावरण है, तो क्या यही जीवन है ? जीवन का लक्ष्य इन सबसे भिन्न है। क्या हम स्वस्थ हैं, तो दूसरे को स्वस्थ नहीं कर सकते ? प्राण चिकित्सक हमें जीवन जीने का रास्ता गृहस्थ रहते हुये भी आपसी मेलजोल बनाकर, सुखपूर्वक जीवन जीने का मार्ग प्रशस्त करते हैं। प्राण ऊर्जा का ब्रह्मास्त्र एक सफल प्राण चिकित्सक के पास होता है, जो व्यक्ति के गर्भ कल्याणक से लेकर मोक्ष कल्याणक तक का राजमार्ग दिखा देते हैं।

जीवन और मृत्यु के बीच का रास्ता सबको तय करना होता है। एक प्राणाचार्य उसको इतना सरल बना देते हैं, जिससे रोगी का, निरोगी का चिंतन, मनन इतना साफ-सुथरा हो जाता है, कि यदि वह रोगी है, तो ठीक होकर दूसरो का उपकार करेगा और निरोगी है, तो सबकी मंगल, मैत्री और मोक्ष के रास्ते को प्राणोपचार के माध्यम से सफल जीवन बनाने में मदद करेगा।

कई-कई बार प्राणाचार्य को जटिल समस्याओं का भी सामना करना पड़ता है और रोगी उनकी बात भी नहीं मानता है। घर का वातावरण भी अनुकूल नहीं होता है। इन सब विद्याओं के बीच में वह कैसे कार्य करें ! तब कुछ रोग ऐसे होते हैं, जिनको उन्हें मना करना होता है । कुछ के लिये समय चाहिये, कुछ के लिये रोगी के मैत्रीभाव बनने तक का इन्तजार करना चाहिये ।

कई बार ऐसी स्थिति भी हो जाती है, कि रोगी का रोग समझ में तो आ जाता है! लेकिन उसकी प्राणोपचार क्रिया करते वक्त दिल नहीं मानता और फिर रूकना पड़ता है। उस समय रोगी बहुत आतुर रहता है और वह यह समझता है, कि मेरा इलाज नहीं हो पा रहा है, मेरा समय व्यर्थ जा रहा है, वो आंतरिक स्थिति का आंकलन नहीं कर पाता । एक सफल प्राणाचार्य को वेग, आवेग से बचते हुये संवेग तक का मार्ग तय करना पड़ता है।

कैसी भी स्थिति क्यों न हो एक प्राणाचार्य को अपने कार्य की जल्दी नहीं होनी चाहिये। न उन्हें काम, क्रोध, मोह, लोभ सताना चाहिये। उन्हें हर क्षण समता पर रहना होता है। उनके कार्य करते समय किसी भी प्रकार की बाधा आने पर आशय है ! उनकी प्राण ऊर्जा का विघटन।

एक सफल प्राणाचार्य जब इस कार्यक्षेत्र में उतरते हैं, तो एक निश्चित अनुपात में अपनी ऊर्जा को लेकर उतरते हैं। उसमें जब भी कोई बार-बार छेड़छाड़ करता है, तो उनकी ऊर्जा स्वयंमेव में विस्फोट कर देती है और हो सकता है कि वह खुद रोगी हो जाये। यह सत्य है, कि मंगल, मैत्री ही मोक्ष की सीढ़ी जब बन पायेगी! तब रोगी प्राण चिकित्सक के नियम, उपनियम को अंगीकार करेगा और एक प्राण चिकित्सक रोगी की भावना को मूर्त रूप से समझ पायेंगे।

आज प्राणाचार्य का विघटन कई कारणों से हो रहा है और हम एक सफल प्राणाचार्य के इंतजार में बैठे हैं । उसके लिये कितना तपना होगा ! हममें से कोई भी ऐसे साधक हैं ? जो किंचित मात्र भी अपने जीवन को एक सफल प्राणाचार्य के नियमों में बांधकर रख सकें !

आने वाले रोगी का यह कर्त्तव्य है कि जब एक प्राणाचार्य कार्य कर रहे हों, तो उस जगह के वातावरण की गरिमा को बनाकर रखें। वहाँ कैसा कार्य हो रहा है, उस पर शान्तभाव से बैठकर देखते रहें। जल्दीबाजी न करें, क्योंकि उन्हें यह पता नहीं होता है, कि एक प्राणाचार्य की ऊर्जा इस वक्त कहां चल रही है। उसे मात्र अपने नम्बर की जल्दी होती है।

देखा जाये तो एक सफल प्राण चिकित्सक कुछ ही रोगियों का प्रतिदिन इलाज कर सकते हैं। भीड़ उनकी शक्ति को भी खींचता है और आने वाले रोगी को भी वह पूर्ण सन्तुष्ट नहीं कर पाते हैं। उन्हें स्वयं की ग्लानि होती है। रोग तो

दुनिया से कम नहीं होंगे, लेकिन सफल प्राणाचार्य दिन प्रतिदिन कम होते जा रहे हैं। क्योंकि वैसी कार्यशैली, वैसा जीवन हर कोई अपनाने को तैयार ही नहीं है।

प्राणाचार्य की प्रातःकाल से लेकर रात्रि शयन तक एक निश्चित तपधारा शरीर में अनवरत बहती रहती है, तब कहीं जाकर वो प्राण ऊर्जा के साधक बन पाते हैं। एक गंभीर प्रश्न है, कि प्राणाचार्य की ऊर्जा यदि निश्चित अनुपात के पश्चात् और काम में ली जायेगी, तो अनन्त लोगों का भला कैसे होगा ?

आज आवश्यकता है, कि प्राण ऊर्जा के माध्यम से इलाज कराने वाला रोगी एक सफल प्राणाचार्य के दिशा-निर्देशों का सही रूप से पालन करे। जिससे कि वो बार-बार आकर उनके कार्य में व्यवधान न डाले। अर्थात रोगी की चर्या इतनी मजबूत हो जाये, कि उसके सामने बहुत कम प्रश्न रह जायें या प्रश्न ही न रहें। प्रत्येक ८ दिन व 15 दिन में दिखाना ठीक नहीं है।

अन्त में रोगी भी कुछ बातों का प्राणाचार्य के पास जाते वक्त ध्यान रखें! प्रथम मात्र अभिवादन करे, पैर न छूये! बहुत अधिक सज-ध ज कर न आये! अपने साथ अन्य रोगी को न लाये! अपना पद न बताये! किसी की सिफारिश न लाये! इत्र न लगाये! उदाहरणार्थ प्राणाचार्य रोगी देख रहे हैं, बीच में कोई आये, "बोले आप इन्हें जल्दी से देख लीजिए, मुझे जाना है," कैसे संभव है! नियम न तोड़ें! मोबाईल फोन बंद रखें! सच्चाई के साथ अपनी स्थिति बतायें आदि!

यही कर्तव्य प्राणाचार्य के साथ काम करने वालों का भी है, वो कोई भी रोगी का पद, प्रभाव व उसकी स्थिति के बारे में न बतायें । दिन भर में अपनी ऊर्जा दुसरे दिन के लिए बचायें । आते ही पैर न छुऐं । सिर्फ सबका उद्देश्य प्राणाचार्य की प्राण ऊर्जा के द्वारा लाभान्वित होने का रहे। आज प्राणाचार्य के साधक अपने वातावरण की गरिमा अगर बनाकर रखते हैं, तो निश्चित रूप से शायद हो सकता है, कि वो रोगी के रोग को ठीक न कर पायें, उनका आशीष न ले पायें। कम से कम उनकी दुआशीष तो न लें !

जहां प्राणोपचार कक्ष होता है, वो इतना पवित्र होना चाहिये, कि वहां कदम रखते ही व्यक्ति कितना ही उग्र क्यों न हो, शांत हो जाये। व्यवस्था का वातावरण इतना

सुखद होना चाहिये, कि आने वाला अपने आपको सम्मानित महसूस करे और वो शायद कुछ लेकर जा पावे । या ना जा पावे, लेकिन एक अच्छी सोच तो वो उस स्थान से लेकर जायें! प्राण ऊर्जा द्वारा प्राणोपचार गहन चिकित्सा है, जिसे समझना व जीवन में उतारना सहज नहीं है। अभ्यास निरन्तर करते रहें, तब प्राण सधेगा और यह प्रक्रिया निरंतर चलती रहेगी।

मंगल हो !

सहयोग से -

आरोग्य भारती

जयपुर के वरिष्ठ प्राणोपचारक

श्रीयुत संदीप बुराड

द्वारा लेखित एवं उद्धृत

ऐसी हो साधना

स्वस्थ तन का निर्विकल्प मन ही पा सकता है, निर्दोष चेतना ।
प्रमुदित मन के कण ही कर सकते है, आधि व्याधियों का शमन ।।
उसी देह में होता है देवालय, रहता है जहाँ परमात्मा जीवंत ।
वहीं से प्राप्त होती है ऊर्जा और हो सकते हैं, हम प्राणवंत ।।
आकर्षण, विकर्षण शक्ति युक्त केन्द्र, प्रोटोन-इलेक्ट्रान का ज्ञान ।
करता है शरीर को शक्ति से युक्त, पुद्गल स्कन्धों का जो ध्यान ।।
उन्हीं वर्गणाओं से होता है प्रस्फुटन ऊर्जा का ।
पाता है स्थूल से तेजस और फिर शरीर कार्माण ।।
नाभि से नभ तक लेखन ॐ के साथ ।
अंग एक-एक निखरना होता है, श्वाँस के साथ ।।
झलक जाती है, जब दर्पण में आत्मा ।
हो जाती है शक्ति उत्पन्न, बनने को परमात्मा ।।

प्रस्तुति - **अनिल ठोलिया**

वैय्यावृव्य समिति - आरोग्य भारती, जयपुर

प्राण चिकित्सा

प्राणशक्ति व प्राणऊर्जा पर पुस्तक में कई जगह वृहत चर्चा की गई है।

प्राण चिकित्सा में प्राण ऊर्जा का प्रवाह उर्ध्वगति का होना आवश्यक है। प्राण शक्ति जिसका केन्द्र मनोमय शरीर में है। उसके प्रवाह के लिये ध्यानस्थ होने से हो या त्राटक से हो, कुण्डलिनी जागरण के क्रियारूप को जगाकर, प्राणऊर्जा का प्रवाह उर्ध्वगति का होने से ही सफलतम चिकित्सक द्वारा रोगियों को शत-प्रतिशत प्राण दान दिया जा सकता है।

प्राणऊर्जा का संबंध ब्रह्माण्डीय ऊर्जा से है।

हमारी दैनिक क्रियाकलाप के लिए ऊर्जा आत्मशक्ति से चित्तशक्ति पर आकर मनःशक्ति के रूप में हमारे कर्मबंधन के रूप में हमें अपना फला-फल दे रही है। लेकिन ऊर्जा विभिन्न कारणों से शरीर के ग्रंथि (ग्लैन्डस) को बाधित रूप में मिलती है और उस ऊर्जा के प्रवाह में बाधा पड़ने से मनुष्य के नस नाड़ियों द्वारा प्रवाहित रूधिर में विभिन्न रोग से मनुष्य ग्रसित हो जाता है।

लेकिन जब प्राणोपचार साधक अपनी ऊर्जा को साधना द्वारा संकलित करते हैं, तो प्राणऊर्जा का प्रवाह जो मनोमय शरीर में उपस्थित प्राणचक्र करती है, उसका प्रवाह रिफलेक्शन (उल्टा प्रवाह) के सिद्धान्त की तरह मनःशक्ति से चित्त शक्ति होते हुए आत्मशक्ति में बदल जाती है। जो प्राणोपचारक साधक के साधना के अनुरूप आज्ञाचक्र एवं हाथ के पोड़ो से निकलने लगती है

प्राणोप्रचारक रोगी के शरीर पर हाथ फेरकर रोगी के प्राणशक्ति की ऊर्जा कहां बाधित हो रही है। वहाँ पड़े गाँठों पर हाथ के स्पंदन से पता कर लेते हैं एवं आज्ञाचक्र सक्रिय होने से रोगी के ओरामंडल में कहाँ व्यक्तिरेक है, वो भी अनुभव कर लेते हैं।

फिर अपने संकलित प्राणऊर्जा का प्रवाह उस गाँठ की जगह केन्द्रित कर अपने संकल्प शक्ति को दृढ़ कर कृष्ण के चक्र की तरह फेंकते हैं। (चित्र संख्या-32, 33, 36) में इसे दिखलाया गया है।

हिप्नोटिज्म के चैप्टर में चर्चा किया गया है, कि विष्णु के हाथ में चक्र एवं कृष्ण के हाथ में चक्र, उनके प्राणचक्र के प्रवाह का स्रोत है।

कृष्ण तो मानव जन्म लेकर आज्ञाचक्र तक के भेदन से प्राणशक्ति का

प्रयोगकर, अपनी तर्जनी अंगुली पर चक्रवात पैदाकर, किसी भी शत्रु पर फेंककर अगले के प्राणशक्ति को बिल्कुल नष्ट कर देने की क्षमता रखते थे। वे तो तमस्, रजस् एवं सतज् विशुद्धतम रूप के प्रतीक हैं।

प्रायः चक्र के धारण के समय मुश्टिका बन्द की मुद्रा में केवल तर्जनी अंगुली से चक्र के प्रवाह को दिखलाया गया है।

लेकिन विष्णु के हाथ में जो प्रतीकात्मक चक्र दिखलाया गया है। वह हर मानव के सैरेवब्रेटा कौमिटि के भूरे रंग के सेरेब्रल तरल पदार्थ में तैरते मटर के दाने के बराबर अन्डाकार एक हजार आठ फेरा दिये, विष्णु के क्षिरसागर में सर्प सैया पर सोये हर मनुष्य में प्राणशक्ति के चक्रवात को पैदा करने का प्रतीक है। वह स्थिति ब्रह्मरंध्र में दिखलाई गई है। इसलिए साधक जब आज्ञाचक्र के ऊपर चले जाते हैं तो ब्रह्माण्ड के किसी भी कम्पन्न में आये व्यवधान को, अपने बह्मरंध्र पर अवस्थित प्राणऊर्जा के चक्रवात से नष्ट कर देते हैं।

साधना क्षेत्र में इसी प्राणऊर्जा को नियंत्रित ढंग से रिफलेक्शन सिद्धान्त के अनुरूप अपने उँगलियों को विभिन्न मुद्रा में जोड़कर इस ऊर्जा के प्रवाह को शरीर के षटचक्र पर केन्द्रीत करते हैं। योग में हाथ की उंगलियों को विभिन्न पोड़ों से जोड़कर विभिन्न तरह के अध्यात्मिक शक्ति को प्राप्त करने के सिद्धान्त बतलाये गये हैं - जो (पृष्ठ संख्या -166 में एवं 1 से 11 चित्रों) में है।

इन मुद्राओं का मुख्य चर्चा पीछे चित्र के साथ किया गया है।

गौतम बुद्ध को भूमि स्पर्श मुद्रा में दिखलाई गई है, ताकि ज्यादा ऊर्जा का प्रवाह **"अर्थ"** कर जाय और उनके मानसिक गति का संतुलन साधनाकाल में बना रहे।

जापान के डॉ० युसुई ने इसी प्राणशक्ति से प्राणउपचार की पद्धति का आविष्कार किया। जो गौतम बुद्ध में **"औषधि बुद्ध"** नामक उपचार मार्ग के सिद्धान्त मार्ग पर आधारित है एवं इसका नाम अपने जापानी भाषा में **"रेकी चिकित्सा"** पद्धति दिया। जो भारतवर्ष में भी कई जगह रेकी उपचार के नाम से प्रचलित है।

इस उपचार पद्धति में रोगी के प्राण शक्ति का प्रवाह भी कभी-कभी प्राणोपचारक के हाथों द्वारा प्राणोपचारक में ही प्रवेश कर

जाता है। इसलिए इसके लिए हर प्राणोपचारक प्राण उपचार के तुरंत बाद नमक का घोल या गोमुत्र का प्रयोग हाथ साफ करने के लिए करते हैं। एन्टी एलर्जी घोल के रूप में "आरोग्य" नामक घोल का भी प्रयोग करते है।

प्राणोपचारक उपचार के उपरान्त अपना हाथ भी नीचे की ओर झटक लेते हैं, ताकि रोगी का ऊर्जा, उनके प्राण के ऊर्जा के चक्रवात के साथ बाहर निकल जाय।

सारे रोग का कारण प्राणऊर्जा का मनःशक्ति पर व्यक्तिरेक पैदा करना हैं। इसलिए प्राणोपचारक कठिन से कठिन रोगों को अपने प्राणऊर्जा के चक्रवात द्वारा काट डालते हैं एवं किसी भी प्रकार का रोगी बिल्कुल स्वस्थ होकर प्राणोपचारक को धन्यवाद ज्ञापन कर अपने श्रद्धा को उढ़ेल डालना चाहता है।

प्राणोपचारक किसी भी रोगी को निराश नहीं करते हैं। उनके मनोबल को बराबर बनाये रखते हैं।

जितना साधना से प्रतिदिन प्राणऊर्जा का संकलन करते हैं इतने ही रोगी का उपचार कर पाते हैं। अपनी प्राण ऊर्जा से ज्यादा प्रयत्न करने पर स्वयं अस्वस्थ हो जाते हैं।

वैसे तो आजकल प्राणऊर्जा पर काफी प्रयोग चल रहे हैं। कैन्सर या कई तरह की बीमारियों को ओरामंडल में, यंत्र के कम्पन से ज्ञात कर तीन महिना पहले ही से उपचार कर शरीर को स्वस्थ रखा जा सकता है।

स्वयं भी हम घड़ी के बैलेन्स को एक स्पोक जैसे पतले रौड़ के अग्रभाग में क्वीक-फिक्स द्वारा साटकर प्रायोगिक यंत्र बना सकते हैं।

घड़ी का बैलेन्स ओरामंडल के प्रभाव क्षेत्र के अन्तिम छोड़ पर काँपने लगता है। जिससे किसी के ओरामंडल के विकास का, सिद्धहस्त प्राणोपचाक बीमारी के कम्पन्न का पता लगा सकते हैं।

किसी के ओरामंडल पर मनःशक्ति पर प्राणऊर्जा के व्यक्तिरेक आने से छः माह पहले ही ओरामंडल के चक्र पर व्यवधान दृष्टिगोचर होने लगता हैं। अगर मृत्यु का आगमन भी आना होता है तो ओरामंडल पर छः माह पहले दृष्टि गोचर होने लगता है, चाहे मृत्यु आकस्मिक आने की सूचना ही क्यो न आता हो!

ओरामंडल के काम, क्रोध, लोभ, मोह के, तमस्, रजस्, एवं सतज् चक्रवात में काले धब्बे का व्यवधान होने लगता है। जो थ्री डाइमेन्शन वाले आँख के अभ्यासी को तुरंत दृष्टिगोचर हो जाता है।

लोम विलोम, शीतकारी और शीतलीकरण का प्रभाव प्राणऊर्जा पर भी बहुत दूरगामी प्रभाव डालता है।

जब कुण्डलिनी जागरण में शरीर का ताप बहुत बढ़ जाता है तो सुबह 20 मिनट, शाम 20 मिनट एवं रात्रि में सोने से पहले 20 मिनट इन तीनों क्रियाओं के करने से शारीरिक एवं मानसिक शान्ति मिल जाती है।

चूंकि कुण्डलिनी जागरण पर चन्द्र स्वर और सूर्य स्वर जिसको इंगला-पिगला बोलते हैं उसके भार और दूरी का प्रभाव सुषुम्ना स्वर पर भी पड़ता है। इसलिए सहजता लाने के लिए मानसिक भार से मुक्त होने के उपाय करने पड़ेगें ।

साधक के प्राणोपचारक साधना में अपने प्राणशक्ति के ऊर्जा का प्रवाह रोगी के मन एवं प्राण पर आधात देना है। प्राणशक्ति का मुख्य प्रवाह केन्द्र सुषुम्ना नाड़ी से मेरूडण्ड में है। प्राणेपचारक मेरूडण्ड पर अबरूद्ध नस नाड़ियों के ऊपर गाँढ़ ढुढ़कर ऊर्जा का प्रवाह वहाँ भी देते हैं।

प्राणोपचारक में कभी-कभी ऐसा होता है कि उपचार करते वक्त कोई व्यवधान आ जाय या मस्तिष्क डाईभर्ट करने के लिए कोई समाचार आता हो, तो उपचार तुरंत बन्द कर देना चाहिए। चूंकि वह उचित मुर्हुत का संकेत नही है।

प्राणशक्ति का केन्द्र मनोमय शरीर में है। मनोमय शरीर कुण्डलिनी का मुख्य नियंत्रण केन्द्र है। मनोमय शरीर तक द्वैत है। लेकिन प्राण सभी प्राण क्रिया-कलापों को आंगिभूत करने के कारण अद्वैत तक जाने का मूल कारण है।

स्त्रियों में मनोमय शरीर स्थित प्राण शक्ति काफी सबल होता है। उनका आणविक बनावट भी समतुल्य होता है। इनलिए नारी में प्रकृति प्रद्रत हिप्नोटिक (सम्मोहन) आकर्षण होता है।

जो उच्च संस्कार एवं ओजस्वी ओरामंडल के कारण किसी को भी बरबस आकर्षित कर लेता है। प्राण का क्रिया-कलाप सतज् रजस्, तमस् के रूपों में अलग-अलग दिग्दर्शित होता है।

प्राणऊर्जा प्रवाह से हस्त-मुद्रा-चिकित्सा

चित्र संख्या 1 से 11 तक

हस्त-मुद्रा-चिकित्सा के अनुसार हाथ तथा हाथों की अँगुलियों और अँगुलियों से बनने वाली मुद्राओं में आरोग्य का राज छिपा हुआ है। हाथ की अँगलियों में पंचतत्त्व प्रतिष्ठित है।
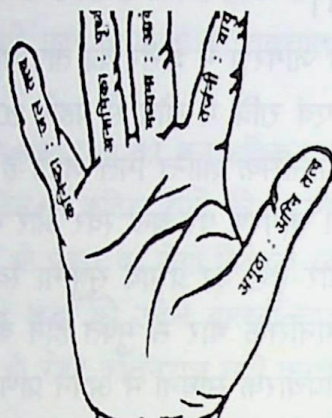
मानव-शरीर अनन्त रहस्यों से भरा हुआ है। शरीर की अपनी एक मुद्रामयी भाषा है। जिसे करने से शारीरिक स्वास्थ्य-लाभ में सहयोग प्राप्त होता है। यह शरीर पंचतत्त्वों के योग से बना है।

पाँच तत्व ये हैं- (1) पृथ्वी, (2) जल, (3) अग्नि, (4) वायु एवं (5) आकाश। शरीर में जब भी इन तत्त्वों का असंतुलन होता है, रोग पैदा हो जाते हैं। यदि हम इनका संतुलन करना सीख जायँ तो बीमार हो ही नहीं सकते हैं एवं यदि हो भी जायँ तो इन तत्त्वों को संतुलित करके आरोग्यता वापस ला सकते हैं।

ऋषि-मुनियों ने हजारों साल पहले इसकी खोज कर ली थी एवं इसे उपयोग में बराबर प्रतिदिन लाते रहे, इसीलिये वे लोग स्वस्थ रहते थे। ये शरीर में चैतन्य को अभिव्यक्ति देनेवाले सूत्र हैं।

मनुष्य का मस्तिष्क विकसित है, उसमें अनन्त क्षमताएँ हैं। ये क्षमताएँ आवृत हैं। उन्हें अनावृत करके हम अपने लक्ष्य को पा सकते हैं।

नृत्य करते समय भी मुद्राएँ बनायी जाती हैं, जो शरीर की हजारों नसों एवं नाड़ियों को प्रभावित करती हैं एवं उनका प्रभाव भी शरीर पर अच्छा पड़ता है।

हस्त-मुद्राएँ तत्काल ही असर करना शुरू कर देती हैं। जिस हाथ में ये

मुद्राएँ बनाते हैं, शरीर के विपरीत भाग में उनका तुरंत असर होना शुरू हो जाता है। इन सब मुद्राओं का प्रयोग करते समय बज्रासन, पद्मासन अथवा सुखासन का प्रयोग करना चाहिये।

इन मुद्राओं को प्रतिदिन तीस से पैंतालीस मिनट तक करने से पूर्ण लाभ होता है। एक बार में न कर सके तो दो-तीन बार में भी किया जा सकता है।

किसी भी मुद्रा को करते समय जिस अँगुलियों का कोई काम न हो उन्हें सीधी रखे।

वैसे तो मुद्राएँ बहुत हैं पर कुछ मुख्य मुद्राओं का वर्णन किया जा रहा है, जैसे-

(1) ज्ञान-मुद्रा

विधि- अँगूठे को तर्जनी अँगुली के सिरे पर लगा दे। शेष तीनों अँगुलियाँ चित्र के अनुसार सीधी रहेगी।

लाभ- स्मरण-शक्ति का विकास होता है और ज्ञान की वृद्धि होती है, पढ़ने में मन लगता है, मस्तिष्क के स्नायु मजबूत होते हैं, सिरदर्द दूर होता है तथा अनिद्रा का नाश, स्वभाव में परिवर्तन, अध्यात्म-शक्ति का विकास और क्रोध का नाश होता है।

सावधानी- खान-पान सात्त्विक रखना चाहिये। पान-पराग, सुपारी, जर्दा इत्यादि का सेवन न करे। अति उष्ण और अति शीतल पेय पदार्थों का सेवन न करे।

(2) शून्य-मुद्रा

विधि- मध्यमा अँगुली को मोड़कर अँगुष्ठ के मूल में लगाये एवं अँगूठे से दबाये।

लाभ- कान के सब प्रकार के रोग, जैसे बहरापन आदि दूर होकर शब्द साफ सुनायी देता है। मसूढ़े की पकड़ मजबूत होती है तथा गले के रोग एवं थायरायड रोग में फायदा होता है।

(3) आकाश-मुद्रा

विधि- मध्यमा अँगुली को अँगूठे के अग्रभाग से मिलाये। शेष तीनों अँगुलियाँ सीधी रहें।

लाभ- कान के सब प्रकार के रोग जैसे बहरापन आदि, हड्डियों की कमजोरी तथा हृदय-रोग ठीक होता है।

सावधानी- भोजन करते समय एवं चलते-फिरते यह मुद्रा न करे। हाथों को सीधा रखे। लाभ हो जाने तक ही करें।

(4) वायु-मुद्रा

विधि- तर्जनी अँगुली को मोड़कर अँगूठे के मूल में लगाकर हलका दबाये। शेष अँगुलियाँ सीधी रखे।

लाभ- वायु शान्त होती है। लकवा, साइटिका, गठिया, संधिवात, घुटने के दर्द ठीक होते हैं। गर्दन के दर्द, रीढ़ के दर्द तथा पारिकिंसन्स रोग में फायदा होता है।

विशेष- इस मुद्रा से लाभ न होने पर प्राण-मुद्रा (संख्या 10)- के अनुसार प्रयोग करें। **सावधानी-** लाभ हो जाने तक ही करें।

(5) पृथ्वी-मुद्रा

विधि- अनामिका अँगुली को अँगूठे से लगाकर रखे।

लाभ- शरीर में स्फूर्ति, कान्ति एवं तेजस्विता आती है। दुर्बल व्यक्ति मोटा बन सकता है, वजन बढ़ता है, जीवनी शक्ति का विकास होता है। यह मुद्रा पाचन क्रिया ठीक करती है, सात्त्विक गुणों का विकास करती है, दिमाग में शान्ति लाती है तथा बिटामिन की कमी को दूर करती है।

(6) अपान-मुद्रा

विधि- मध्यमा तथा अनामिका अँगुलियों को अँगूठे के अग्रभाग से लगा दे।

लाभ- शरीर और नाड़ी की शुद्धि तथा कब्ज दूर होता है। मल-दोष नष्ट होते हैं, बवासीर दूर होता है। वायु-विकार, मधुमेह, मूत्रावरोध, गुर्दों के दोष, दाँतों के दोष दूर होते हैं। पेट के लिये उपयोगी है, हृदय-रोग में फायदा होता है तथा यह पसीना लाती है।

सावधानी- इस मुद्रा से मूत्र अधिक होगा।

(7) वरूण-मुद्रा

विधि- कनिष्ठा अँगुली को अँगूठे से लगाकर मिलाये।

लाभ- यह मुद्रा शरीर में रूखापन नष्ट करके चिकनाई बढ़ाती है, चमड़ी चमकीली तथा मुलायम बनाती है। चर्मरोग, रक्त-विकार एवं जल-तत्त्व की कमी से उत्पन्न व्याधियों को दूर करती है। मुँहासों को नष्ट करती और चेहरे को सुन्दर बनाती है।

सावधानी- कफ-प्रकृति वाले इस मुद्रा का प्रयोग अधिक न करें।

(8) सूर्य-मुद्रा

विधि- अनामिका अँगुली को अँगूठे के मूलपर लगाकर अँगूठे से दबाये।

लाभ- शरीर संतुलित होता है, वजन घटता है, मोटापा कम होता है। शरीर में उष्णता की वृद्धि, तानव में कमी, शक्ति का विकास, खून का कोलस्ट्रॉल कम होता है। यह मुद्रा मधुमेह, यकृत् (जिगर) के दोषों को दूर करती है।

सावधानी- दुर्बल व्यक्ति इसे न करें। गर्मी में ज्यादा समय तक न करे।

(9) अपानवायु या हृदय-रोग-मुद्रा

विधि- तर्जनी अँगुली को अँगूठे के मूल में लगाये तथा मध्यमा और अनामिका अँगुलियों को अँगूठे के अग्रभाग से लगा दे।

लाभ- जिनका दिल कमजोर है, उन्हें प्रतिदिन करना चाहिये। दिल का दौरा पड़ते ही यह मुद्रा कराने पर आराम होता है। पेट में गैस होने पर यह उसे निकाल देती है। सिरदर्द होने तथा दम्मा की शिकायत होने पर लाभ होता है। सीढ़ी चढ़ने से पाँच-दस मिनट पहले यह मुद्रा करके चढ़े। उच्च रक्तचाप में फायदा होता है।

सावधानी- हृदय का दौरा आते ही इस मुद्रा का आकस्मिक तौर पर उपयोग करे।

(10) प्राण-मुद्रा

विधि- कनिष्ठा तथा अनामिका अँगुलियों के अग्रभाग को अँगूठे के अग्रभाग से मिलाये।

लाभ- यह मुद्रा शारीरिक दुर्बलता दूर करती है, मनको शान्ति प्रदान करती है, आँखों के दोषों को दूर करके ज्योति बढ़ाती है, शरीर की रोग-प्रतिरोधक शक्ति बढ़ाती है, विटामिनों की कमी को दूर करती है तथा थकान दूर करके नवशक्ति का संचार करती है। लम्बे उपवास-काल के दौरान भूख-प्यास नहीं सताती तथा चेहरे और आँखों एवं शरीर को चमकदार बनाती है। अनिद्रा में इसे ज्ञान-मुद्रा साथ करें।

(11) लिंग-मुद्रा

विधि- चित्र के अनुसार मुट्ठी बाँधे तथा बायें हाथ के अँगूठे को खड़ा रखे, अन्य अँगुलियाँ बँधी हुई रखे।

लाभ- शरीर में गर्मी बढ़ाती है। सर्दी, जुकाम, दम्मा, खाँसी, साइनस, लकवा तथा निन्म रक्तचाप में लाभप्रद है, कफ को सुखाती है।

सावधानी- इस मुद्रा का प्रयोग करने पर जल, फल, फलों का रस, घी और दूध का सेवन अधिक मात्रा में करें। मुद्रा को अधिक लम्बे समय तक न करें।

मंद स्वसन क्रिया के नियंत्रन से प्राणऊर्जा का संकलन

स्वाभाविक रूप से श्वास-प्रश्वास का बारह अंगुल जाना-आना है। एक श्वासोच्छ्वास में करीब चार सेकेंड लगते हैं। श्वासोच्छ्वास की गति जितना मद हो प्राणऊर्जा उतना संचित होता है।

श्वास छोड़ने के बारह अंगुल परिणाम को जितना ही घटाया जाए, उतना ही लाभ है। क्रमशः 12 अंगुली से 11 अंगुल कर लेने पर प्राण स्थिर हो जाते हैं, 10 अंगुल कर लेने पर महा आनंद प्राप्त होता है, 9 अंगुल कर लेने पर कवित्व शक्ति जाग्रत् होती है, 8 अंगुल पर वाक् सिद्धि होती है ।

7 अंगुल पर दूर दृष्टि प्राप्त होती है, 6 अंगुल पर आकाश में उड़ सकता है, 5 अंगुल पर प्रचंड वेग आता हैं, 4 अंगुल पर सब सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, ३ अंगुल पर नव निद्धियाँ मिलती हैं, 2 अंगुल पर अनेक रूप धारण कर सकता है, 1 अंगुल पर अदृश्य हो सकता है और प्राण की गति का प्रमाण यदि केवल नख के अग्र भाग जितना रह जाये तो उसे मृत्यु का डर नहीं रहता अर्थात् अमर हो जाता है।

सामान्यतः हर एक मनुष्य दिन-रात में 2,16000 श्वास लेता है, इससे कम श्वास लेने वाला दीर्घजीवी होता है। कम श्वास में प्राणऊर्जा का संचयन होता है। विश्व के समस्त प्राणियों में जो जीव जितनी कम श्वास लेता है।

वह उतने ही अधिक काल तक जीवित रहता है। नीचे की तालिका से इसका स्पष्टीकरण हो जाता है।

नाम प्राणी		श्वास गति प्रति मिनट		पूर्ण आयु	नाम प्राणी		श्वास गति प्रति मिनट		पूर्ण आयु
खरगोश	...	38 बार	...	8 वर्ष	मनुष्य	...	13 बार	...	120 वर्ष
बंदर	...	32 बार	...	10 वर्ष	साँप	...	8 बार	...	1000 वर्ष
कुत्ता	...	29 बार	...	12 वर्ष	कछुआ	...	5 बार	...	2000 वर्ष
घोड़ा	...	19 बार	...	25 वर्ष					

साधारण काम-काज करने में 12 बार, दौड़-धूप करने में 18 बार और मैथुन करते समय छत्तीस बार प्रति मिनट के हिसाब से श्वास चलती है, इसलिए विषयी और लम्पट मनुष्य की आयु घट जाती है एवं प्राणायाम करने वाले योगाभ्यासी दीर्घकाल तक जीवित रहते है।

प्राणऊर्जा का स्वर-चिकित्सा में प्रयोग

स्वर तीन प्रकार के होते हैं-

(1) इड़ा, चन्द्रस्वर- इसमें बाँयीं नासिकाद्वारा वायु निकलती है।

(2) पिंगला, सूर्यस्वर- इसमें दाहिनी नासिका द्वारा वायु निकलती है।

(3) सुषुम्णा स्वर- इसमें दोनों नासिका-छिद्र द्वारा वायु निकलती है बारी-बारी से।

हमारी नासिका से कभी चन्द्रस्वर निकलता है, कभी सूर्यस्वर निकलता है तथा बहुत कम समय के लिये सुषुम्णास्वर निकलता है। यदि हम इन्हें नियन्त्रण करना सीख लें, तो अनेक रोगों से छुटकारा पा सकते हैं एवं स्वस्थ रह सकते हैं।

(1) सुबह उठते ही देख लें, कि कौन सा स्वर चल रहा है तथा उसी तरफ की हथेली का दर्शन करें एवं उसी तरफ के गाल, आँख तथा मुँह का स्पर्श करें और उसी तरफ का पाँव पहले जमीन पर रखकर आगे बढ़ें तो दिन बहुत ही अच्छा गुजरता है।

(2) कभी भी किसी शुभ कार्य में जायँ तो जिस तरफ का नाक में स्वर चल रहा हो, उस तरफ का पाँव पहले आगे बढ़ायें तो कार्य सिद्ध हो जाता है।

(3) भोजन करने के बाद चित्त लेटकर श्वास लें, फिर दाहिने करवट लेटकर 16 श्वास लें तो भोजन का पाचन अच्छी प्रकार होता है।

(4) दर्द दूर करने का उपाय- अचानक उठनेवाले दर्द को दूर करने का सुगम उपाय यह है कि जो स्वर चल रहा है उसे बदल दें। तत्काल राहत मिल जायगी।

स्वर चलाने का नियम- जिस तरफ का स्वर चलाना हो, उसके उलटे करवट दो-चार मिनट लेटकर सो जाने पर इच्छित स्वर चलना शुरू हो जाता है।

केवल पक्ष की तिथियों में ही सूर्य-चंद्र द्वारा यह स्वर परिवर्तन नहीं होता, वरन् अन्य ग्रहों का भी प्रभाव उन पर अपना असर डालता है, तदनुसार कुछ वारों में भी विशिष्ट परिवर्तन होता है। चंद्र, बुध, गुरू और शुक्र इन वारों में और विशेषकर शुक्ल पक्ष में बाई नाड़ी चलना शुभ है। रवि, मंगल और शनि इन वारों में और विशेषकर कृष्ण पक्ष में दक्षिण नाड़ी चलना शुभ है। रविवार को सूर्योदय पर सूर्य नाड़ी और चंद्रवार को चंद्र नाड़ी का चलना शुभ माना जाता है। आकाश स्थित प्रधान ग्रहों

का प्रभाव उनकी अपनी तथा पृथ्वी की चाल के अनुसार इस भूमंडल पर आता है। अपनी धूरी पर घूमने के अतिरिक्त एक निर्धारित मार्ग से पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा के लिए भी चलती रहती है। इस मार्ग में प्रधान ग्रहों की कुछ महत्त्वपूर्ण किरणें प्रायः एक के बाद एक स्पष्ट रूप से आगे आती हैं, अन्य दिनों में वे किरणें अन्य ग्रहों की आड़ में रूक जाती है।

सूर्य और चंद्र नाड़ियों पर शुक्ल पक्ष एवं कृष्ण पक्ष की ऋण-धन विद्युत एवं वारों के अधिपति ग्रहों का भी प्रभाव स्वर पर होता है, वह प्रातःकाल देखा जा सकता है। नाड़ियों की भिन्नता दृष्टिगोचर होने का कारण अन्य ग्रहों का सूर्य-चंद्रयुक्त प्रभाव ही है। जो ग्रह सूर्य से समता रखते है, वे सूर्य-स्वर को और जो चंद्र से समता रखते हैं, वे चंद्र को प्रभावित करते हैं।

यदि चंद्रमा के स्वर में सूर्य का उदय हो और सूर्य के स्वर में अस्त हो तो उस विपरीत समय में कोई भी कार्य सिद्ध नहीं होता।

सूर्यस्वर (दाहिने नाक का) स्वर-तालिका **चन्द्रस्वर (बाये नाक का)**

	सूर्यस्वर		चन्द्रस्वर
(1)	गरम	(1)	ठंडा
(2)	सर्दी, जुकाम, खाँसी, दमा, निमोनिया अपच, गठिया, जोड़ों के दर्द, निम्न रक्तचाप, पोलियो एवं पक्षाघात में काम आता है।	(2)	गर्मी, पित्तजनित रोगों में, खुश्की, दिल की धड़कन या घबराहत, मूत्र में जलन, उच्च रक्तचाप,थकावट बुखार एवं लू में काम आता है।
(3)	ठंडे मौसम, बरसात में इस स्वर को चला लें।	(3)	गर्मी के मौसम में इस स्वर को चला लें।
(4)	दीर्घशंका (मल–विसर्जन) के वक्त इस स्वर को चलाकर जाना चाहिये।	(4)	लघुशंका (मूत्र–विसर्जन) के वक्त इस स्वर को चलाना चाहिये।
(5)	कठिन यात्रा, मेहनत के काम, व्यायाम, स्नान, शयन के वक्त इस स्वर को चला लें।	(5)	यात्रा, भजन, साधन के वक्त इस स्वर को चला लें।
(6)	इसी स्वर को चलाकर भोजन करना चाहिये।	(6)	जल या पेय पदार्थ इस स्वर को चलाकर पिये।

सुषुम्णा-स्वर- योग, भजन, ध्यान, जप, प्रार्थना इत्यादि सुषुम्ना-स्वर के चलते समय करने चाहिये। यानी दोनों स्वर चलते हों तभी करने से सिद्ध होते हैं।

साम्या-स्वर- दोनो नाक से समान्य गति से बहुत मन्द श्वास प्रश्वास के समय आशीर्वाद और श्राप तीर की गति से किसी को भी भेद डालती है।

ऋषि साधु संतजन एक लकड़ी का स्टैन्ड हाथ रखने के लिए बनाकर रखते हैं। जिस पर हाथ टिकाकर श्वाँस का स्वर बदलते रहते हैं ।

1. सोते समय चित होकर नहीं लेटना चाहिए। इसमें शुषुम्ना स्वर चलता है।

जिससे नींद में बाधा आती है। अशुभ डरावने स्वप्न आते हैं।

2. धी खाने से बायां और शहद खाने से दाहिनां स्वर चलता है।

3. सुषुम्ना स्वर संधि अवस्था होती है। इसमें उदासीनता बनी रहती है। इस स्वर में चिन्तन अराधना जैसे कार्य करने चाहिए। अन्य कार्य इस स्वर के दौरान हो तो परिणाम अच्छे नहीं होते।

4. चलित स्वर में पुरानी स्वच्छ रूईका फाहा रखने से श्वर बदलता है।

5. अधिक-लम्बा साँस चलना हानिकारक और कम लम्बाई में चलना लाभप्रद होता है।

6. सोते समय 30 अंगुली, साधारण समय में 12 अंगुली, भोजन करते समय 20 अंगुल समान्य गति और टी०वी० वगैरह रोगी में 70 अंगुल तक साँस चलने वाले को मृत्यु के निकट समझा जाता है।

पथिक (1)

जब तक मिले न लक्ष्य, पथिक तुम आगे बढ़ते जाओ !
खुला हुआ है द्वार प्रगति का, निर्भय कदम बढ़ाओ !!
भय से रूकना नहीं तुम, आँधियां चाहे जितनी आये !
रूको नहीं पथ पर, चाहे टूट पड़े निपदायें !!
संकल्पो में शक्ति न हो, सामर्थहीन हो वाणी !
नहीं जमाने को बदले तो, यह क्या खाक जवानी !!
सिद्धि स्वयं दौड़ी आयेगी, अपनी भूजा उठाओं !
जब तक मिले न लक्ष्य, पथिक तुम आगे बढ़ते जाओ !! प्रहलाद!

प्राणवायु एवं आयु का सम्बन्ध

प्राणवायु! प्रत्यक्ष ब्रह्म हैं। प्राण ही जगत् का कारण-ब्रह्म है। मन्त्रज्ञान तथा पञ्चकोश प्राण पर ही आधारित हैं। प्राण ही ऋषि माना गया है। मन्त्र-द्रष्टा ऋषियों को उनके शरीर के आधार पर नहीं वरन् प्राण के ही आधार पर 'ऋषित्व' प्राप्त हुआ है। प्राण का अवलम्बन होने से यह समस्त विश्व मित्र है, इसलिये विश्वामित्र कहा गया।

'प्राण' मात्र स्वाँस नहीं है, प्रत्युत वह तत्त्व है, जिससे श्वाँस-प्रश्वाँस आदि समस्त क्रियाएँ एक जीवित शरीर में होती हैं।

प्राण ही ब्रह्म तथा विराट् है, वही सबका प्रेरक है। इसी से सभी उसकी उपासना करते हैं। प्राण ही सूर्य है, चन्द्रमा है और वही प्रजापति है।

सृष्टि के आरम्भ पाँचों स्थूल भूतों, लोक-लोकान्तर और सम्पूर्ण जड़ तथा चेतन पदार्थ अपने उपादान के कारण आकाश से प्राण-शक्ति द्वारा उत्पन्न होते हैं,

इसी प्राण-शक्तिद्वारा आश्रय पाकर जीवित रहते हैं और प्रलय के समय इसी का आश्रय न पाकर, कार्यरूप से नष्ट होकर अपने कारणरूप आकाश के कम्पन्न क्षेत्र में मिल जाते हैं।

ये सभी भूत प्राण में लीन होते हैं और प्राण से प्रादुर्भूत होते हैं। शरीररूपी तीर्थ में निवास करने से तथा उसका स्वामी होने के कारण 'प्राण' ही पुरूष कहा जाता है। जब तक इस शरीर में प्राण है तभी तक जीवन है।

काया-नगरी में प्राणवायु ही राजा है- देवता, मनुष्य, पशु और समस्त प्राणी प्राण से ही अनुप्राणित हैं। जिसने अपने सोते हुए प्राण को जगा लिया, उसके लिये सब ओर जाग्रत्-ऊर्जा का स्रोत प्रवाहित होने लगा।

मानव-शरीर में वृत्ति के कार्य भेद से इस प्राणवायु को मुख्यतया दस भिन्न-भिन्न नामों से विभक्त किया गया है-

प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृंकल, देवदत्त और धनंजय- ये दस प्रकार के प्राणवायु हैं। मुख्य प्राण और मुख्य नाड़ी की व्याख्या पीछे की गई है।

'सुषुम्ना, इडा, पिंगला'- ये तीन नाडियाँ प्रधान हैं। इन तीनों में सुषुम्ना सर्वश्रेष्ठ हैं। यह नाड़ी अति सूक्ष्म नली के सदृश है, जो गुदा के निकट से मेरूदण्ड

के भीतर से होती हुई मस्तिष्क के ऊपर चली गयी है। इसी स्थान से इसके वामभाग से इडा और दक्षिण भाग से पिंगला नासिका के मूलपर्यन्त चली गयी है।

वहाँ भ्रूमध्य में ये तीनों नाड़ियाँ परस्पर मिल जाती हैं। सुषुम्ना को सरस्वती, इडा को गंगा और पिंगला को यमुना भी कहते हैं। गुदा के समीप जहाँ ये तीनों नाड़ियाँ पृथक् होती हैं, उनको 'मुक्त-त्रिवेणी' और भ्रूमध्य में जहाँ ये तीनों पुनः मिल गयी हैं, उनको 'युक्त-त्रिवेणी' कहते हैं।

प्रायः ऐसा देखा जाता है कि अधिकांश व्यक्ति गहरी साँस लेने के अभ्यस्त नहीं होते हैं। वे उथली साँस ही लेते हैं, जिससे फेफड़ों का लगभग एक चौथाई भाग ही कार्य करता है।शेष तीन चौथाई भाग लगभग निष्क्रिय पड़ा रहता है। शहद की मक्खी के छत्ते की तरह फेफड़ों में प्रायः सात करोड़ तीस लाख 'स्पंज' जैसे कोष्ठक होते हैं। साधारण हलकी साँस लेने पर उनमें से लगभग दो करोड़ छिद्रों में ही प्राणवायु का संचार होता है ।

शेष पाँच करोड़ तीस लाख छिद्रों में प्राणवायु न पहुँचने से ये निष्क्रिय पड़े रहते हैं। परिणामतः इनमें जड़ता और गंदगी जमने लगती है। जिससे क्षय (बी०बी०), खाँसी, ब्रौंकाइटिस आदि भयंकर रोगों से व्यक्ति आक्रान्त हो जाता है।

इस प्रकार फेफड़ों की कार्य-पद्धति का अधूरापन रक्त-शुद्धि पर प्रभाव डालता है। हृदय कजोर पड़ता है और परिणामतः अकालमृत्यु नित्य ही उपस्थित रहती है। इस स्थिति में प्राणायाम की महत्ता व्यक्ति की दीर्घ आयु के लिये अत्यधिक आवश्यक हो जाती है।

विभिन्न रोगों का निवारण, प्राणवायु का प्राणायाम के द्वारा नियमन करने से आसानी से किया जा सकता है।

इस विज्ञान अर्थात् प्राणवायु के विज्ञान की जानकारी से मानव स्वयं तथा दूसरों के स्वास्थ्य को सुव्यवस्थित करके सुखी एवं आनन्दपूर्ण जीवन का पूर्ण लाभ लेता हुआ अपनी आयु को बढ़ा सकता है।

यही कारण है कि प्रत्येक धर्म-कार्य में, शुभकार्य में तथा संध्या-वन्दना के नित्य-कर्म में 'प्राणायाम' को एक आवश्यक धर्मकृत्य के रूप में सम्मिलित किया गया है। 'प्राणायाम' मात्र साँस खींचना और छोड़ना ही नहीं है। यह तो उसकी प्रारम्भिक परिपाटी है।

अनेक प्राणायाम ऐसे विलक्षण हैं, जिनमें साँस खींचने-छोड़ने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। उनमें 'प्राणवायु' का आकर्षण एवं विकर्षण ही प्रधान रहता है। 'प्राणवायु' का संचय होने से 'समाधि' लगती है। परिणामतः मानव, काल को वश में करके मनचाही अवधि तक जीवित रह सकता है और प्राण-त्याग भी उसी सरलता से कर सकता है।

शरीर और मन 'प्राणशक्ति' से ही चलते हैं। प्राणवायु पर नियन्त्रण करने की विधि को जाननेवाला अपने शरीर और मन की प्रत्येक क्रिया पर नियन्त्रण रख सकने की क्षकता से सुसम्पन्न हो जाता है। इस प्रकार के सभी विधि-विधान 'प्राणयाम' विद्या के अन्तर्गत आते हैं।

सम्यक् प्राणायाम से शारीरिक दोष दूर होते हैं। कुम्भक से शरीर और मन-ये दोनों मलरहित होते हैं, धारणा से पाप नष्ट होते हैं, प्रत्याहार से इन्द्रियों का संसर्ग टूटता है और ध्यान से अनीश्वर यानी जिसके ऊपर कोई शासक नहीं है, ऐसे उस परमात्मा का ज्ञान प्राप्त होता है।

पथिक (2)

जब तक मिले न लक्ष्य, पथिक तुम आगे बढ़ते जाओ !!

हो निज पर विश्वास, दृष्टि से लक्ष्य नहीं ओझल हो !
मोड़े जग की राह चाह में, इतनी शक्ति प्रवल हो !!
काँटो भरा देख जग तुमने, हिम्मत अगर न हारी !
चलते रहे विराम रहित, तो होगी विजय तुम्हारी !!
नभ से उड़ो सुदूर गगन से, तोड़ सितारे लाओ !

जब तक मिले न लक्ष्य, पथिक तुम आगे बढ़ते जाओ !!

खोना मत उत्साह, नाता मुस्कानो से टूटे !
डूब रहे हों नाव भवंर में, फिर भी धैर्य न छूटे !!
जलते हुए अंगारे हों, या बर्फिली चट्टाने !

बढ़ते ही जाना रूकना मत, अपना सीना ताने !!
कमर बाँधकर चले अगर तो, फिर मत पीठ दिखाओ !
जब तक मिले न लक्ष्य, पथिक तुम आगे बढ़ते जाओं !!

(प्रहलाद्)

मृत्यु जीवन का आरम्भ है, अन्त नहीं!

चेतना के दो प्रकार है। पहला चेतना को अन्तर चेतना और दूसरे प्रकार की चेतना को बहीर चेतना कहते है। अन्तर चेतना मस्तिष्क में और बहीर चेतना हृदय में रहती है। आत्मा का शरीर में विशेष स्थान हृदय में है। एक प्रकार से सारे शरीर में व्याप्त है। लेकिन प्रत्येक कोशा आत्मा लिए हुए है।

आत्मा एक सूक्ष्म तत्व है जो मनोवाहा, प्राणवाहा और रक्तवाहा नाड़ियों द्वारा सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त है।

अन्तर चेतना का सम्बन्ध अचेतन मन से है। दोनों के सहयोग से मस्तिष्क में ज्ञान विवेक, बुद्धि, विचार अभिलाषा का उदय होता है। मृत्यु के समय पूरे शरीर की आत्मा मुख्य आत्मा में समा जाती है एवं प्राण शक्ति का आश्रय ले सूक्ष्मतम अणुओं से सूक्ष्म शरीर का निर्माणकर उसमें प्रवेश कर जाती है एवं वासना शरीर का निर्माण कर प्रेतयोनि पाती है।

आत्मा जिस शरीर में रहती है उस शरीर की उपाधि उसे मिलती है। यदि प्रेतशरीर में रहती है, तो प्रेतात्मा, सूक्ष्म शरीर में है तो सूक्ष्मात्मा, एवं मनोमय शरीर में है तो विशुद्ध आत्मा अथवा देवात्मा कहलाती है। अज्ञानता है आत्मा का अन्धकार और ज्ञान है आत्मा का प्रकाश, आत्मज्ञान का प्रकाश जहाँ है वहाँ पराजय नहीं विजय की सम्भावना है।

जीवन और मृत्यु दोनों एक साथ सत्य नहीं हो सकते। लेकिन हम दोनों को सत्य समझ कर स्वीकार किये हुए हैं। हमारे पार्थिव शरीर पंचतात्विक शरीर है। इसलिए एक विशेष सीमा में वह और उसकी इन्द्रिया बंधी है। उस सीमा से ऊपर न शरीर की गति है और न ही इन्द्रियों की गति है। सूक्ष्म शरीर की गति द्वैत तक, मनोमय शरीर तक है, जिसकी व्यापक परिधि है।

मृत्यु से न मुक्त होना है और न मृत्यु पर विजय प्राप्त करना है। केवल होशपूर्वक मृत्यु का ज्ञान ही हमें मुक्त कर देता है। श्वाँस का भीतर जाना जीवन है और स्वाँस का वाहर आना मृत्यु है। भौतिक जगत ही कर्म प्रधान है। अन्य जगत नहीं। कोशिकाएँ जीन्स जैसी जोड़ी में होती है वैसी प्रोटीन पैदा करती है। कोशिकाओं की जीन्स भी मैथुनी जगत की तरह स्त्रीत्व एवं पुरूषत्व की तरह काम कामेश्वरी की लीला पूरा करती रहती है।

तंत्र के अनुसार प्रत्येक वर्णाक्षर की अपनी स्व शक्ति है। जिसे मातृका कहते है। 52 मातृकाएँ है। जिसमें **क** से **न** तक की बीस मातृकाओं में प्रोटीन का उत्पादन है। अन्य मातृकाएँ मस्तिष्क के अरबो कोशिकाओं का संचालन एवं नियंत्रण रखती है।

महाभारत काल में इन्ही कोशिकाओं के नियंत्रण द्वारा मंत्रों की अभिव्यक्ति से इतने बिनाशकारी महायुद्ध की भूमिका बनी। इन कोशिकाओं के वर्ण विज्ञान को उस समय कृष्ण, द्रोणाचार्य, भीष्म, महर्षि ब्यास ने बहुत अच्छी तरह उद्भाषित किया।

इन्ही कोशिकाओं की वर्ण विज्ञान को जानने से श्री कृष्ण ने बरबरीक के शिर को काटकर भी, उसे महाभारत का दृश्य देखने के लिए शिरमुण्ड को जिन्दा रखने की मिशाल क़ायम की। व्यास ने चच्क्षु भेदन से धृतराष्ट्र पाण्डव, बिदुर को जन्म दिया। द्रोणाचार्य ने अणुओं का विच्छेदन कर ब्रहमास्त्र को जाना।

मनुष्य का निर्माण दो तत्वों के संयोग से है। शरीर तत्व, पंच तत्व एवं अशरीर तत्व यानी, मन, चित, आत्मा। प्राण भिन्न तत्व है, जो सर्व व्यापक है। प्राण ही दोनों तत्वों को मिलाकर पार्थिव शरीर का संचालन करने लगती है ।

जन्म के साथ जैसे-जैसे न्यूरान सेल प्रातिदिन पाँच हजार मरती है, हमारी प्राण ऊर्जा भी शैने-शैने क्षीण होने लगती है और अन्त में दोनों तत्वों में सामंजय नही होने पर प्राणऊर्जा व्यापक प्राणशक्ति सूक्ष्म शरीर में व्याप्त होकर शरीर त्याग कर देती है। शरीर वायुमंडल से प्रभावित होकर सड़ने गलने लगता है। यही प्राकृतिक नियम मृत्यु का है।

मन और आत्मा भी एक ही पर्दार्थ के दो रूप हैं। पहला क्रियाशील है और दूसरा न्यूक्युलियर केन्द्र की तरह निष्क्रिय, शरीर के केन्द्र नियत्रंण कक्ष में बैठा है।

एक ही वस्तु के ऊर्जा का रूपान्तरण परमात्मा, आत्मा और जीवआत्मा ये तीन रूप में हैं। क्रम से अहंकार का बुद्धि में, बुद्धि का मन में, और फिर मन का आत्मा में लीन होना ही मनुष्य का विशुद्धआत्मा होना है। जो परमात्मा केन्द्रक के विलकुल नजदीक की परिधि है। ऊर्जा तो रूपान्तरण का स्वरूप है।

मृत्यु के समय जीवन की अधूरी इच्छाएँ एवं वासनाएँ चित में एकत्र होने लगती है, मृत्यु के बाद उन्ही वासनओं के अनुरूप प्रेत शरीर का निर्माण होता है।

परमात्मा "आत्मा" का साक्षी रूप है और "मन' आत्मा का साक्षी रूप है। अतृप्त वासनाओं का भोग शरीर प्रेतात्मा है एवं अतृप्त भावदशा ही दुख एवं नर्क का

कारण है। लेकिन मन दोनो विभु का राजा है। अद्योगति एवं उर्दवगति दोनो उसकी स्थिति है।

आठ बिन्दु का एक अतिसूक्ष्म रूप रेणु है। इन आठ बिन्दुओं में चार पुरूष तत्व एवं चार स्त्री तत्व हैं। इन्हीं को श्वेत बिन्दु एवं रक्त बिन्दु कहते है। यहि शिव और शक्ति के प्रतीक हैं काम-कामेश्वरी के केन्द्रबिन्दु हैं।

पाँच तत्व से स्थूल शरीर का निर्माण है। लेकिन पाँच प्राण के सूक्ष्तम कणों से सूक्ष्म शरीर का निर्माण है।

दो आकर्षण में जब टकराब होता है, तो शुभ भी हो सकता है और अशुभ भी। काम-कामेश्वरी के साधना में संकल्प वासनाजन्य होने पर अशुभ सिद्धियाँ भी दे सकती है जो मानव जीवन को नीचे गिरायेगी एवं विशुद्ध संकल्प उँचाई की ओर ले जायगी और मानव जीवन को धन्य करेगी।

हमारी सारी प्रवृतियाँ कल्याणकारी होगी। तथा सूक्ष्मलोक एवं मानसलोक की आत्मा हमसे सम्पर्क कर ज्ञान-विज्ञान की अथाह सागर से हमारे योग्यतानुकूल ज्ञान देकर हमें कृत-कृत करती रहेगी।

हमारे काम-कामेश्वरी की साधना अगर उच्च स्तर की है तो, सूक्ष्मलोक एवं मानसलोक की आत्माएँ गर्म-धारण कर उच्च कोटी के साधक, वैज्ञानिक, गायक, कवि, राजनीतिज्ञ, मनोविचारक एवं संत-महात्मा इत्यादि को इस संसार में आने का मौका देकर भी हमें कृत्य-कृत्य करेगी।

सूक्ष्मलोक की एवं मनोमय लोक की जो स्थूल शरीर में चौथे शरीर की स्थिति में गर्भधारण की स्थित बनती है, तो उसके लिए हमें भी कुण्डलिनी जागरण के द्वारा चौथे शरीर की उपलब्धि प्राप्त करनी पड़ेगी।

आत्मलोक की प्राप्ति के लिए भी इन उच्च आत्माओं को मानस शरीर के केन्द्र से गर्भधारण कर पृथ्वी पर आना पड़ता है।

सूक्ष्मलोक एवं मानसलोक में इच्छाशक्ति से जैसी कल्पना होती है, वैसी स्थिति वहाँ के निवास के लिए बन जाती है। हम मनुष्य इसी मनुष्य योनि की उचाई को उँचा समझे बैठे हैं।

जबकि ऊपर की इन, सूक्ष्मलोक, मानसलोक, आत्मलोक, के अन्तर्गत और बहुत सारे लोक बहुत ही आकर्षक एवं सुहावना परिस्थिति में हमारा इन्तजार

कर रही है। इन लोकों में न भूख लगती है, न प्यास लगती है, न कोई क्लेश है, न ईर्ष्या है और न द्वेष है। यहाँ पृथ्वी की तरह कर्म की प्रधानता नहीं है, केवल इच्छा शक्ति के अनुरूप भोग की स्थिति है।

ज्ञान विज्ञान का अगम अथाह सागर बह रहा है। जिसको प्राप्त करने की वहाँ सुविधा है। अपने बचे इच्छाओं को पूर्ण करने की सुविधा है। इनलोको के सभी योनि में सभी तृप्त एवं ज्ञानीजन का निवास है।

लेकिन इन लोको से ऊपर जाने के लिए पृथ्वी पर ही जन्म लेना पड़ता है। ये लोग जिस केन्द्र से मृत्यु प्राप्त किये रहते हैं, उन्ही केन्द्रों से पृथ्वी पर गर्भाधान की सुविधा है। हम तो बेहोश जिन्दगी जी रहे है। फिर इन उच्च आत्माओं को कैसे जन्म की सुविधा मिल सकती है!

संसार आज अवांछित, आतंकवादियों, मूर्ख, अज्ञानी, युद्धलोलुप, कामुक, बलात्कारी को जन्म लेने की सुविधा प्रदान कर रही है। पूरा यूरोप सेक्स सेन्ट्रेलाइज हो रहा है।। हम अपनी संस्कृति को भूलकर पाश्चात्य संस्कृति में रंग रहे हैं। टी. भी., मोबाईल, सिनेमा का उपयोग केवल हमारी मनोवृति को गिराने में लगी है।

हम अपनी मनुष्य योनि की गरिमा को भूल रहे हैं। जबकि प्रकृति ने हमें गौरी-शंकर की भी उचाई छू लेने के सारे साधन हमें प्रकृतिप्रदत्त रूप से प्रदान किया है। हम कुण्डलिनी जागरण की साधना कर इन उँचाईयों को छू सकते हैं।

जब हम चौथे शरीर से ऊपर की साधना में जायेगें, तो यह मनुष्य योनि ही क्या संसार ही स्वप्नवत लगेगा। फिर हृदय का धड़कना एवं कामुकता की लीला भी महत्वहीन लगेगी। चौथे शरीर की साधना ही प्राणशरीर या प्राणचक्र की साधना है। इस स्थूल शरीर को श्वास-प्रश्वास एवं काम-कामेश्वरी के लीला की जरूरत है।

अन्य जगत में तो केवल प्राणऊर्जा ही महत्वपूर्ण है, जो सूक्ष्म शरीर में अवस्थित होकर हमें उच्च से उच्च लोको में प्रवेश की गति देती है। हम एवं हमारे ऋषि मुनियों ने भी मानव जीवन को बहुत उत्तम माना है।

क्योंकि एक यही योनि है, चौरासी लाख योनि के मध्य में व्यालिस लाख योनि पर, जहाँ अपने कर्म प्रधान प्रवृतियों द्वारा गीता में व्याखान दिये गये कृष्ण के सिद्धान्तों से, योग की उच्चतम श्रृखंला को प्राप्त करते हुए, हमें ब्यालिस लाख योनि ऊपर जाने की सुविधा है।

या व्यालिस लाख योनि नीचे कीट, पतंग, जानवर, गाय, भैस इत्यादि की श्रृखंला में नारकीय जीवन बिताऐं।

पशुओं में हाथी की योनि को उँचा माना गया है। क्योंकि नीचे से मनुष्य योनि में जाने का प्रतीक गणेश जी के रूप में है। मूलाधार को गणेश चक्र भी बोलते हैं।

यह पृथ्वी तत्व से ऊपर जाने का प्रतीक है। ऊपर की कितनी भी स्वर्गीय योनि है या नीचे की नारकीय योनि मानव जीवन ही ब्लैकहोल (अंधबिन्दु) की तरह प्रवेश के लिए साध्य है।

लेकिन इस मानव जीवन को ही हम बेहोशी की तरह जी कर व्यालिस लाख ऊपर की स्वर्गीय योनि को बिस्मृत कर रहे हैं।

हमारे पुराणों में कहाँ गया है कि विष्णु सरशैया पर सोये योगनिद्रा में हैं, उसी योगनिद्रा की मोहनी माया या स्वप्नवत संसार है। जब उनकी निद्रा टूटेगी तो स्वप्न जैसा यह संसार, तिरोहित होकर नष्ट हो जायगा।

हमारे मनुष्य का ब्रह्मरंध्र जो कारण शरीर में है, विष्णु की परिकल्पना की ठीक यही स्थिति है। जब हमारा आध्यात्मिक ज्ञान एवं चेतना जागृत होता है, तो यह दुनिया स्वप्नवत पीछे छूट जाता है। रिश्ते-नाते सभी हास्यापद लगने लगते है एवं हम आत्मगति की ओर बढ़ चलते है।

महाभारत काल में कथा आती है कि अभिमन्यु की मृत्यु में शोक-संतप्त अर्जुन को लेकर जब कृष्ण स्वर्ग को गये, तो अभिमन्यु ने अर्जुन से पिता होने की कोई अपेक्षा नहीं की।

अर्जुन के याद दिलाने पर की ''मैं तुम्हारा पिता हूँ'', अभिमन्यु ने उन्हें स्मरण दिलाया कि ''मैं कई जन्मों में आपका पिता था ! कभी आपको ढूढ़ने नहीं गया। लेकिन आप किस पुत्र को ढूढ़ने चले आये'' ? जाहिर है कि कृष्ण और अर्जुन अपने सूक्ष्म शरीर में ही स्वर्ग जा पाये होगें।

चित्र सं० 30

मोमबत्ती पर त्राटक

दर्पण पर त्राटक

सम्पूर्ण शरीर को
साधना का प्रयोग
त्राटक
सम्मोहन क्रिया द्वारा
स्लील जैसा करा कर लेना
चित्र सं०-32
बच्चे के वजन पर भी
नहीं झुकने देना
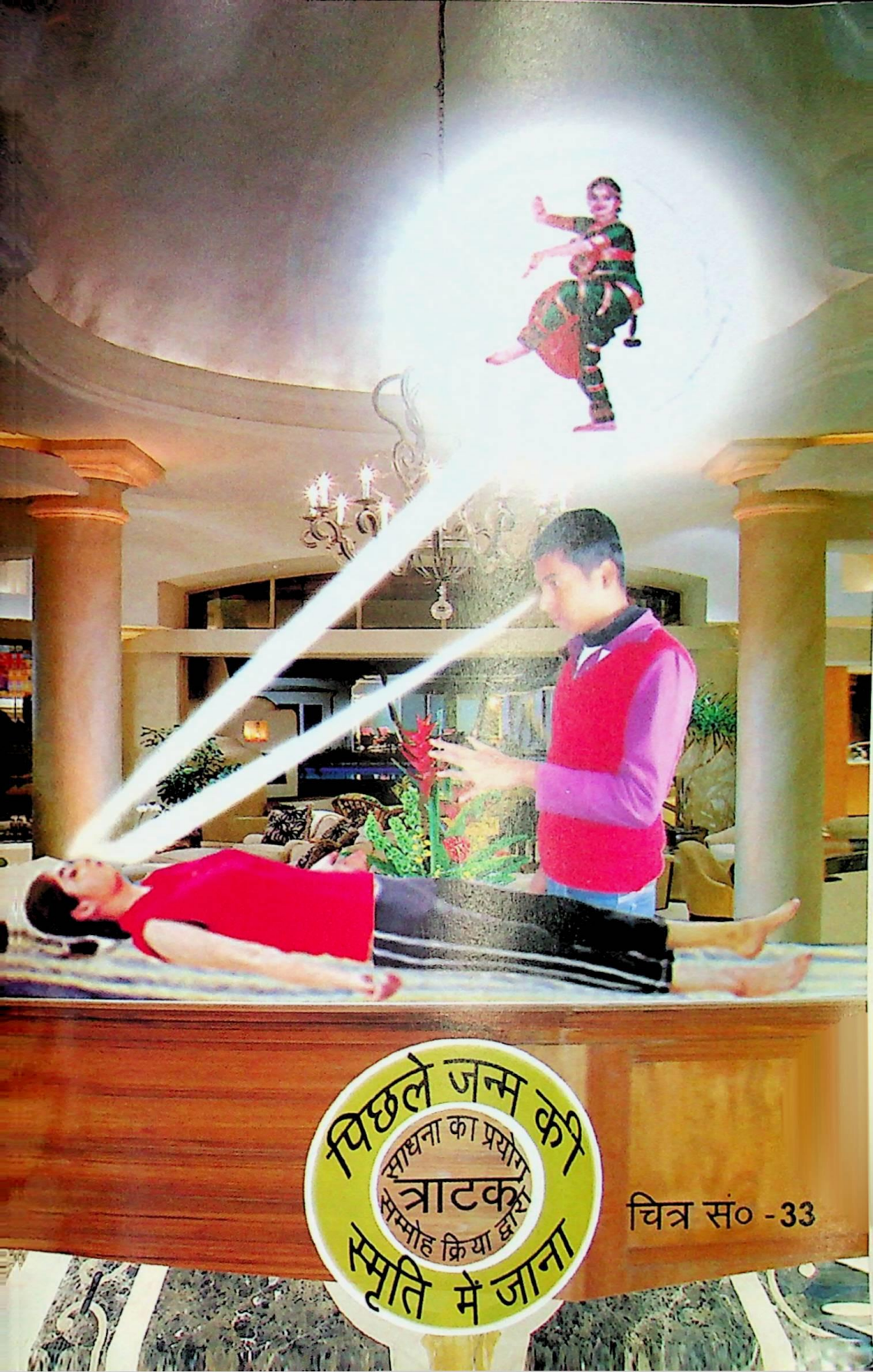
पिछले जन्म की
साधना का प्रयोग
त्राटक
सम्मोह क्रिया द्वारा
स्मृति में जाना
चित्र सं० -33

चित्र सं०33

चित्र सं०34

सम्मोहन

सम्मोहन (हिप्नोटिज्म)

हिप्नोटिज्म (सम्मोहन) एक ऐसी विद्या की साधना है, जिसमें साधक का दृढ़प्रतिज्ञ होना एवं ध्यानयोग की भी साधना आवश्यक है। इस साधना से भूत, भविष्य एवं वर्तमान को माध्यम के दृश्यपटल से स्पष्ट देखा जा सकता है। आत्म सम्मोहन में आकर अपने दृश्यपटल से भी देखा जा सकता है।

मेरे भाई साहब डा० सत्य नारायण बाबु ने इस सम्मोहन विद्या का प्रदर्शन 50 वर्ष पहले जनहित में बहुत प्रखरता से प्रस्तुत किया था।

वे किसी भी उचित माध्यम को हिप्नोटिज्म द्वारा कृत्रिम बेहोशी में लाकर, जैसा आदेश देते थे, माध्यम आज्ञाकारी की तरह बिल्कुल वैसी हरकत करने लगता था।

क) वे किसी भी व्यक्ति को ग्लास में सादा पानी देकर कहते थे, कि ईख का शर्बत है, अच्छी मिठास शर्बत में है, तुम स्वादिष्ट शरबत पीने जा रहे हो! अगला व्यक्ति बहुत स्वाद से उस सादे पानी को ही शर्बत के स्वाद में पीने लगता था।

ख) पहलवान जैसे व्यक्ति को दोनों हाथ सीधा ऊपर उठाकर रखने को कहते थे एवं सम्मोहन का पास देकर बोलते थे कि तुम्हारा हाथ लोहे का हो गया! तुम हाथ गिरा नहीं सकते!

अगर हाथ गिरेगा तो तुम बेहोश हो जाओगे! व्यक्ति 45 मिनट तक भी हाथ उठाये रखता था एवं बाद में जब गिराना चाहा तो बेहोश होकर पीछे की ओर गिर गया। फिर पास देकर उसे होश में लाया गया।

ग) एक चेन स्मोकर व्यक्ति को जो हर दस मिनट पर एक बीड़ी जला लेता था। उसको सम्मोहित कर निद्रा में लाने के बाद उन्होंने आदेश दिया कि जब-जब तुम बीड़ी पीना चाहोगे, तो बिस्टा की बदबू तुम्हारे मुख में जायेगी!

तुम बीड़ी नही पी पाओगे! तीन दिन के हिप्नोटिक प्रयोग में उसका एक भी बीड़ी पीना मुश्किल हो गया। बीड़ी पीने के स्वभाव के कारण उसने बहुत परेशानी महसूस की। 15 दिन बाद उसे सम्मोहन से मुक्त किया गया तो वह बीड़ी पीना छोड़ चुका था।

घ) माध्यम का दोनों पैर और गर्दन कुर्सी की ऊपरी हिस्से पर रखा गया, बीच में कमर और पीठ के नीचे एक चौड़ा टेबुल लगा दिया गया। फिर माध्यम को

हिप्नोटिक पास देकर सुला दिया गया एवं उसे सम्मोहन में लाकर आदेश दिया गया कि जिस तरह तुम सीधा लेटे हो, उसी हालत में पूरा शरीर तुम्हारा लोहे का हो गया! तुम्हारे ऊपर कितना भी वजन दिया जाय तो तुम न मुड़ सकते हो न टुट सकते हो !

पैर और गर्दन को कुर्सी के ऊपरी हिस्से पर ही टिका रहने दिया गया एवं बीच से टेबुल खींच लिया गया। टेबुल खीचने के बाद भी माध्यम बिल्कुल आनंद से कुर्सी के दोनों सिरा पर ही सोया रहा। फिर एक 12 साल के लड़के को उसके छाती पर खड़ा कर दिया गया। लेकिन उस व्यक्ति में थोड़ा भी अंतर नहीं आया।

वह लड़के के वजन के बाद भी वैसे ही सोया रहा। जबकि शरीर के बीच का हिस्सा नीचे से बिल्कुल खाली था और ऊपर से उस 12 साल के लड़के का वजन भी था। इस प्रयोग में उन्होंने हटे-कट्ठे स्वस्थ माध्यम का प्रयोग किया था। चित्र संख्या - 32 में देखें।

ङ) माध्यम को हिप्नोटिक निद्रा में देकर वे किसी बाहर रहने वाले का फोटो उसे दिखाकर उसे आदेश देते थे कि तुम, दिल्ली और कोलकता में वह व्यक्ति क्या कर रहा है, निरिक्षण कर बतावें!

माध्यम वहीं से योगनिद्रा में मुर्छित अवस्था में ही पन्द्रह सौ किलोमीटर दूर रहने वाले उस फोटो वाले व्यक्ति का ब्यौरा बताने लगता था। अंगुठे के नाखून पर भी उसका दृश्य माध्यम को दिखला देते थे।

च) वे माध्यम को योगनिद्रा में लेकर सम्मोहन की स्थिति में आदेश देते थे कि तुम्हारे पास बैठा व्यक्ति तुम्हारा दुश्मन है! तुम उसे गाली भी दोगे और चाटा से मारोगे भी !

मैं जो आदेश दे रहा हूँ, वह व्यक्त रूप से तुम्हे याद नहीं रहेगा! वह व्यक्ति जब सम्मोहन की निद्रा से उठा, तो अपने बगल में बैठे पुराने साथी को ही गाली-ग्लोज करते हुए एक थप्पर मार बैठा एवं अकचकाने लगा कि उसने ऐसा क्यों किया !

सरदर्द, पेट दर्द या किसी तरह का दर्द एक सम्मोहन के पास देने के बाद ही रोगी अपने आप को बिल्कुल स्वस्थ महसूस करने लगता था। लकवा का रोगी जो खाट पर लदकर आता था, कुछ देर के लिए अपने पैर पर चल पड़ता था।

हिस्टीरिया का भयानक से भयानक रोगी बिल्कुल ठीक होकर जाता था।

वे होमियोपैथ के अच्छे डाक्टर एवं अच्छे सितारवादक एवं हस्तशास्त्री भी थे। एक बार मेरे मझोले भाई साहब जो अंतर्मुखी साधक थे, भाग कर लखनऊ चले गये। घर में सभी ब्याकुल थे।

मेरे बड़े भाई साहब, सेल्फहिप्नोटिज्म में चले गये और साधना से उठने के बाद बता दिया कि ''लखनऊ में दीक्षा लेने मेरे मझोले भाई साहब भाग कर गये हैं! वहाँ गुरूदेव ने उन्हें वापस कर दिया और वे ट्रेन पर चढ़ चुके हैं! ट्रेन के निश्चित समय पर वे घर आ जायेगें'' एवं वे निश्चित समय पर घर आ भी गये।

जब उनसे पूछा गया कि लखनऊ में क्या हुआ, तो उन्होंने बताया कि गुरूदेव ने तीन प्रश्न किये!

(1) गंगा दर्शन किया ? (2) हिमालय दर्शन किया ? (3) गीता पाठ किया ? भाई साहब के नकारात्मक उत्तर देने पर उन्होंने कहा कि ये तीनों काम तुम पूरा करके आओ फिर शिष्य में शामिल करूँगा एवं दीक्षा दूँगा।

वे मेरे मझोले भाई साहब थे। उन्होनें आश्रम के एक जोगी की कहानी बताया कि जोगी ने एक जलते हुए बल्ब पर त्राटक करके बल्ब को पिघला कर गिरा दिया।

पीड़ा रहित प्रसव कराने एंव हिस्टीरिया के रोग को दूर भगाने में हिप्नोटिज्म द्वारा उन्हें महारथ हासिल था।

छ) वे अगले व्यक्ति को कुर्सी पर बैठा देते थे एवं उसको केहुनी तक हाथ पट करके टेबुल पर रखने को बोलते थे। उसे अपने आँखों में झाँकने को बोलकर, पोस्टहिप्नोटिज्म का पास देकर बोलते थे, कि यह हाथ लोहे का हो गया है!

कितना भी कोशिश कर लो तुम टेबुल से हाथ छुड़ा नही सकते, हाथ छुड़ाने की बात अलग, हाथ हिला भी नहीं सकते! अगला माध्यम भरपुर कोशिश करके भी अपने हाथ को न टेबुल से छुड़ा पाया न हिला पाया। फिर सम्मोहन से मुक्त करने पर ही वह टेबुल से हाथ उठा पाया।

ज) वे अलग-अलग सात विद्यार्थियों को हिप्नोटिज्म द्वारा बेहोशी की अवस्था में लाकर आदेश देते थे की तुम जब इस योगनिद्रा से जागोगे, तब भी तुम पर मेरे आदेश पालन करने का प्रभाव बना रहेगा!

हिस्टीरिया का भयानक से भयानक रोगी बिल्कुल ठीक होकर जाता था।

वे होमियोपैथ के अच्छे डाक्टर एवं अच्छे सितारवादक एवं हस्तशास्त्री भी थे। एक बार मेरे मझोले भाई साहब जो अंतर्मुखी साधक थे, भाग कर लखनऊ चले गये। घर में सभी ब्याकुल थे।

मेरे बड़े भाई साहब, सेल्फहिप्नोटिज्म में चले गये और साधना से उठने के बाद बता दिया कि "लखनऊ में दीक्षा लेने मेरे मझोले भाई साहब भाग कर गये हैं! वहाँ गुरूदेव ने उन्हें वापस कर दिया और वे ट्रेन पर चढ़ चुके हैं! ट्रेन के निश्चित समय पर वे घर आ जायेगें" एवं वे निश्चित समय पर घर आ भी गये।

जब उनसे पूछा गया कि लखनऊ में क्या हुआ, तो उन्होंने बताया कि गुरूदेव ने तीन प्रश्न किये!

(1) गंगा दर्शन किया ? (2) हिमालय दर्शन किया ? (3) गीता पाठ किया ? भाई साहब के नकारात्मक उत्तर देने पर उन्होंने कहा कि ये तीनों काम तुम पूरा करके आओ फिर शिष्य में शामिल करूँगा एवं दीक्षा दूँगा।

वे मेरे मझोले भाई साहब थे। उन्होनें आश्रम के एक जोगी की कहानी बताया कि जोगी ने एक जलते हुए बल्ब पर त्राटक करके बल्ब को पिघला कर गिरा दिया।

पीड़ा रहित प्रसव कराने एंव हिस्टीरिया के रोग को दूर भगाने में हिप्नोटिज्म द्वारा उन्हें महारथ हासिल था।

छ) वे अगले व्यक्ति को कुर्सी पर बैठा देते थे एवं उसको केहुनी तक हाथ पट करके टेबुल पर रखने को बोलते थे। उसे अपने आँखों में झाँकने को बोलकर, पोस्टहिप्नोटिज्म का पास देकर बोलते थे, कि यह हाथ लोहे का हो गया है!

कितना भी कोशिश कर लो तुम टेबुल से हाथ छुड़ा नही सकते, हाथ छुड़ाने की बात अलग, हाथ हिला भी नहीं सकते! अगला माध्यम भरपुर कोशिश करके भी अपने हाथ को न टेबुल से छुड़ा पाया न हिला पाया। फिर सम्मोहन से मुक्त करने पर ही वह टेबुल से हाथ उठा पाया।

ज) वे अलग-अलग सात विद्यार्थियों को हिप्नोटिज्म द्वारा बेहोशी की अवस्था में लाकर आदेश देते थे की तुम जब इस योगनिद्रा से जागोगे, तब भी तुम पर मेरे आदेश पालन करने का प्रभाव बना रहेगा!

जब मैं 1 से 10 तक गिनुँगा तुम पर निद्रा का गहरा प्रभाव आने लगेगा और जब-जब मैं तीन चुटकी बजाउँगा, तो तुम्हारी निद्रा टूटने लगेगी।

फिर उन्होंने सातो व्यक्ति को एक साथ बिठाकर पोस्टहिप्नोटिज्म दिया और 1 से 10 तक गिनते ही सातो के सातो घोर निद्रा में सो गये। फिर उन्हें आदेश दिया की "अब मैं तुम्हारे बुद्धि को तिक्ष्ण कर रहा हूँ। तुम्हारा स्मरण शक्ति बढ़ रहा है। 4 से 5 बजे सुबह में जो भी तुम पढ़ोगे तुम्हे याद रहेगा।

अब तुम्हारी स्मरण शक्ति काफी तेज हो चुकी है। तुम मेधावी छात्र की गिनती में अपने क्लास में गिने जाओगे!" यह शब्दतरंग (स्लोगन) इस तरह दे रहे थे जैसे संगीत के श्रृखला में शब्द हो।

फिर तीन बार चुटकी बजाते ही वे सातों के सात विद्यार्थी उठ कर बैठ गये। **यह विद्यार्थीयों को मेधावी बनाने का उनका सफलतम प्रयोग था। बहुत छात्रों ने इस प्रयोग से लाभ उठाया। वे बताते थे कि हिप्नोटिज्म के द्वारा विद्यार्थी की स्मरण शक्ति बढ़ायी भी जा सकती है एवं उन्हें मेधावी छात्रों की पंक्ति में खड़ा किया जा सकता है।**

किसी भी व्यक्ति को उसके पूर्व जन्म एवं भविष्य में ले जाया जा सकता है। (चित्र संख्या 33) में देखें। वे होमियोपैथ के डाक्टर तो थे ही। इसलिए वे सम्मोहन का साथ-साथ प्रयोग कर कठिन से कठिन बीमारियों को ज्यादा प्रतिशत तक ठीक कर पाते थे। उदर रोग, क्षय रोग, मानसिक असंतुलन, बुखार, ब्लड प्रेशर, हिस्ट्रीया वगैरह तो 80 प्रतिशत तक वे सफलता पूर्वक ठीक कर पाते थे।

एक बार पी०सी० सरकार से कलकत्ता में मिलकर, उनसे अपना शिष्य बना लेने का अनुरोध किया। पी०सी० सरकार ने एक अनूठा प्रयोग दिखाया जो अपने आप में अद्‌भुत था। पी०सी० सरकार एक बड़े कमरे में बैठे थे और आलमारियों में बहुत सारी पुस्तकें रखी थी। वो एक बड़े टेबुल के पीछे बैठे थे और सामने में मेरे भाई साहब को अलमीरा से कोई भी पुस्तक लेकर बैठ जाने को कहा!

भाई साहब ने एक अंग्रेजी की मोटी पुस्तक लेकर जहाँ-तहाँ से चुपचाप पढ़ना शुरू किया। लेकिन आश्चर्य की बात यह थी कि जो मेरे भाई साहब मन ही मन पढ़ रहे थे। पी०सी० सरकार धारवाहिक उसको वगैर किताब की ओर ध्यान दिए पढ़े जा रहे थें। अतः किसी के मन में उठते विचार को भी सम्मोहन विद्या के

द्वारा पढ़ा जा सकता है। हजारो किलोमीटर दूर बैठे भी किसी मनुष्य को सम्मोहन के दायरे में लिया जा सकता है। उन्होंने अमेरिका से 800 रू० में चार भौलूम किताब मंगाई थी। उस पुस्तक का नाम लैटेन्ट सोर्स आफ लाइट एण्ड हिट (Latent Source of Light & Hit) था।

उस समय मेरी उम्र किशोरा अवस्था में 16 साल के लगभग में थी। फिर भी मैंने उन पुस्तकों का अनुवाद हिन्दी में कराकर कुछ प्रयोग के द्वारा साधना करने का प्रयत्न किया था।

भाई साहब बतला रहे थे कि हिप्नोटिज्म की सफलता के लिए

1. अच्छे व्यक्तित्व का होना जरूरी है।
2. अच्छे लोगों के वातावरण में रहें एवं भोजन या नास्ता कहीं बाहर करना हो तो अच्छे रेस्तराँ में करें। राह चलते जहाँ-तहाँ भोजन नाश्ता न करें।
3. आवाज में गंभीरता हो एवं कर्कश आवाज न हो।
4. बातें ऐसे करें जो अगला आप पर कुछ ज्यादा विश्वास करने लगे।
5. अगले को विश्वास दिलाने पर ही आप अच्छे हिप्नोटाइजर हो सकते हैं। और आप के लिए कोई प्रयोग असंभव नहीं है।
6. हाथ मिलाते वक्त आप अगले व्यक्ति का हाथ अपने हाथ में लें, उसको अपना हाथ पकड़ने का मौका नही दें।
7. वस्त्र एंव चेहरे का रौनक ऐसा हो की दूसरे पर प्रभाव डाल सके।
8. हमेशा सम्मोहन करते वक्त अगला व्यक्ति खुली आँखों से आप के आँखों में झाँकता हो और आप दृढ़ संकल्पशक्ति के साथ अपना आँख उसके आँखों में डालकर सम्मोहन का आदेश दें।
9. न अपने मन में नाकरात्मक भावना हो और न माध्यम के मन में नाकरात्मक भावना आने दें। झूठ न बोलें, जहाँ, तहाँ बकवाश में न फँसें।
10. अच्छे व्यक्तियों में बैठे और अपना प्रभाव अलग-थलग बनाये रखें।

भाई साहब के व्यवहारिक ज्ञान के आधार पर जो प्रयोग मुझे बताया गया, वह कुछ प्रयोग गृहस्था आश्रम में रहकर भी किया जा सकता है। उन साधना को निम्नलिखित शब्दों एवं चित्र के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है।

चित्रों का चित्रण

मोमबत्ती एवं दीपक की लौ पर त्राटक

(चित्र संख्या-30)

शान्त चित से गद्देदार आसन पर बज्राआसान या पदमासन में बैठ जाय। दो फीट की दूरी पर एक टेबुल पर मोमबत्ती या तील के तेल का दिया जलाकर रख दें। अब अपलक कैन्डील के काले भाग पर दृष्टि को जमा कर निर्विकार भाव से देखने का प्रत्यन्त करें। दृष्टि जमाने में 30–30 सैकेण्ड से शुरू करके 2 मिनट से लेकर 5 मिनट तक का अवधि निर्विकार भाव से मोमबत्ती के लौ के काले भाग पर देखने का प्रत्यन करते रहना चाहिए। जब आँख से पानी आना शुरू हो तो आँख बन्द कर अपने को व्यवस्थित कर फिर त्राटक का प्रयोग करते रहना चाहिए।

कम से कम तीन महीने के बाद इस प्रयोग में सफलता आनी शुरू हो जायेगी। लम्बे समय के प्रयोग के बाद मोमबत्ती के लौ पर मनोवाँछित दूरस्थ चित्र को हम देख पायगें। अगर मोमबत्ती की लौ पर ऊँ का ध्यान का त्राटक करें तो वाद में इस प्रयोग को अन्तर्मुखी साधना आज्ञाचक्र पर ले जाने में बहुत सहयोग मिलेगा। पीपल का वृक्ष, केला का पत्ता एवं दीपक की लौ में सरोटोनिन नामक एक रसायन होता है। जो प्यूटुटरी ग्लैण्ड के अध्यात्मिक रसायन के श्राव को बढ़ा कर हमें अध्यात्म के आर्श्यजनक संसार में प्रवेश दे देता है। गौतम बुध्द्र के बोधि वृक्ष का भी कुछ इसी तरह का महत्व है। क्योंकि बोधि वृक्ष पीपल के श्रेणी का ही है।

दर्पण में आज्ञाचक्र पर प्रयोग

(चित्र संख्या –31) :-

यह प्रयोग भी सम्मोहन के तैयारी के लिए बहुत ही उपयोगी है। लेकिन इसमें आयना जिसका साइज 7" x 9" ईन्च का होना चाहिए, बिल्कुल दूसरे काम से अलग केवल अपने आज्ञाचक्र पर त्राटक के लिए रखना चाहिए।

दर्पण को 3 फीट की दूरी पर अपने चेहरे के सीध में टाँग देना चाहिए। फिर सुखासन, ब्रजासन या पदमासन या जिस किसी मुद्रा में बैठकर या खड़े होकर अपने चेहरे पर दोनो भौहों के बीच, अपने आज्ञाचक्र पर एकटक ध्यान लगाना चाहिए। यह प्रयोग थोड़ा कठिन है, क्योंकि अपने आज्ञचक्र पर ध्यान लगाना थोड़ा कठिन काम है। आँख में तुंरत पानी आ जायगा या सर दर्द करने लगता है। अपने शरीर के

आत्मनिरीक्षण में भी आज्ञाचक्र के रास्ते साधक किसी भी शरीर के भीतरी अंग में घुसकर, अपने दिव्यदृष्टि के द्वारा वहाँ का निरीक्षण कर पाते हैं।

तीन महीने के साधना प्रयोग के फलस्वरूप इस प्रयोग की प्रतिक्रिया सामने आना शुरू हो जाता है। कभी-कभी अपना चेहरा गायब होकर मन की आन्तरिक कल्पना में बने चित्र आयना पर आ जाते हैं। दर्पण से अपने चेहरे का गायब होना सफलता के नजदीक आने का संकेत है।

कई बार ऐसे दृश्य भी सामने आते हैं, जिसकी हम कल्पना भी नही कर पाते। लेकिन अपने आत्मनिरीक्षण को जब नियंत्रित करते हैं तो, जो दृश्य हम देखना चाहते है, वही आने लगता है।

यह प्रयोग बहुत ही प्रभावकारी है, अगर क्रोधित से क्रोधित व्यक्ति या सांढ़ पर भी नजर गड़ा कर शान्त होने का आदेश दे, तो वह तुंरत शान्त हो जांयगा। कठिन से कठिन काम भी अगर नम्रता पूर्वक उसे आज्ञा देगें, तो वह कर पायगा।

आपकी साधना में आपके चेहरे का गायब होना आपके आत्मप्रकाश का आयना पर पड़ना है। आप अगर निर्जिव वस्तु के द्वारा भी किसी को सम्मोहित करना चाहेगें, तो निर्जिव वस्तु भी आपके सम्मोहन प्रयोग को पकरेगा।

आप किसी के रूमाल को या अंगुठी को अपने सम्मोहन में लेकर आदेश दे दें कि, जो भी उस अंगुठी या रूमाल को देखेगा वस्तु के मालिक के हित में सोचने लगेगा तो वैसा ही होने लगेगा! कोई भी व्यक्ति आपके सम्मोहित आज्ञा को टाल नहीं पायगा। आप पशु-पक्षी पर भी अपने इस सम्मोहन का प्रयोग देख सकते हैं। बगीचे में पेड़ पर बैठा पक्षी पर भी अगर उस पर आँख गड़ा कर आदेश करेगें तो, वह आपके हाथ पर आकर बैठ जायगा।

इस प्रयोग को हम जब लम्बे समय तक करते हैं, तो तुर्यावस्था तक की स्थिति आ सकती है। इसे कालजयी साधना के रूप में भी देखा जा सकता है। ऊपर जितने प्रयोग बताये गये है सबमें उच्चकोटी की साधना है।

सेल्फ हिप्नोजिस में भी आयना का प्रयोग बहुत कारगर है।

रूमाल या अंगूठी पर या किसी निर्जिव वस्तु पर आपका सम्मोहन तीन महीने तक पकड़े रख सकता है, अगर उसे पानी में नहीं घोया जाय।

आज्ञाचक्र पर अर्न्तमुखी साधना

यह प्रयोग भी अन्तर्मुखी साधको के लिए बहुत प्रभावकारी है।

हम हवादार स्वच्छ कमरे में सुविधापूर्ण आसन ब्रजासन, सुखासन या पद्मासन में उत्तर की तरफ मुँह करके बैठ जाते हैं।

साम्भवी मुद्रा में अपलक अपने नाक की नोक को देखने का प्रयास करते हैं। ध्यान की मुद्रा में ही अपने पुतलियों के द्वारा आज्ञाचक्र पर ध्यान मिलाने की कोशिश करते है। ऐसा महसूस करते हैं, कि मेरे दोनो कौरनियाँ से ऊँ की श्रृखलावत ऊँ श्रंखला आज्ञाचक्र पर अवस्थित सूर्य में प्रवेश कर रहा है। दोनों आँख की पुतलियाँ और आज्ञाचक्र दोनो भौहो के बीच में त्रिकोण सा बनाता महसूस होता है।

''ऊँ'' दोनो पुतलियाँ से निकल कर त्रिकोण बनाते हुए आज्ञाचक्र पर जो हमने सूर्य बिन्दु की कल्पना की है, उसमें अवाधगति से समा रही है। यह साधना जब हम आधा घंटा से ऊपर प्रतिदिन कर पायेगें, तो हममें दिव्यदृष्टी की क्षमता आ जायगी और हम त्रिकालदर्शी हो जायगें।

ध्यान में आपको आज्ञाचक्र पर हिलता डुलता नेत्र दिखाई दे सकता है। आज्ञाचक्र पर सूर्य बिन्दु कभी नीला, काला, लाल, हरा एवं सिद्ध हो जाने पर त्रिकोण में प्रकाश बिन्दु की तरह दिखाई देगा। यह पूर्ण सिद्ध हो जाने की सूचना है। माध्यम आपके किसी भी सम्मोहित आदेश को नही टाल पायगा। आँख बन्द करते ही भूत, भविष्य और वर्त्तमान को अपने आज्ञाचक्र के पटल पर देख पायेगें।

किसी भी प्रयोग में ध्यान रखे कि ध्यान के केन्द्र बिन्दु के अलावे कोई मंत्र का जाप या पाठ नहीं करें। मंत्र का जाप आपके ध्यान को बिखंडित करता रहेगा।

जितने भी प्रयोग बताये गये हैं। सब ध्यान को केन्द्रित कर मन को खाली करके एकाग्र होने के प्रयोग हैं। अगर अन्तर मन की चंचलता स्थिर होकर आपके संकल्प शक्ति के अनुरूप निश्चित केन्द्र बिन्दु पर तीर की तरह लगती है तो, वही इच्छाशक्ति आपकी कार्यशक्ति हो जाती है और अगला कोई भी माध्यम उसको कार्यरूप देने को बिबश रहता है। **पहले हम कैन्डिल और शक्ति चक्र का प्रयोग पूरी तन्मयता से तीन माह तक करें। एक से चौदह नम्बर तक का कार्यरूप साधना, जो कुण्डलिनी जागरण की तैयारी में बताया गया है। वह भी पूर्ण तनमयता से प्रतिदिन करना है।**

सम्मोहन द्वारा पूर्व जन्म में जाना

(चित्र संख्या-32)

आजकल टेलीविजन में पूर्व जन्म में ले जाने कि क्रिया को बहुत चाव से दर्शक देखते हैं। लेकिन यह ज्ञान जब हम कुण्डलिनी जागरण या सम्मोहन (हिप्नोटिज्म) द्वारा अपने आज्ञाचक्र के भेदन से प्राप्त कर लेते हैं, तो साधक स्वयं को भी एवं माध्यम को भी कई जन्मों के पिछले दृश्य तक ले जा सकता है एवं भविष्य के कई जन्मों तक का दृश्य देखा जा सकता है। (चित्र संख्या-33)

पहले ही बर्णन किया गया है, कि कनपट्टी से चार अंगुल अन्दर मस्तिष्क में लिपटी दो काली पट्टी है। पहली पट्टी बाहर की स्मृति रखती है एवं दूसरी पट्टी पिछले जन्मों एवं अगले जन्मों का लेखा-जोखा कर्मबंधन के हिसाब से रखती है।

अगर हमारे आज्ञाचक्र द्वारा पिनियल (ग्रन्थि) ग्लैण्ड को, दूसरी काली पट्टी पर ध्यान केन्द्रीत करने में सफलता मिल जाती है, तो पूर्व जन्म एवं अगले जन्म के दृश्यपटल में स्वयं जाना एवं साधक को ले जाना बिल्कुल आसान हो जाता है।

महावीर ने अपने प्रयोग में यह बहुत सफलता एवं आसानी से दिखलाया था। वे चौबिस जन्म पीछे तक की स्मृति को अपने योगमाया से प्रस्तुत करने में सफल हुए। एक जन्म में कृष्ण के वैवाहिक समारोह में शामिल होने की भी व्याख्या उन्होंने कर डाली। जो लगभग पाँच हजार पहले के जन्म के कहानी को दर्शाता है।

सूर्य त्राटक

(चित्र संख्या-35)

सूर्य त्राटक को अन्तरत्राटक के रूप में भी किया जा सकता है। सुबह में आकाश में जब लालिमा आने लगता है। उस समय हमें गद्देदार आसन पर बैठ कर लोम-विलोम एवं प्राणाकर्षण प्राणायाम की मुद्रा मे ध्यानस्थ होना चाहिए।

जब सूर्य पाँच मिनट ऊपर चले जाय तो आँखों को सूर्य पर केन्द्रीत करना चाहिए। एक से दो मिनट होते-होते सूर्य के चारो ओर बिखरे प्रखरता समाप्त होने लगती है।

सूर्य अपने गोले के अन्दर प्रकाशहीन दिखने लगता है। अब शाम्भवी मुद्रा में आँख को आहिस्ते से बन्द कर सूर्य के सिमटते प्रकाश के गोले को दोनों नेत्रों की बीच आज्ञाचक्र पर ध्यान मुद्रा में अवस्थित करें।

इस प्रयोग में ज्यादा रोशनी से बचने के लिये आँख पर ढीला-ढाला काले पट्टी का प्रयोग करना चाहिए। वैसे काले पट्टी का प्रयोग जहाँ भी कुछ ज्यादा रोशनी में अभ्यास करने की परिस्थिति सामने उपस्थित हो तो जरूर करना चाहिए। दोनो हाथ की तलहटी सूर्य की प्रकाश किरण की ओर रखें। इस तरह प्राणशक्ति ग्राहकता हथेली के ग्रह ग्रंथि द्वारा प्राप्त होने लगेगा।

पहले सूर्य के प्रतिविम्ब, एक से अधिक तीन-चार भी बन सकता है। लेकिन अभ्यास करते-करते केवल एक प्रकाश प्रतिविम्ब आज्ञाचक्र के ध्यान केन्द्र पर स्थिर हो जायगा। पहले काला, हरा के घेरे में सूर्य का प्रकाश समझ में आएगा, बाद में लाल, पीला और साधना सफल होने पर प्रकाशवान सूर्य आज्ञाचक्र के साधना केन्द्र पर स्थित हो जायगा।

जब 30 मिनट तक सूर्य साधना का केन्द्र आज्ञाचक्र पर स्थित हो जाय, तो यह प्रयोग पूर्ण सिद्ध माना जायगा। आपके व्यक्तित्व का ओरामंडल का विकास चेहरे पर तेज के वल्य के रूप में स्पष्ट महसूस होगा। आँखों में दिव्य ज्योति का चमक चला आयगा और आपका सम्मोहन का चमत्कार बहुत प्रखरता से सामने आयगा। (चित्र नं० 35) में दर्शाने का प्रयास किया गया है।

त्राटक द्वारा सूर्य के ध्यान की विधि
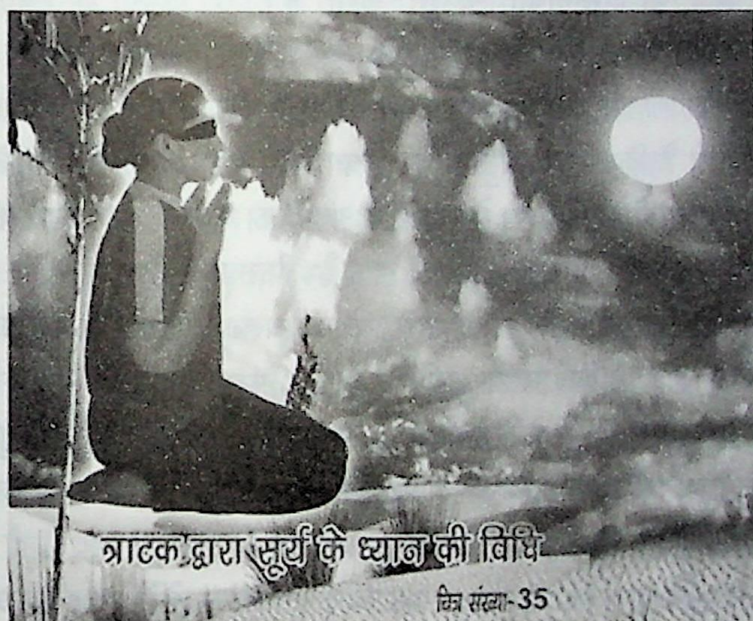
चित्र संख्या-35

आत्म सम्मोहन (सेल्फ हिप्नोटिज्म)

इसमें साधक अपने आप को भी सम्मोहन की अवस्था में लाकर अपने स्वास्थ एंव दूरदर्शान का प्रयोग कर सकता है।

1. योगनिद्रा में आकर
2. आयना पर अपने भृकुटि पर ध्यान कर अपने आप को आदेश करता है कि मैं कुछ निश्चित समय के लिए योगनिद्रा में जा रहा हूँ।
3. शक्ति चक्र पर भी ध्यान देकर अपने आप पर सम्मोहन का प्रयोग कर सकता है। (चित्र संख्या-37 एवं 38) पर।

स्व सम्मोहन वास्तव में अपने आप को भी स्वस्थ एवं निर्विचार करने का तरीका है। योगनिद्रा की स्थिति में आकर अपने अर्न्तमन को भावना देना है कि हमें नींद आ रही है। यह भावना भी देना है कि इस कृत्रिम निद्रा में आपको क्या जानकारी चाहिए और आपकी निद्रा कितने देर में टूटेगी। यह कृत्रिम निद्रा न अपने लिए और न माध्यम के लिए किसी के लिए हानिकारक नहीं है।

बल्कि कृत्रिम निद्रा से वास्वविक निद्रा में जाने का मौका मिले तो शरीर और मन दोनो बहुत हल्का हो जाता है एवं निद्रा से उठने पर हम अपने आप को प्रसन्नचित महसूस करते हैं।

पास देना :- जब हम 1 से 14 न० तक का योगाम्यास करते होते है तो, उदगित प्रणायाम के बाद दोनो हाथो को एक फीट की दूरी पर रखकर यह भावना करते हैं कि, मेरी प्राणऊर्जा का बहाब, मेरी दोनों हाथो कि अंगुलियो एवं तलहटी के मध्य में आ रही है। मेरे ऊर्जा के बहाव का कम्पन्न दोनो हाथों पर काफी शक्तिशाली रूप में आने से हाथ कॉपने लगा है। फिर उन्हीं ऊर्जावान हाथ कम्पन्न को अंगुलियो द्वारा अपने चेहरे और शरीर के मर्मस्थल पर फेरते हैं। यह क्रिया तीन वार करनी चाहिए। (चित्र संख्या-36)

ठीक इसी तरह दोनो हाथो की तलहट्टी को तान लेना चाहिए अंगुलियों में दूरी रखते हुए, और भावना करना चाहिए कि प्राण ऊर्जा दोनों हाथ की तलहट्टी के मध्य एवं अंगुलियो के छोड़ पर तीव्रगति से प्रवाहित हो रही है। हाथ में दो से तीन मिनट होते होते ऊर्जा का प्रवाह बहुत बढ़ जाने से कम्पन्न होने लगता है। अब इसी ऊर्जा के प्रवाह को सम्मोहन की विधि अपनाते हुए माध्यम पर किसी काम या

रोगनिवारण हेतु केन्द्रीत कर, फेंकते हैं। जो माध्यम के अन्तर्मन पर काफी गहरा प्रवाह डालता है एवं माध्यम किसी भी आज्ञा को टाल नहीं सकता है। ऐसे पास देने की क्रिया दो तीन वार से ज्यादा एक दिन में नहीं करना चाहिए। ऊर्जा का काफी ह्रास होने लगता है।

सेल्फ हिप्नोटिज्म में जाने के लिए एक अभ्यास नियमित करना चाहिए जो योगनिद्रा की तरह ही है। जो कुण्डलिनी जागरण के क्रियारूप में दस नं० में बतायी गयी है। हम योगनिद्रा के क्रिया को अपनाते हुए अपना एक हाथ अलग समकोण की सीध में रखते हैं एवं भावना करते हैं कि वह हाथ स्वतः उठकर छाती पर चला आया।

दूसरे हाथ को भी अलग सीध में रखते हैं और भावना करते हैं कि वह हाथ भी उठकर छाती पर चला आया। कुछ महीने अभ्यास में ही हाथ भावना करते ही स्वतः छाती पर चला आता है। यह भी सेल्फटिप्नोटिज्म के सफलता के श्रेणी में है।

सम्मोहन सिद्धि :- भाई साहब किस प्रेरणा के वंशीभूत होकर इस सम्मोहन विद्या में सफलता प्राप्त किये, कुछ इस तरह बता रहे थे।

वे दरभंगा के लहेरियासराय स्थिति चौक पर रहकर बी०ए० की पढ़ाई कर रहे थें। एक मंजा हुआ सिद्धहस्त मदारी चौक पर अपना तमाशा दिखा रहा था। उसने बहुत कौतुहल का तमाशा दिखलाया। लेकिन दो तमाशा उनको बहुत प्रभावित किया।

मजमा गोलाकार में बीच की कुछ ज्यादा दूरी छोड़ कर लगा था। बीच में रस्से का गोलाकार बंडल रखा था और बंडल के पास एक छोटा लड़का बैठा था। मदारी चारों ओर घूम-घूमकर पहले दर्शक को बाँसुरी बजा-बजाकर सम्मोहित कर दिया। सम्मोहन का कार्य वह कई तमाशा दिखाकर पहले से भी कर रहा था।

मदारी बाँसुरी बजाता हुआ रस्से के पास आया। रस्से के बंडल से जो गोलाकर छल्ले के रूप में रखा था एवं छोड़ पकड़कर बहुत जोर से आसमान तक उछाल दिया एवं बोला कि "रस्सा आसमान में बहुत ऊपर तक जा चुका है। फिर उस छोटे लड़के को सम्मोहन की अवस्था में ही आदेश दिया कि वह उस रस्से पर चढ़ जाय!" लड़का रस्से पर चढते हुए आसमान में बिलीन हो गया।

कुछ अन्तराल पर बाँसुरी बजाते हुए मदारी ने लड़के को पुकारा। लड़का रस्सी से उतरता हुआ फिर जमीन पर आकर खड़ा हो गया। रस्सा फिर बंडल के रूप में जमीन पर सिमट कर रखा नजर आने लगा।

दूसरे खेल के लिए मदारी ने बाँसुरी बजाते हुए लड़के को रस्से के पास ही बीच खेल के मैदान में हाथ का पास देते हुए उसके आज्ञाचक्र पर मस्तक से अपना अंगूठा सटा दिया। लड़का बेहोश सा होकर शान्त चित होकर सोने की मुद्रा में पड़ा रहा।

मदारी बाँसुरी बजाता हुआ गोलाई में बैठे एवं खड़े दर्शक के चारों ओर घूमकर सबको अपने सम्मोहन की परिधि में ले लाया। अब मदारी जिस व्यक्ति के सामने खड़ा होकर बाँसुरी बजाता था। बीच में बेहोश शान्त लड़का उसके मन में उठते प्रश्न का जवाब देने लगता था।

मदारी सामने खड़ा व्यक्ति से कोई प्रश्न नही पूछता था। लेकिन उसके मनोभाव का संदेश मदारी के द्वारा पढ़ लिया जाता था। जो माध्यम लड़के के सम्मोहन सम्बन्ध से जुड़े होने के कारण लड़का अपने दृश्यपटल पर जिस व्यक्ति के सामने मदारी खड़ा हो जाता था, उसके मनोभावो को पढ़कर वह लड़का व्याख्या करने लगता था।

इन कौतुकों को देखकर हमारे भाई साहब बहुत प्रभावित हुए और वे उस मदारी के पीछे जो वास्तव में बहुत उच्चश्रेणी का सम्मोहनकर्ता था, रात-दिन महिनों पीछे पड़े रहे। उस पर आने वाले दैनिक खर्चा भी वे वहन करते रहे।

कुछ सम्मोहन के सिद्धान्त को उसने प्रायोगिक रूप से उन्हें समझाया जिसकी व्याख्या पीछे की गयी है, एवं विशेष ज्ञान वे अमेरिका से पुस्तक मँगाकर किये। इसकी चर्चा भी की गई है।

मदारी के साथ रहते एक दिन उन्होंने अपने क्लीक कैमरा से रस्सी ऊपर फेंकने एवं बच्चा के रस्सी पर चढ़कर गायब होने का फोटोग्राफी लिया ।

फोटो में देखा कि न रस्सा ऊपर आकाश में गायब हुआ और न लड़का उस पर चढ़ा। रस्सी का बंडल ज्यों का त्यों बीच में पड़ा था एवं लड़का ज्यों का त्यों वहाँ बैठा था केवल मदारी की बाँसुरी बजाने का दृश्य कैमरा में आ रहा था। यानी सारा खेल दर्शक को सम्मोहित करके दिखलाया जा रहा था। सम्मोहित दर्शक वहीं देख रहे थे, जो सम्मोहनकर्ता दिखाना चाहता था।

सम्मोहनकर्ता के प्रयोग से यह बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि पूरे समूह को भी सम्मोहित कर अपने मनोनुकूल दृश्य दिखलाया जा सकता है एवं किसी के मनोभाव को भी अपने सम्मोहन के चुम्बकीय क्षेत्र में लेकर पढ़ा जा सकता है।

सम्मोहन अभी बहुत चरम उत्कर्ष में विदेशों में, प्रयोगात्मक रूप में लाया जा रहा है। अमेरिका में इस पर काफी रिसर्च चल रहा है। मनोविज्ञान चिकिसा एवं सर्जरी चिकित्सा में इसका प्रयोग बहुत सफलतम रूप से किया जा रहा है।

अभी चांद पर या अन्य उपग्रहों पर मनुष्य को भेजने के लिए इसी सम्मोहन के प्रयोग में टेलीपैथी द्वारा ट्रेनिंग वैज्ञानिकों को दिया जा रहा है। क्योंकि मशीन तो फेल भी कर सकती है।

लेकिन टेलिपैथी फेल करने की कोई सम्भावना नहीं है। पृथ्वी पर उतरी ध्रुवों के यात्रा में भी जब यंत्र फेलकर गये, तो इस टेलीपैथी को पूर्ण सफलता से, विचार सम्प्रेषन को हजारों मील दूर से पकड़ा जा सका।

भारत में भी यह राजस्थान के माउन्टआबू एवं आसाम के कामरूप कामाख्या में विकसित रूप में है। लेकिन दोनों जगह इसका प्रयोग जन कल्याण के हित में नहीं है। कुछ विकृत रूप में ही है।

लेकिन सम्मोहन एवं प्राण उपचार का प्रयोग हम जनकल्याण के हित में करें, तो अपने अध्यात्मिक लाभ के अलावे मानव समाज का बहुत कल्याण हो सकता है।

पौराणिक कथाओं में विष्णु के हाथ में चक्र एवं महाभारत काल में कृष्ण के हाथ में चक्र की चर्चा आती रही है। जो आवाहन मात्र से उनके हाथ की उंगलियों पर चला आता था। सारी उंगलियाँ बन्दकर केवल तर्जनी पर चक्र का प्रवाह दिखलाया गया है।

षट्चक्र भेदन के प्राणऊर्जा के कारण जो प्राणशक्ति हममें विकिरण हो रही है, जिसकी चर्चा पुस्तक में कई जगह किया गया है।

वही शक्ति जब आज्ञाचक्र द्वारा केन्द्रीत होकर हाथों की ऊँगलियों के पोड़ से निकलती है, तो चक्रवात के रूप से ऊंगलियों के पोड़ तक आकर फिर सीधी होकर किसी भी रोगी या मनुष्य के ओरामंडल या प्राणऊर्जा को भेद डालती है। रामायण में लक्ष्मण का लक्ष्मण रेखा खींचना भी इसी ऊर्जा का संकेत है।

बंदूक में भी गोली पहले चक्रवात के रूप में चलती है, फिर नाल से निकलते निकलते सीधी होकर अपने गन्तव्य स्थान को भेद डालती है।

कोई भी श्राप जब ऋषिगण देते हैं, तो जल लेकर श्रापित व्यक्ति पर फेंकते हैं। उनके प्राणऊर्जा का चक्रवात, ऋषिगण या कुण्डलिनी साधक के संकल्पशक्ति जो चित्त्शक्ति होते हुए आत्मशक्ति का रूप ले लेती है ।

वह अगले मनुष्य या किसी प्राणी के प्राणशक्ति और ओरामंडल को अव्यवस्थित कर, शरीर के कर्मबंधन पड़ डाल देती है। प्राणी उसके आवेग को सहन नहीं कर अपने कर्मबंधन पर उसको भोगता है।

यह प्राणऊर्जा का चक्रवात हर मनुष्य में प्राकृतिक रूप से हाथ की तहलटी एवं उंगली के पोड़ों से निकलता रहता है। **इसी अभ्यास की चर्चा क्रियात्मक रूप से पुस्तक में करने का प्रयास किया है।**

त्राटक जो सम्मोहन विद्या प्राप्त करने का मुख्य मार्ग है। उसकी चर्चा अष्टांग योग के आग्नेय धारणा में एवं षट्कर्म में है। यह योगियों की साधना का मार्ग है। बहुत सारे प्रयोग की चर्चा पुस्तक में की गई है।

लेकिन साधु संत जो निर्जन जंगल में रहते हैं, अपने धुनी लगाने में प्रज्चलित अग्नि की लौ पर त्राटक का साधना कर, उसपर मन की गति को बिल्कुल स्थिर कर, मनःशक्ति को आत्मशक्ति के रूप में प्राप्त कर तूर्या अवस्था तक प्राप्त कर लेते हैं।

उसी अग्नि की लौ पर जो दृश्य जहाँ का देखना चाहते हैं, देख लेते हैं। जो संदेश जहाँ भेजना चाहते हैं, चाहे हजारों मील दूर हो, भेजने में सक्षम होते हैं। चूंकि अग्नि देवता का रूप है। इसलिए इसके लौ पर कोई भयानक दृश्य आकर साधक के साधना को अव्यवस्ति नहीं कर पाता है।

इसी की श्रेणी में दीपक पर, मोमबत्ती पर, सूर्य पर त्राटक का जो प्रयोग प्रायोगिक रूप से लिखा गया है। वह बहुत निरापद है। चूंकि यह भी अग्नि देवता का स्वरूप है।
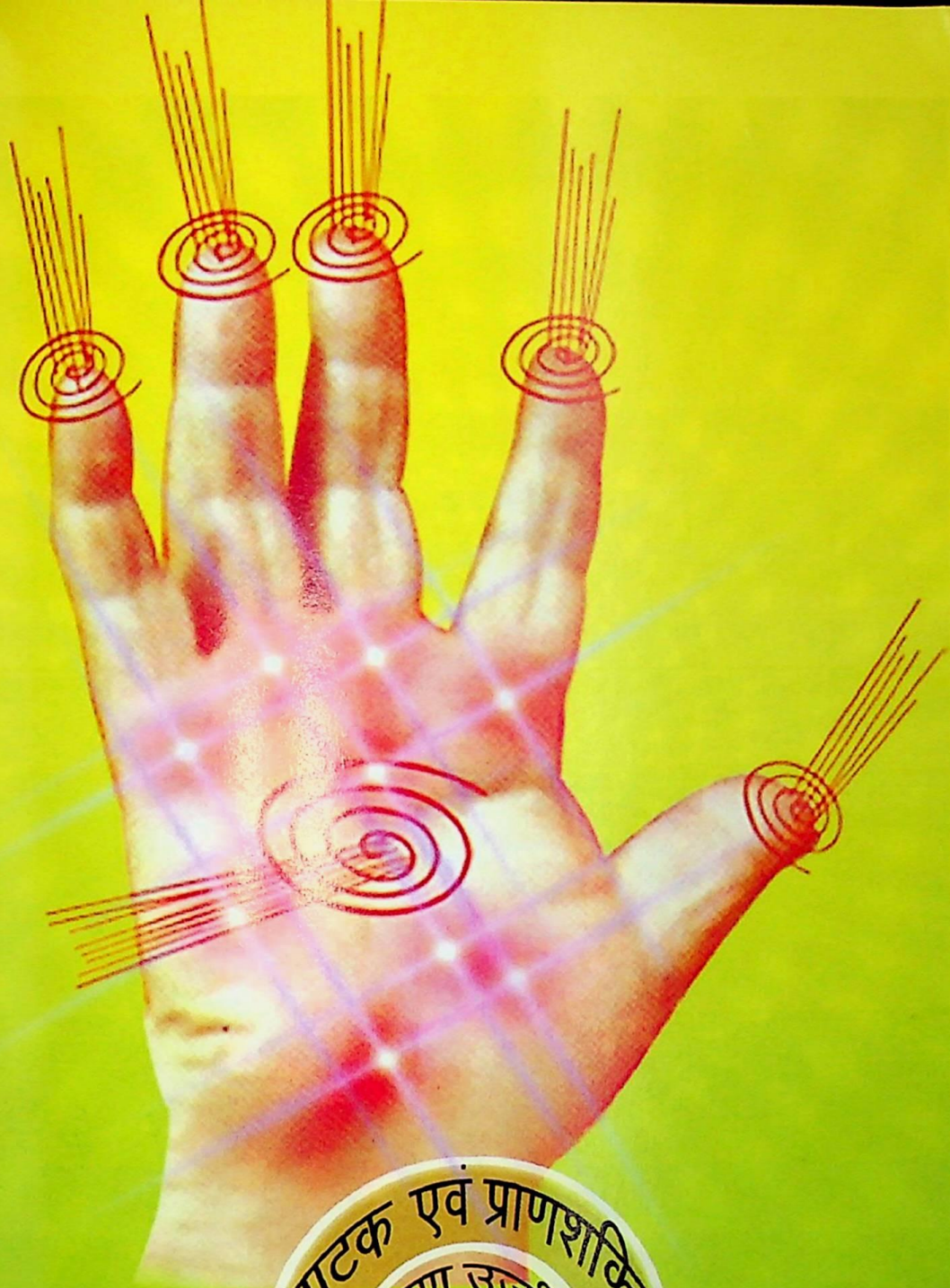
चित्र सं० - **36**
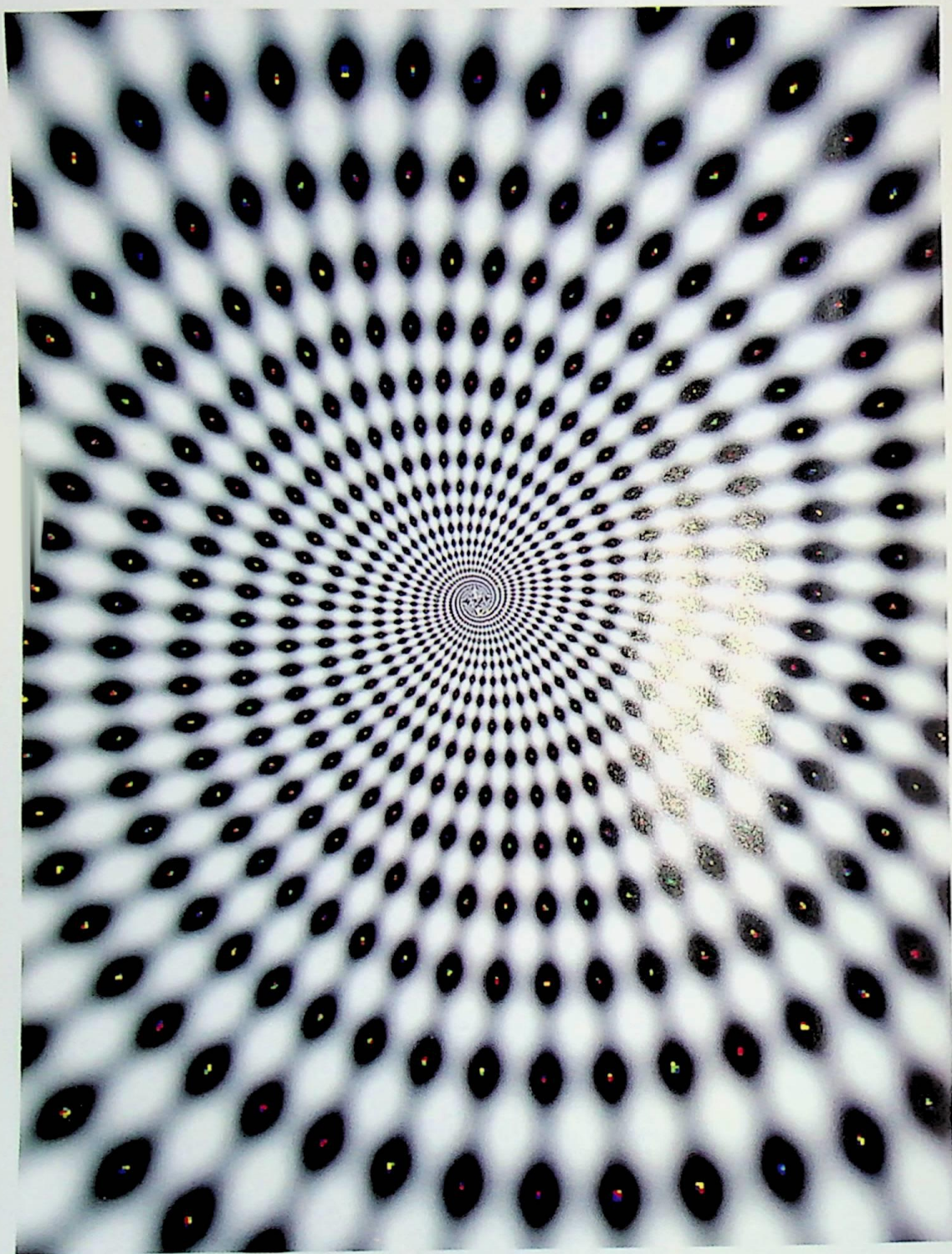
शक्ति चक्र

चित्र संख्या- 37

शक्ति चक्र

चित्र संख्या-38
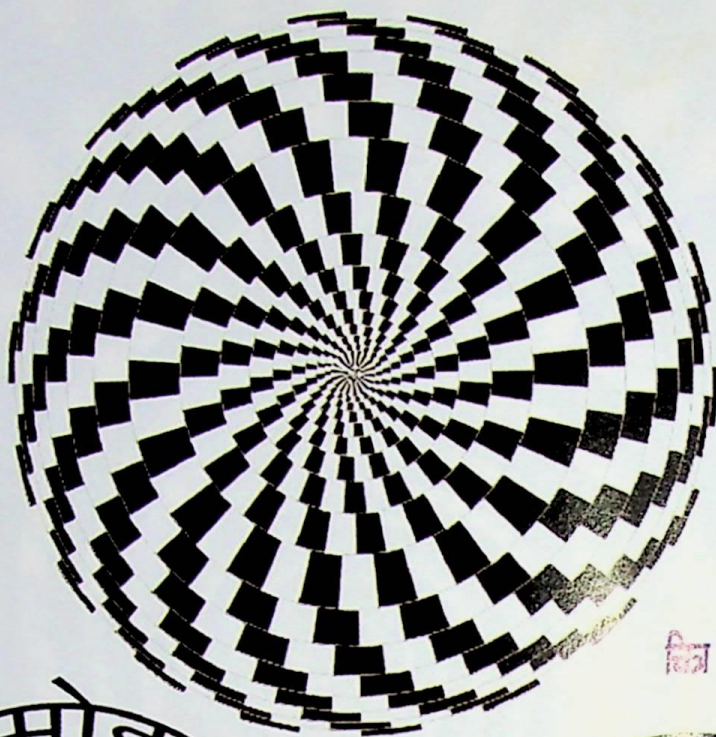
चित्र संख्या- 39

चित्र संख्या- 40

चित्र संख्या- 36

यह चित्रण हाथ के ऊँगलियों एवं हथेली के मध्य द्वारा, प्राण ऊर्जा के तरंग गति नितृसर्गित होने के स्वरूप में है । हमारे शरीर के सप्त धातु एवं ग्रन्थियों के श्राव से उत्पन्न प्राण ऊर्जा अपना गति सम्पूर्ण शरीर के नस नाड़ियों एवं उत्तक ग्रंथियों में बनाये रहती है। लेकिन उनके निष्कासन के कुछ मुख्य बिन्दु भी होते हैं ।

जैसे दोनों नेत्र, इन्द्रिय, हाथ के अंगुलियों का पोर बिन्दु एवं तलहटी का मध्य भाग, प्राणवायु द्वारा श्वसन प्रणाली इत्यादि।

आज्ञा चक्र से ज्यादा प्राण ऊर्जा प्रकाश बिम्ब की तरह निकल सकती है, अगर हम आत्म केन्द्रीत होकर, अन्तरमन के सिंहासन पर विराज रहे हों ! जिसके आधार पर सम्मोहन विद्या की नींव पड़ी है। इसी सम्मोहन विद्या में हाथ के प्राण ऊर्जा का प्रयोग चुम्बकीय तरंग की तरह अगले प्राणी पर किया जाता है ।

आशिर्वाद देने में हमारी भावना का तरंग जो हृदय से उठती है, उसकी प्राण ऊर्जा हमारे भावानात्मक स्वरूप में प्राणी को तरंगायित करती है एवं एक सुखद अनुभूति में हमें ले जाती है ।

उसी तरह श्राप देने में भी हाथ में जल लेकर अभिमंत्रित कर, अगले प्राणी पर फेंका जाता है, तो वह उसके कर्मबंधन पर पड़ जाता है ।

जन्म की श्रृंखला में जब रज और वीर्य का मिलन हो, क्रोमोरिक डिभिजन होता है, तो सबसे पहले दोनों हाथ का स्नायूतंत्र निर्मित होता है एवं कर्मबंधन के अनुरूप उसपर दिव्यज्योति बिन्दु के रूप में ग्रन्थि एवं भाग्यरेखा का निर्माण होता है

दोनो हाथ के स्नायुतंत्र के साथ मस्तिष्क तंत्र का निर्माण हो, सम्पुर्ण शरीर का स्नायूतंत्र निर्मित होने लगता है एवं गर्भस्थ शिशु माँ के नाभिकुण्ड द्वारा प्राण ऊर्जा ग्रहण करने लगता है ।

हम अगर कर्मक्षेत्र में आते हैं, तो दोनो हाथ ही, किसी भी कार्य को करने के लिए हमें वरदान स्वरूप में महसूस होता है । इच्छाशक्ति तो मनःशक्ति से उठती है ! लेकिन कर्म तो हम दोनों हाथों से करते हैं । चाहे दान, धर्म, पुण्य का कोई कार्य कर रहे हों ! चाहे हत्या, बलात्कार, अत्याचार का कोई कार्य कर रहे हों !

हाथ शरीर का ऐसा यांत्रिक प्रभाग है, जो कर्मप्रधान में हमारी प्रधानता, अधोगति या ऊर्ध्वगति के रूप में बनाये हुए है। यह यंत्रवत् शरीर तो प्राण ऊर्जा द्वारा ही संचालित है ।

लेकिन धमनियों एवं नस, नाड़ीयों में रक्त प्रवाह, प्राणवायु के माध्यम से ही प्राण ऊर्जा पहुँचाती है एवं सारे शरीर का स्वीच बोर्ड (दवाब बिन्दु) दोनों हाथ के ग्रन्थियों में है । जो चित्र में स्टार (नक्षत्र) की तरह प्रकाशित दिखलाया जा रहा है एवं विज्ञान सम्मृत सिद्धान्तों ने भी इसको पूर्ण सत्य माना है ।

इन दवाब बिन्दुओं का संबंध, सम्पूर्ण शरीर के यांत्रिक गति पर रिफ्सोलीजी (उलटी प्रवाह गति) के सिद्धानत पर, प्राण ऊर्जा को पहुँचाने की गति हैं । जहाँ क्षमता एवं जरूरत से कम प्राण ऊर्जा पहुँचती है, वहाँ इन दवाब बिन्दुओं पर दबाब दे-दे कर प्राण ऊर्जा पहुँचायी जाती है

हमारे स्पर्श ज्ञान में हाथ की बहुत बड़ी भुमिका है । हम अपने संवेदनशील भावना को बच्चो, शिष्यों के मस्तक पर हाथ रखकर उनके अन्दर अपने प्राण ऊर्जा के भावनात्मक प्रवाह को केन्द्रीत कर लेते हैं एवं उनके भावना के निर्मलता में सहयोगी होते हैं । पत्नी एवं प्रेमिका के भावनात्मक तरंग में भी हाथ द्वारा सहलाने की क्रिया, प्रेमप्रसंग को आनन्ददायक स्थिति में ले आती है ।

हम कोई संकल्प लेना चाहते हैं, तो हाथ कलेजे पर चला जाता है, जहाँ हृदय के धड़कन द्वारा हमारी भावना दृढ़ होती है । कर्मो का लेखा-जोखा हस्तशास्त्री हाथ पर अंकित रेखाओं से बता पाने में सक्षम होते हैं ।

प्रार्थना की भावनात्मक मुद्रा में हमारा दोनो हाथ जुड़ जाता है । जिससे हमारी प्रार्थना का स्वरूप विनम्रता पूर्ण होकर, अगले प्राणवान नर-नारी को भी विनम्र कर देता है ।

हमारे हाथो के अंगुलियों के अलग-अलग जोड़ एवं बिन्दु से अलग-अलग प्राण ऊर्जा तरंग का निष्पादन होता रहता है । जिसके आधार पर पुस्तक में **"प्राण ऊर्जा से हस्त मुद्रा चिकित्सा"** को ग्यारह चित्रों द्वारा समझाने का प्रयास किया गया है । यह मुद्रा हमारे विचार तरंग पर भी अपना प्रभाव डालती है । इन मुद्राओं से पंचतत्व से बने शरीर के पृथ्वी तत्व, जल तत्व, अग्नि तत्व, वायु तत्व एवं आकाशतत्व को अपने प्राण ऊर्जा के नियंत्रण से नियंत्रित किया जा सकता है ।

जब हम आसन, प्राणायाम की सारी मुद्रा कर लेते हैं, तो अन्तिम मुद्रा में **"दोनों हाथ की तलहट्टी को तानकर, एक फीट की दूरी पर रखते हैं एवं भावना करते हैं, कि मेरे हाथ में चुम्बकत्व पैदा हो गया है।**

हमारे दोनो हाथ की अंगुठे से ऋण विद्युत एवं धन विद्युत का शक्ति प्रवाह हमारे आज्ञा चक्र से निकलकर, अंगुठे द्वारा हथेली पर चुम्बकत्व पैदा कर रही है। दोनो हाथ की तलहट्टी में खिंचाव पैदा हो रहा है।"

ऐसा प्रयोग तीन महीना तक करते-करते वास्तव में दोनो हाथ के तलहट्टी में चुम्बकत्व पैदा होकर, हाथ स्वाभाविक रूप से एक दूसरे से आकर्षित होने लगता है। दस मिनट के प्रतिदिन के प्रयोग में हमारे हाथ की गुरूत्वाकर्षण शक्ति इतनी बढ़ जाती है, कि हाथ की तलहट्टी पर प्राण ऊर्जा द्वारा प्राप्त चुम्बकत्व दोनो हथेली को सटाने लगता है ।

फिर हाथ को मस्तक पर से होते हुए, सम्पूर्ण मुखमंडल पर हाथ फेरते हुए, पीछे के मेरूडण्ड द्वारा दोनो जाँघो पर हाथ फेरते हुए, आगे के नाभिकुण्ड, हृदय, कण्ठ, ललाट होते हुए, मस्तक पर प्रणाम की मुद्रा बनाते हैं।

इतने देर के हाथ घुमाने की परिधि में हम "ऊँ" का उच्चारण लयबद्ध ध्वनि उच्चारण में करते हुए, एक माला की भावनात्मक कल्पना करते हैं । इस तरह तीन बार हाथ को ऊपर से नीचे एवं नीचे से ऊपर घुमाकर अण्डाकार परिधि बनाते हुए "ऊँ" ध्वनि का शब्दभेदी टंकार बनाते हैं ।

इसके बाद दोनो हाथ ऊपर करके अट्टहास करते हुए, अपने पूजा कर्म से उठते हैं। अट्टहास करते वक्त ऐसा महसूस होता है, कि दोनो हाथ के अंगुली के पोरों से तीव्रगति से ऊर्जा प्रवाह चित्र में दिखलाये गये प्रवाह की तरह तरंगायित हो रही है ।

इससे हमारी प्राण ऊर्जा, जो हमारी हथेलियों से केन्द्रीत होकर निकल रही है, हमारे अपने नस, नाड़ियों एवं ग्रंथियों द्वारा, हमारे पूर्ण शरीर को प्राण ऊर्जा आवंटित करने लगती है ।

हमारे स्वस्थ रहने की मनोकामना स्वयं सम्मोहन द्वारा फलित होने लगती है । इस तरह से ऊर्जा प्राप्तकर, यह प्रयोग हमें सफल सम्मोहनकर्त्ता एवं सफल प्राण चिकित्सक बना सकता है । सभी मनुष्य के हृदय धड़कने का ई०सी०जी० एवं हाथ से निकलने वाला प्राण ऊर्जा अलग-अलग ढ़ंग से अपना वृत बनाता है । इसलिए किसी का अंगुठा निशान एक दूसरे से नहीं मिलता है ।

माँ दुर्गा एवं तारा

<u>चित्र संख्या- 34, 35</u>

श्रीविद्या के कादिविद्या के स्वरूप में गुप्त चतुर्थ गायत्री के वाद महाकाली का काली तत्व ही, गायत्री का चतुर्थ पाद है। तीन पाद के स्वरूप में गुह्यतारा और उग्रतारा स्वरूप में हादिविद्या, हंसतारा स्वरूप में कहादि विधा है। महाकाली के प्रथम दो रूपों में क्रमशः-मालिनी और ल्हादिनी विद्या स्वरूप है। कहा जाता है कि गुरू वशिष्ट ने जब सतज् साधना स्वरूप में सफलता नहीं पायी, तो तांत्रिक विधि से तारा का प्रादूर्भाव कर, मंत्र और तंत्र के प्रयोग से सिद्धियाँ पायी।

दूर्गा के पूजन का काल प्राय साल में चार वार ॠतुओं के संधिकाल पर है। जब सूर्य मंडल के ऋषि मंडल से नौ पवित्र देवियों के स्वरूप में रशमियाँ पृथ्वी के उत्तरी ध्रुव से चुम्बकीय तरंग के रूप में दक्षिणी ध्रुव तक प्रवाहित होती है।

यह दूर्गा स्वरूप में शक्ति ऊर्जा का स्रोत है। जो साधक द्वारा साधना के बल पर साध्य है। विशेष चर्चा चित्र संख्या-51 में की गयी है।

शक्ति-चक्र

यह शक्ति चक्र अमेरिकन पद्धति है। (चित्र संख्या - **37 एवं 38**) इस चक्र को जैसा कि चित्र द्वारा दर्शाया गया है, दिवाल पर या स्टैंड पर दो फीट की दूरी पर आँख की सीध में अवस्थित कर दें। गद्देदार आसन पर आरामदायक उचित मुद्रा में बैठ जायें और इस चक्र के केन्द्र बिन्दु पर ध्यान लगायें, अगर मन भागता है, तो अहिस्ते से फिर मन को केन्द्रीत करने का प्रयास करें।

कुछ दिनों के अभ्यास के बाद चक्र हिलता-डुलता नजर आयेगा। यह आपके सफलता की ओर बढ़ने का संकेत है। चक्र एक के बदले दो, तीन नजर आने लगेगें। अभ्यास को कायम रखते हुए, जब चक्र स्थिर नजर आने लगे, तो फिर उसमें कोई तस्वीर का आना-जाना शुरू हो जायगा।

अभ्यास से आप सुदूर का भी चित्र देखना चाहेगें या उनके बातचित का आवाज सुनना चाहेगें, तो उसी शक्ति चक्र पर देख-सुन पायेगें। आपमें इतनी सम्मोहक (हिप्नोटिक) शक्ति पैदा हो जायगी, जिसको भी आप आँख गड़ाकर जो आदेश देना चाहेगें, वह उसको पूरा करेगा। प्रयोग करते समय इस बात का जरूर ध्यान दे, जब आँख में पानी आना शुरू हो तो कुछ देर-रूक-रूक कर ध्यान केन्द्रीत करें।

चित्र आपके मन की दशा कि स्थिति अनुसार सुहावना एवं डरावना भी आ सकता है। घबराये नही, आन्नददायक मुद्रा में एक टक ध्यान की प्रक्रिया कायम रखें।

इस अभ्यास में भी आपके ओरामंडल का व्यास आपके व्यक्तित्व को बहुत निखार देगा। आप अभ्यास के दौरान अपने मनोविचारो पर भी जरूर संकल्पवान रहे कि आपकी आँखो में अगम अथाह शक्ति का संचार हो रहा है एवं विचार शून्य मस्तिष्क ब्रह्माण्डीय ऊर्जा से ओतप्रोत हो रहा है।

कुछ महीनों की साधना के बाद शक्तिचक्र के चारो ओर सुनहली सी पतली किरण दिखाई देगी फिर उसके प्रकाश का रंग नीला, फिर हरा और बाद में पूरे शक्तिचक्र यह सूर्य के प्रकाश की तरह सुनहला प्रकाश फैलता नजर आयगा।

यह प्रकाश आपके आत्मप्रकाश का स्वरूप है, जो आँखों द्वारा शक्तिचक्र पर फैल कर शक्तिचक्र को गायब कर रहा है। यहाँ तक पहुँचने में साधक को तुर्यावस्था की स्थिति सामने आने लगेगी और साधक जोगी की तरह दृढ़ संकल्पवान होकर जिसको जो आदेश या अशीर्वाद देगा वह फलित होने लगेगा।

इस प्रयोग में हमेशा ध्यान दें, कि आँख पर ज्यादा जोर न पड़ें हमेशा शान्त और एकाग्रचित होकर ही प्रयोग करें। आँख में पानी आने पर प्रयोग रोककर फिर प्रयोग करें और अपने प्रयोग की अवधि प्रत्येक दिन थोड़ा-थोड़ा बढ़ायें।

सम्मोहन चक्र

(चित्र संख्या-39 एवं 40)

यह बिन्दुचक्र भी शक्ति चक्र की तरह परम अध्यात्मिक शक्ति देने वाला एवं ध्यान को एकाग्र करने की पद्धति है। इसमे भी केवल एक बिन्दु पर ध्यान अवस्थित करते हैं।

जब बिन्दु पर ध्यान सधने लगता है, तो उसके चारो ओर सात परिधि खिंचकर बिन्दु को मध्य में रखते हैं एवं उसपर ध्यान अवस्थित करते हैं। जैसा कि चित्र में भी दर्शाने का प्रयास किया गया है। बिन्दु सर्किल में घुमते आगे दृष्टिदोष से बाहर निकल जाता है।

जब ध्यान मध्य के काले बिन्दु पर सधने-लगता है तो साधना के अनुरूप चारो ओर की परिधि एक-एक कर गायब होकर आती-जाती रहती है।

इसमें भी साधक को कहीं-कहीं का नदी, पहाड़, झरना, कोई देवी देवता की आकृति, मरूस्थल, जो प्रकृति में कहीं न कहीं अवस्थ्ति है, हम देखने लगते है। जब साधनागत ध्यान को और केन्द्रीत करते हैं तो, जहाँ का भी या जिसका भी चित्र देखना चाहे मनोवांछित रूप से देख सकते हैं।

साधना का स्तर बहुत ऊँचा बढ़ने पर वो सातो परिधिगत सर्किल चक्र तक गायब होकर आता-जाता रहता है।

उसपर एक दिव्य प्रकाश फैल जाता है। जो आपके आत्मप्रकाश का ही प्रतिनिम्ब है।

साधक इसमें भी योगी की तरह दृढ़संकल्पवान होकर अपने आत्मप्रकाश को सूर्य की रोशनी जिस तरह लेन्स से केन्द्रीत होकर कुछ भी जला देती है। वैसे ही जहाँ भी केन्द्र पर केन्द्रीत कर, आशीर्वाद या जन "कल्याण" हेतु जो भी कौतुक का काम करें सम्भव है।

सम्मोहन के छोटे छोटे प्रयोग

इसके तीन महीने के बाद हम छोटा-छोटा प्रयोग सम्मोहन का करना शुरु कर देगे। जो भी क्रिया करेगें पूरे आत्मविश्वास के साथ।

1. माध्यम के हाथ में कोई लोहे या ताम्बे का रौड़ दे दें, और उसकी आँखों मे झाँकते हुए सम्मोहन की प्रक्रिया में आदेश दें कि, रौड बिल्कुल गर्म होता जा रहा है। इतना गर्म हो रहा है की हाथ में फफोले आ जायेगें। आप देखेगें कि माध्यम रौड़ में ज्यादा गर्मी महसूस करके रौड़ हाथ से फेंक देगा।

2. दस पन्द्रह के समूह में बारी-बारी से एक दृष्टि में देखते हुए आदेश करें कि, वह आपकी ओर मुड़कर देखे। आप देखेगें की सभी आपकी ओर मुड़कर देखने लगे हैं।

3. अगले माध्यम को कुर्सी पर बिठाकर दोनों हाथ के अंगुलियों को फँसाकर बैठने को बोले एवं आदेश करें की अंगुलियाँ बिल्कुल चिपक गयी है, छुड़ाये नहीं छूट सकती है! आप देखेगें कि माध्यम पूरी कोशिश करके भी अपने फँसे अंगुली को नही छुड़ा पा रहा है।

4. चलते-चलते किसी भी व्यक्ति के गर्दन पर ध्यान केन्द्रित कर उसे आदेश करेगें की वह आपकी ओर मुड़कर देखे। आप देखेगें की बरबस वह मुड़कर आपकी ओर देखनें लगा है।

5. माध्यम को अपने सामने के टेबुल के पार कुर्सी पर बैठा दें और दोनों हाथ को टेबुल पर सामन दूरी पर रखने को बोलें। फिर सम्मोहन की प्रक्रिया देते हुए संगीतमय स्वर में आदेश दें, कि तुम्हारा हाथ ऊपर उठ रहा है!

तुम हाथ को रोक नहीं पाओगे! हाथ अहिस्ते-अहिस्ते ऊपर उठकर कनपटी के सीध में आकाश की तरफ खड़ा हो जायगा। आप देखेगें की आपके संकल्पशक्ति का सम्मोहन तीर की तरह आपके माध्यम बने मित्र पर कारगर सिद्ध हो रहा है।

वह हाथ को रोक नहीं पायगा और हाथ आकाश की ओर उठकर स्थिर हो जायगा, आपके अगले सम्मोहन के आदेश की प्रतीक्षा तक।

6. घर में लगे गमले के गुलाब फूल पर भी आप अपना सम्मोहन का प्रयोग सिद्ध कर सकते है। गुलाब के सामने बैठकर एकाग्रचित होकर आप गुलाब की तरफ अपना तरहटी एवं अंगुली द्वारा पास देकर दृढ़संकल्पित होकर आदेश करें ।

की गुलाब की कली मुड़ जाय। कुछ महिनों के प्रयोग के बाद देखगें की गुलाब आपके आदेशानुसार मुड़ रहा है।

6. कमरे के कोने पर आप एक रस्सी के सीका पर घड़े को टांग दें और प्रतिदिन घड़े की ओर मुक्का उठाकर संकल्पित स्वर में बोले की **"मैं घड़ा-फोड़ डालूँगा", "मैं घड़ा फोड डालूँगा"**। छः महीना के अभ्यास में ही आप कोने में लटके दूरस्थ घड़े को भी मुक्का दिखाकर फोड़ पायेगें।

7. ऊपर के जितने प्रयोग साधना के एवं सम्मोहन के बताये गये है वे व्यवहारिक ज्ञान के रूप में है, कुछ बातें सैद्धान्तिक रूप में भी चर्चा की जा रही है।

स्फटिक त्राटक

स्फटिक का शिवलिंग या गोल स्फटिक का पेन्डुलम बनाकर तीन फिट की दूरी पर सुरवासन ब्रजासन या पद्मासन में बैठकर त्राटक करने से भी सम्मोहन सिद्धि प्राप्त होती है। इसको सिद्ध होने पर स्फटिक पर नीला आभा का बर्तुल दिखने लगता है।

कोई भी प्राटक का अभ्यास करने में आँख का व्यायाम जरूर करना चाहिए। आँख को जल्दी-2 झपकाकर एवं गोल-गोल घुमाकर।

इस चक्र के मध्यविन्दु के साथ पूरे चक्र का गायब होकर सुनहले रूप में परिविर्तित होना, योगी के तुर्यावस्था तक की स्थिति दर्शाती है।

चक्र पर ऊँ का ध्यान करने पर, बाद में अन्तर्मुखी होने में यह साधना बहुत सहायक सिद्ध होता है।

जब आँख पर बराबर तनाव महसूस होता है एवं पानी आने लगता है, तो साधक को बराबर आँख और चेहरा ठंडे पानी से धोते एवं पोछते रहना चाहिए।

मनुष्य की मुख्य शक्तियाँ

मनुष्य में पाँच मुख्य शक्तियाँ है उन शक्तियों के आधार पर ही शक्ति का विभाजन है।

मनः शक्ति का ध्यानयोग से, क्रियाशक्ति का कर्मयोग से, भावना शक्ति का भक्तीयोग से एवं बुद्धि शक्ति का ज्ञान योग से, पूर्णतः सम्बन्ध है। इन सम्बन्धों के होने से ही मनुष्य व्यष्टि से उठकर समष्टि की ओर अग्रसर होने में सफलता प्राप्त करता है।

जिस साधक की कुण्डलिनी जाग उठती है, वह स्वयं शिव रूप हो जाता है। संसार का कोई भी कार्य असंभव नहीं रह जाता।

सम्मोहन विद्या भी उसी कुण्डलिनी शक्ति का रूप है, इसके माध्यम से मानसिक शक्ति को बढ़ाकर संकल्प शक्ति को विकसित करने से सम्मोहन शक्ति में पूर्णता आ जाती है।

पहले भी व्यख्या किया गया है कि हमारा आध्यात्मिक और भौतिक, चेतन और अचेतन सवों में कुण्डलिनी शक्ति के व्यापार द्वारा शक्ति संचार होता रहता है। प्राणायाम द्वारा हम अपने प्राणतत्व को आकाश तत्व में समाहित कर विश्वव्यापी ऊर्जा को अपने में समाहित करते हैं।

प्राणतत्व में ऊर्जा का बंटवारा मनोमय शरीर में, प्राण शरीर ही करता है। प्राणशक्ति के संकल्प द्वारा हमारे प्राचीन ग्रंथो में दृष्टान्त है कि, अगस्त मुनि ने समुद्र को चुल्लू में लेकर पी लिया।

सगर के साठ हजार पुत्रों को, अपने प्राणशक्ति के संकल्पित ऊर्जा से दुर्वासा ऋषि ने श्राप देकर जला डाला।

प्राणशक्ति का नियंत्रण प्रायायाम एव ध्यान से होता है। उसी तरह अपनी संकल्पशक्ति का प्रयोग हम एकाग्र होने में करें, तो हमारी इच्छाशक्ति ही कार्यरूप लेकर प्राणशक्ति के ऊर्जा को अपने में समाहित करने से, असम्भव कार्य को भी सम्मोहन क्रिया द्वारा सम्भव कर सकते हैं।

अन्तरमन बाहरी मन के नियंत्रण में नहीं रह पाता, हम एकाग्रता का अभ्यास करके आन्तरिक मन को नियंत्रण में लाकर आश्चर्यजनक सिद्धियाँ प्राप्त कर सकते हैं। आन्तरिक मन के लिए दूरियाँ और समय, कोई महत्व नही रखता।

अगर हजारो मील की दूरी आन्तरिक मन से पार कर सकते हैं, तो भूत भविष्य और वर्तमान देखने में भी सक्षम हो सकते हैं।

हमारी इच्छाशक्ति पर स्वाँस का भी गहरा असर है। अगर मन्दगति में लोम-विलोम करते हैं, तो इच्छाशक्ति पर भी नियंत्रण कायम होता है। इच्छाएँ कम साँस के आघात पर कम उठती है।

आन्तरिक मन उपरी मन के सो जाने पर ध्यान से ज्यादा क्रियाशील होकर सम्मोहन के संकल्प शक्ति को पकड़ता है। दृढ़ इच्छा शक्ति ज्यादा गहराई तक जाती है एवं ज्यादा दूरी पार कर जाती है। जबकी कमजोर इच्छा शक्ति को ज्यादा दूरी एंव गहराई तक नही ले जाया जा सकता है।

प्राणशक्ति ही सम्मोहनकर्ता का आधारशक्ति है। इस शक्ति को ही विकसित करने पर चेहरे के ओरामंडल में, आँखों में, अंगुलियों में, हाथ की तलहट्टी में एक विशेष चुम्बकीय शक्ति का प्रादुर्भाव हो जाता है।

जिसके चुम्बकीय क्षेत्र (मैग्नेटिक फिल्ड) में माध्यम को लेकर या स्पर्श करके, उसे किसी भी बीमारी से मुक्त किया जा सकता है। या कई तरह के कौतुक दिखाये जा सकते हैं।

बाहरी मन को सुलाकर आन्तरिक मन को नियंत्रण में लाने से ही आंतरिक मन क्रियात्मक रूप ले लेता है और साधक में चुम्बकीय क्षेत्र का एक बर्तुल बना लेता है। जो साधना के स्तर के अनुसार काफी दूरी के क्षेत्र तक प्रभावी होता है। जाग्रत मन वर्तमान जगत के घटनाओं की श्रृखंला में उलझाए रहता है। परन्तु अन्तरमन अपने आप में स्वतंत्र है। वह बाहरी मन के क्रिया-कलापो से बिल्कुल अलग-थलग रह कर अपने कार्यशैली को चलाता है।

अतः अन्तरमन पर नियंत्रण करके एक हिप्नोटाइजर दूरदर्शन सिद्धि भी प्राप्त कर सकता है।

अन्तर्मन को नियंत्रित करने का एक मात्र प्रक्रिया है ध्यान ! जिसके लिए श्रद्धावान एवं संकल्पवान होकर केन्द्रीत होने से ध्यान की अवस्था सधती है।

दूरदर्शान के लिए हिप्नोटाईजर एक विशेष विधि भी अपनाते है।

सम्मोहन की प्रखरता एवं सावधानिया

बार-बार क्षमा मांगने से या अपनी गलती स्वीकारते रहने से प्राणशक्ति में ह्रास होता है। इसलिए किसी अधिकारी या उच्च वर्ग के सामने जाय तो अपनी बातों एवं हरकतों के प्रति पूर्ण संकल्पवान हों, किसी भी रूप में क्षमा याचना एवं भूल स्वीकार न करें।

अगले अधिकारी के आँखों में आँखे डालकर अपने उद्देश्य को संकल्पित करें। आप संकल्पित होकर अपने उद्देश्य को सामने बैठे अधिकारी पर फेंकते है, तो वह अधिकारी आपके मस्तिष्क के चुम्बकीय क्षेत्र में आकर आपकी आकांक्षाओं की पूर्ति करता है।

1. आप अपनी परेशानियों को बार-बार किसी के सामने व्यक्त न करें। इससे आपके व्यक्तिव में हल्कापन आता है।

2. हमेशा मुस्कुराते रहिये एवं प्रसन्न रहिए।

3. आपकी स्मरण शक्ति तेज होनी चाहिए ताकि अगले व्यक्ति को नाम लेकर पहचानने में अपनापन महसूस होता है।

4.अपना परिचय उँचे तबके के व्यक्तियों में रखिये ताकि आपका व्यक्तिव भी निखार पर रहे।

5. कम से कम बातों में संकल्पित प्रस्ताव को अगले व्यक्ति के सामने में रखें।

सम्मोहन के साधन से प्राणशक्ति का संचय होता है। हम हिप्नोटिज्म के साधना से अपने मन को बिलकुल निर्विकार बना सकते हैं। निर्विकार मन होने से ओरामंडल का फैलाव बढ़ता है एवं चेहरे पर दिव्यता आ जाती है।

हमारे चेहरे एवं सम्पूर्ण शरीर में एक चुम्बकीय आभामंडल बन जाती है, जिसके घेरे में जो भी चेतन या अचेतन व्यक्ति आता है, आपके प्रभाव क्षेत्र में आ जाता है।

किसी को हिप्नोटाइज करने में माध्यम की तीन अवस्थाएँ है।

प्रथम : इसमें हिप्नोटिक नींद कुछ हल्का होता है। हाथ और पैर, नियंत्रण से बाहर जरूर रहता है, लेकिन कृत्रिम बेहोशी ज्यादा गहरी नहीं होती है। प्रथम छः महिने में अभ्यास में ऐसी कठनाईयाँ आ सकती है।

द्वितीयः इसमें भी कृत्रिम निद्रा आती है। लेकिन निद्रा कुछ गहरी होती है। माध्यम साधक की हर आज्ञा का पालन करता है, जो उसके धर्म एवं नैतिकता के विरूद्ध नही है। ऐसा प्रयोग एक वर्ष के अन्दर के साधना में सम्भव हो पाता है।

तृतीयः तीसरी अवस्था में सम्मोहित व्यक्ति आपके हर आज्ञा का पालन करेगा चाहे उसे आप किसी आतंक के काम का आदेश दें या किसी पर हमला करने को ही बोलें।

माध्यम कृत्रिम निद्रा में हो, या जगा हुआ हो, आपका आदेश उसे हमेशा याद रहेगा। माध्यम का अपने उपर बिल्कुल नियंत्रण नहीं रहता है।

इस स्थिति की सम्मोहन निद्रा में व्यक्ति का सफलतम ऑपरेशन भी कर दिया जाता है, तो उसे बिल्कुल दर्द का एहसास नहीं होता है।

भयंकर सर्दी में भी हिमालय की बर्फिली हवाओं में उसे आदेश दें कि गर्मी लग रही है, तो बिना वस्त्र के वह बर्फिली हवाओं में धूमता रहेगा।

त्राटक करने में निम्नलिखित बातों का ध्यान दें ।

1. चश्मा लगाकर त्राटक न करें।

2. लौ पर एक स्थान पर आपका ॐ का प्रतीक या जो प्रतीक आप माने वह हमेशा अवस्थित रहें।

3. त्राटक का अभ्यास ब्रह्ममुहुर्त में या रात्री में ही करें।

4. अगर दीपक से कर रहे हैं, तो घी या सरसो तेल का प्रयोग दीपक में नही करें। तील के तेल का प्रयोग करें। घी और सरसों तेल में ताप अधिक होता है।

5. स्वस्थ एवं हल्के मन से प्रयोग करें।

6. दीपक या मोमबत्ती ठीक अपके आँख के सीध में हो।

7. त्राटक के प्रयोग करने वाले को हर प्रकार के नशे से दूर रहना चाहिए तम्बाकू, बीड़ी, सिगरेट, शराब का उपयोग बिल्कुल बर्जित है।

8. टी०वी०, कुष्ट, हृदय रोग, सुजाक एवं आँख कमजोर वाले को त्राटक का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

9. दिन में नियमित ढंग से गुलाब जल या किसी आइड्रॅाप का प्रयोग जो आपको अनुकुल हो 2 से 3 बार डालना चाहिए।

10. कमरे में बहुत हल्के रोशनी में त्राटक करना चाहिए।

11. ब्रह्ममुहुर्त में शौच से निवृत होकर ही त्राटक करें।

12. शरीर पर वस्त्र बिल्कुल ढिला-ढाला हों।

13. क्रोध, ईर्शा द्वेष पर नियंत्रण होना चाहिए।

14. ज्यादा भूखे पेट न रहें, सम्यक भोजन करें।

15. हमेशा आँख पर जोर देकर त्राटक न करें।

16. श्वाँस की स्थिति बिल्कुल शांत एंव प्राणायाम की अवस्था में हो। श्वाँस की ठोकर से केन्डील की लौ कॉपना नहीं चाहिए। लौ बिल्कुल अकम्प हो।

17. मोमबत्ती अच्छे किस्म का हो, घटिया किस्म का होने से बीच-बीच में लौ में कम्पन्न आता रहता है।

ये जो सावधानियाँ बतायी जा रही है। वह अगले सभी त्राटक के प्रयोग में प्रभावी है। कोई भी प्रयोग करें, इन सावधिनियों का ध्यान रखना आवश्यक है।

साहस

साहस और निर्भयता एक ही केन्द्र बिन्दु के दो पहलू हैं। साहस के वगैर तो हम अपने जीवन के लक्ष्य को कभी नहीं भेद पायेगें। अगर दुशमन ने आक्रमण कर दिया हो तो, साहस के वगैर हाथ में थामे A.K.-47 भी बेकार है।

साहस ने ही नेपोलियन, हिटलर, कैप्टन हमीद, वीर अभिमन्यु, इत्यादि को अमरता के श्रेणी में ला खड़ा कर दिया। हम अगर कायरता से जीते हैं, तो प्रतिक्षण मरते ही रहते हैं। कायर को तो भय ही मारता है।

उस पर अस्त्र उठाने की क्या जरूरत है। साहस ही निर्भयता पैदा करके रणभूमि में हमें वीरासन के सिंहासन पर बैठा देता है।

साहसी व्यक्ति कठिन से कठिन काम एवं परिस्थिति में विजेता होता है एवं सभी कठिनाईयों को हँसते हुए झेलकर उदार एवं प्रेमपूर्ण जीन्दगी जीकर समाज एवं राष्ट्र को भी अपना उपादान देता रहता है। **जो डर गया वह मर गया!**

अतः जीवन के किसी भी कठिनाईयों को हँसते हुए प्रसन्न मन से सामना करना चाहिए। **सफलता स्वयं कदम चूमेगी।**

सम्मोहन एवं कुण्डलिनी जागरण में यौगिक क्रिया

सम्मोहन साधना को इसलिए इस कुण्डलिनी जागरण से जोड़ा जा रहा है, चूंकि सम्मोहन की साधना भी प्राणकेन्द्र के ऊर्जा का उर्ध्वगति करने पर ही सम्भव है।

प्राणवाहा नाड़ी एवं मनोवाहा नाड़ी का सम्बन्ध आज्ञाचक्र से हैं। कुण्डलिनी जागरण में प्राणशक्ति का प्रयोग अन्तर्मुखी होने के लिए किया जाता है। लेकिन सम्मोहन के साधना में प्राणशक्ति का प्रवाह बहिर्मुखी किया जाता है।

हमारे योग के नियम में एवं आयुर्वेद में भी **षटकर्म** की चर्चा है।

(1) **वस्ति** – गुदा द्वारा पानी ऊपर चढ़ाकर पेट तथा अन्तड़ियों को साफ करने की क्रिया वस्ति क्रिया कही जाती है।

(2) **धौती** – पन्द्रह हाथ लम्बे एवं चार अंगुल चौड़े महीन मलमल के सफेद वस्त्र को भिगोकर उसे मुँह के द्वारा निकाले, कफ साफ करने की क्रिया को धौती कहते हैं।

(3) **नौली** – पद्मासन लगाकर रेचक कुम्भ्क प्राणायाम करके मनोबल द्वारा नाभि घूमाने की क्रिया का नाम नौली है। साँस बिल्कुल निकाल कर पेट को ऊपर-नीचा धक्का मारते हैं। उसको उपनौली बोला जाता है।

(4) **नेती** – एक नासिका छिद्र से पानी खींचकर उसे पुनः दूसरे नाक द्वारा निकाल लेने कि क्रिया को नेती कहते हैं। इसी तरह सूत की मोटी धागे को नाक से मुँह के द्वारा निकाल कर जितना कफ होता है उसको साफ करने की क्रिया को नेती कहा जाता है।

(5) **कपाल भाँति** – रेचक, पूरक प्राणायाम द्वारा नाभिकुण्ड पर धक्का मारने के प्राणायाम को कपालभाँति कहते हैं। आराम से रेचक कुम्भक प्राणायाम करने की क्रिया को कपालधाति कहा जाता है।

(6) **त्राटक** – किसी भी बिन्दु पर या दीपक की लौ पर टकटकी लगाकर बिना पलक झपकाए दृष्टि शक्ति को बढ़ाने की क्रिया को त्राटक कहा जाता है। यही त्राटक सम्मोहन की मूलभित्ति है। जिसके सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक रूप की व्याख्या की गई है एवं इसी षटकर्म में **पंचकर्मा** का निर्देश **कुण्डलिनी जागरण आधार है प्राणशक्ति एवं सम्मोहन** दिया गया है।

इस पंचकर्मा में – स्नेहन, स्वेदन, वमन, विरेचन, वस्ति, नस्य आदि की प्रयोग कुछ यांत्रिक विधि से की जाती है। उसका संक्षिप्त ब्यौरा दिया जा रहा है।

स्नेहन – इसमें शारीरिक एवं रोगानुकूल कई तरह के औषधि से तेल बनाकर लगभग आधा घंटा मालिश की जाती है। किस तरह की शारीरिक गति एवं रोगानुपात शरीर में है, वह आयुर्वेदाचार्य निर्णय कर मालिश पूर्ण तेल की छप्पी मारकर करते हैं या करवाते हैं।

इस मालिस में तेलद्रव्य लगभग तीन मिनट के बाद रोमकूपों द्वारा शरीर के अन्दर जमा मल को स्पंदित कर देता है। स्नेहन लगभग सात दिन तक करते हैं। स्नेहन प्राय प्रातःकाल खाली पेट में किया जाता है।

स्नेहन में ही सिरोधारा जिसको सिरोबस्ती बोलते हैं। जब मानसिक स्थित खराब रहती तो किया जाता है। सिरोधारा थोड़ी महँगी पद्धति है।

स्वेदन – स्वेदन की क्रिया स्नेहन क्रिया के बाद की जाती है। एक छः फीट लम्बे संदुकनूमा बक्से में साधक या रोगी को सुला दिया जाता है। केवल सर का भाग बाहर होता है। जिसको भींगे तौलिये से ढक दिया जाता है।

एक कुकर में पानी में उपयुक्त औषधिय द्रव्य मिलाकर उसके द्वारा बक्से में भाफ दिया जाता है। जो अन्दर लेटे व्यक्ति के सहनशक्ति के अनुपात में लगभग 20 मिनट तक दिया जाता है।

इस क्रिया के करने में आयुर्वेदाचार्य एवं सहयोगी का उपस्थित रहना नितान्त आवश्यक है।

इस क्रिया के करने से स्वेद मेंदो धातु का मल रोमकुपों द्वार बाहर आ जाता है एवं भारी मल आँतों में जमा हो जाता है। जिसको वमन एवं विरेचन क्रिया द्वारा बाहर निकाल देते हैं।

वमन – यह क्रिया स्नेहन, स्वेदन के बाद की जाती है, जो लगभग सात दिन बाद करते हैं। इसमें रोगी या साधक को उपयुक्त द्रव्य पिलाकर वमन कराते हैं। औषधिय द्रव्य, उचित रासायनिक द्रव्य से बनाये गये घोल पिलाने पर ही आँत के मल को निकालने में सफलता प्राप्त होती है।

यह स्वेदन क्रिया से जमा एवं आँतों में पहले से मल के रूप में जमा सारे कुपित दोषों को शरीर से बाहर कर देता है और शरीर को निरोग करता है।

विरेचन - यह क्रिया कफ, पित्त को बाहर निकाल देने की क्रिया है इसमें वात के प्रकोप वाले रोगी को भी काफी राहत मिलती है। औषधीय घोल का उचित मात्रा पिला दिया जाता है।

अधो भाग से औषधि के उचित समय तक आँतों की सफाई कर गुदामार्ग द्वारा सभी दोषों का निर्हरण कर, निकाल दिया जाता है। यह ज्यादातर अमाशय में कुपित दोषों को बाहर करती है।

वस्ति- इस क्रिया में साधारणतया औषधियुक्त तरल पदार्थ को वस्ति यंत्र द्वारा गुदामार्ग से आँतों में प्रवेश कर, आँत में जमे मल की पूर्ण सफाई कर गुदामार्ग द्वारा बाहर निकाल दिया जाता है।

वस्ति का प्रभावक्षेत्र पूरा शरीर है एवं इसकी उपयोगिता का क्षेत्र व्यापक है।

नस्य - यह औषधि के नाक द्वारा ग्रहण कराकर उर्ध्वाङ्ग में उपस्थित कुपित दोषों को निर्हरण करने की विधि है। साधना हेतु नेती की विधि है नस्य, औषधि द्वारा पूर्ण साइनस एवं मस्तिष्किय दोषों को बाहर कर देता है।

हरिद्वार में पतन्जली योगपीठ एवं परमार्थ निकेतन वगैरह में यह पंचकर्मा का क्रिया व्यापारिक रूप में किया जाता है जो लगभग नौ दिन में दस हजार से ऊपर आता है और रहने खाने का खर्चा अलग, जो कुछ महंगा ही पड़ता है। हरिद्वार में यह व्यापारिक संस्था बहुत सारे हैं।

लेकिन शान्तिकुन्ज के देव संस्कृत महाविद्यालय में यह क्रिया लगभग नौ दिन में दो हजार के लगभग खर्च आता है। खाने और रहने की सुविधा भी साधक के बजट के अनुरूप ही रहता है। पंचकर्मा कराने में रोगी या साधक को सात्विक भोजन लेना चाहिए।

नाभिकुण्ड का टलना

नाभिकुण्ड का टलना :- बच्चे के जन्म काल में अगर नाभिकुण्ड से बच्चे का पूरनी पात जैसा नाभिकमल को सावधानी से नहीं काटा जाता है तो बच्चे में निर्भिकता में कमी आ जाती है एवं बराबर नाभिकुण्ड अपने जगह से टलने की सम्भावना रहती है।

हमारे सारे श्वसनक्रिया का नियंत्रण केन्द्र नाभिकुण्ड है। शरीर में और कहीं धड़कन नहीं परख में आती है। लेकिन अन्तिम धड़कन तक नाभिकुण्ड धड़कता रहता है। उसके थोड़ा भी केन्द्र से टल जाने पर किसी भी बीमारी में कोई दवा काम नहीं करती रहती है। ज्यादातर बराबर पेट खराब रहने से दस्त लगता रहता है।

लेकिन योगाभ्यास की क्रिया में भी नाभिकुण्ड टलने से श्वसनक्रिया का आघात नियंत्रित नहीं रह पाता। श्वसन क्रिया का आघात चक्रों के सही केन्द्र पर नहीं पड़ता रहता है। जिसके कारण योगाभ्यास में भी सफलता नहीं मिल पाती है।

इसलिए नाभिकेन्द्र का भी केन्द्रीत रहना आवश्यक है।

नाभिकेन्द्र केन्द्रीत है या नहीं इसके जानने के कुछ तरिके हैं।

1. बीच नाभि से एक पेन जैसे किल में दो धागा बाँध देते है। दोनों धागे के छोर को स्तन के निचले भूटके या कन्धे पर दोनों ओर उगे रीढ की हड्डी पर धागे से नापते हैं। धागा जिधर को छोटा-बड़ा नाप में आता है, उधर नाभि का टलना मानते हैं।
2. दोनों हाथ के कनिष्का उंगली के तीनों पोड़ों को एवं बगल के तलहटी पर हृदयरेखा एवं मस्तिष्क रेखा को मिलाकर देखते हैं। अगर रेखा आपने सामने हैं, तो नाभिकुण्ड केन्द्र में हैं। अगर रेखाएं नहीं मिलती है, तो नाभिकुण्ड टला माने।
3. पैड़ के दोनों अँगूठे के पोड़ को मिलाए अगर पोड़ और अंगुठा बराबर मिला है तो नाभिकुण्ड ठीक है। अगर नहीं मिला है तो नाभिकुण्ड टला माने।
4. नाभि पर धड़कन अगर बगल होकर धड़क रही है तब भी नाभिकुण्ड टला माने।

<u>निदान -</u>

1. जलते दीपक को नाभि के मध्य में रखकर एक लोटा जिसका मुँह चिकना और बराबर हो। या कोई ग्लास नाभि को मध्य में रखते हुए दीपक पर डाल देते हैं। दीपक पर ऑक्सीजन खत्म होते ही दीपक बुझ जाता है एवं लोटा या ग्लास मैं भैकुम (खालीपन) पैदा हो जाने से वह पेट पर बिलकुल चिपक जाता है एवं भैकुम के दवाब में नाभिकुण्ड की धड़कन मध्य में चला आता है।
2. आजकल नाभिकुण्ड को मध्य में लाने के लिए एक बहुत ही कम खर्चीला यंत्र आ गया है। मोटर गाड़ी या ताँगें में लगने वाला भोपू को एक कटोरे के मध्य में बेलडिंग कर बिल्कुल एयर टाईट कर दिया जाता है। इस कटोरानुमा यंत्र को नाभि के मध्य में रखते हुए ऊपर के भोपू को दबाकर कटोरे में भैकुम (खालीपन) पैदा पर छोड़ देते हैं। कटोरे के भैकूम के कारण हवा के दवाब पर कटोरा पेट को पकड़ कर चिपक जाता है एवं नाभि के धड़कन को बीच में ले आता है।
3. कुछ जानकार लोग नाभि टले व्यक्ति को चीत सुलाकर शरीर को पूरा टाईट कर लेने को बोलते हैं एवं अपने दोनो हाथ को नाभि कुण्ड के पीछे कमर के बगल से पकड़कर कुछ उपर उठाकर जमीन पर अहिस्ते से पटक देते हैं। इससे भी नाभि कुण्ड मध्य में चला आता है।
4. प्राण चिकित्सक बाबा साहब अपने प्राणऊर्जा का प्रयोगकर कुछ निश्चित विधि से नाभिकुण्ड पर दवाब डालकर नाभिकुण्ड के श्वसन क्रिया को मध्य में ले आते हैं।
5. नाभिकुण्ड जिधर को टला हो उधर के पैर के अंगुठे को बराबर रखने को कहकर, अंगूठा एवं दूसरे हाथ से टखना पकड़कर झटक देते हैं। इससे भी नाभिकुण्ड मध्य में चला आता है।

ललाट एवं साईनस में कफ का निदान

हमलोग आबादी के क्षेत्र में रहते हैं। वैसे तो प्राकृतिक रूप से नाक में बाल का छनना एवं कुछ श्लेषमा प्रकार का तरल पदार्थ आता रहता है, जो बाहर से जाने वाले गंदगी को रोकता रहता है।

लेकिन फिर भी दैनिक जीवन में कोल्ड्रिंक पीने से, सर्दी, खाँसी में एन्टीबैटिक लेकर कफ सूख जाने से, सूर्योदय के प्राकृतिक नियमानुसार ब्रहममुहुर्त में नहीं उठने से कफ का परत साइनस एवं ललाट में जम जाता है।

जो हमारे प्राणवायु के श्वास-उछवास में, शरीर के तन्तुओं में पहुँचने में बाधक होती है एवं हम उथली-उथली साँस लेने लगते हैं। इनका निदान हम कैसे करें, उसका कुछ विधिवत चर्चा किया जा रहा है।

साइनस - साइनस में ऊपर के कारणों से या वातावरण के प्रदुषण से घीरे-घीरे श्लेषमा लसीले तरल पदार्थ जैसा दोनों साइनस जो दोनों आँख के नीचे पोला भाग है, उसमें लस्से की तरह पकड़ लेता है एवं श्वास उछवास लेने में बराबर परत पर परत जमा होकर सुख जाता है।

अगर हम उथली साँस भी लेते हैं तो साँस की कठिनाई का पता नहीं चलता। प्राणायाम में भी सांसों की सही गति और सही कम्पन्न में यह परत बाधा तो डालती ही है। लेकिन नियमित साँस की गति लेते रहने से भी हमें कुछ पता नहीं चलता रहता है।

इसके निदान के लिए प्रति पन्द्रह दिन पर हम नेती का दो बार प्रयोग करें। सुबह के समय खाली पेट में एवं शाम में भोजन के दो घंटा उपरान्त तीन-तीन बूंद षटबिन्दु तेल दोनों नाक में लेकर श्वास ऊपर खिंचकर ललाट तक पहुँचाये एवं नाक द्वारा साईनस के कफ का परत तोड़कर बाहर निकालने का प्रयत्न करें। नेती से साइनस पूर्णरूपेन साफ होता है ।

यह साईनस एवं ललाट का कफ, हमारे बुरे विचार एवं बुरे आदतों को भी पकड़कर रखती है। साइनस साफ होने से हमारे सोंचने के ढंग में भी शुद्धता आती है एवं बुरे आदतों को छोड़ने का मनोबल बना लें, तो बहुत आसानी से छोड़ पाते हैं। बीड़ी, सिगरेट की आदतों के सुधारने में साइनस की सफाई बहुत मददगार होती है ।

योग साधना में फेफड़े के कार्बनडायऑक्साइड एवं शरीर के करोड़ों कोशो तक हमारा प्राणवायु पहुँचाकर हमारा कायाकल्प करता रहता है।

ललाट में कफ का जमना जिसे सूर्यावृत (Migraine) कहते हैं हमारे ललाट में भी उपरांकित कारणों एवं प्रकृति के विरूद्ध, ब्रह्ममुहुर्त में नहीं उठने के कारण कफ का एक पारदर्शक परत बन जाता है। जो किसी मशीन के पकड़ में भी नहीं आता है।

सूर्य का पूर्व दिशा में उदय भारत से दो तीन घंटा पहले हो जाता है। भारत से एक घंटा पहले जापान में एवं दो घंटा पहले प्रशान्त महासागर में सूर्य का उदय होने पर भारत पर ब्रह्ममुहुर्त से ही असर होने लगता है।

इस समय सूर्य के वलय ऋषि मंडल से अल्फा रे एवं डेल्टा रे का आगमन पूर्ण भारत के भौगोलिक स्थिति में आने लगता है। सूर्य अग्नि का पिण्ड है और ग्नि ही शरीर में पित्त रूप में प्रतिष्ठित है।

अतः पित से सूर्य का गहरा संबंध है। प्रशान्त महासागर में जब सूर्य का उदय हो जाता है, तो प्राणी के शरीर में स्थित पित्त, ललाट आदी में स्थित कफ को धीरे-धीरे सुखाने लगता है। दोनों साईनस के ऊपर आँख है और दोनों आँख के मध्य में ललाट पर प्यूटटरी ग्लैंड का स्थान आज्ञाचक्र पर है।

इसलिए आज्ञाचक्र पर थोड़ा भी दवाब पड़ने से सरदर्द पकड़ लेता है एवं हमारे साधना में बाधक बन जाता है। यह ललाट का कफ किसी मशीन के पकड़ में तो आती नहीं, लेकिन ऑपरेशन से इसको खुरच खुरच कर निकाला जा सकता है। जो बहुत कष्टदायक है एवं रूप को भी बिगाड़ देता है।

इस बीमारी से मुक्ति का उपाय नीचे वर्णण किया जा रहा है।

सांठ ग्राम जलेबी जो लगभग चार अदद हो जाता है। उसको रात में ही गाय के दूध में भिंगोकर सुरक्षित छोड़ दें।

सुबह लगभग तीन बजे जब प्रशान्त महासागर में सूर्य का उदय हो रहा होता है। उस समय गोदन्ती भस्म एक ग्राम एवं नरसार चूर्ण आधाग्राम, फाककर इस सुरक्षित रखें दूध जलेबी को खाकर, भरपेट पानी पी लेना चाहिए।

चार पाँच दिन बाद से ही कफ पिघलकर निकलना शुरू हो जायगा। कफ सर्दी की तरह बदबू भी करने लगता है। दोनों आँख के कोने एवं नाक के ऊपरी

भाग के पहले दोनों छिद्र से नाक का भी संबंध रहता है। इसलिए आँस से भी लशीला पानी निकलने लगता है। कभी-कभी खून भी निकल आता है तो घबराये नहीं। चूंकि दूषित अवरूद्ध खून ही बाहर निकलता है।

दूध जलेबी एवं दवा का प्रयोग कम से कम एक्कीस दिनसे कम न करें। पूरा कफ के उपचार का समय 41 (इकलालिस) दिन का है।

अगर फिर कभी यह रोग उखड़ कर समस्या पैदा करें तो तीन बजे सुबह में चीनी की शर्बत भरपेट पी लें! ताकि वह जमा पित्त फिर शान्त हो जाय।

जब हम भावना में नृत्य करते हैं और हँसते-रोते हैं तो उस समय भी आँख के आँसुओं के साथ नाक का कफ भी पतला होकर निकलने लगता है।

एनीमा (वस्ति) - हमारा प्रोस्टेट ग्लैण्ड या स्त्री का अण्डकोश पेशाब और पैखाने के बीच में एवं मजबूत लेकिन पतले परत में दोनों मल के भाग को अलग किये रहता है। मूलाधार इन्हीं मलमूत्र के लेयर के निचले भाग पर अवस्थित है। पेशाब पैखाना करने में प्रोस्टेट भी दवाब डालता है।

आँतों में लालमीर्च, एवं ज्यादा मशाला खाने वालों में एक परत सी बन जाती है। जो योगाभ्यास के कुछ अभ्यासों से उस परत को तोड़ा जा सकता हैं।

लेकिन नीचे के गुदा मार्ग के थैले को एनीमा द्वारा प्रति तीन माह पर लगातार दो बार जरूर साफ कर लेना चाहिए। ताकि मल का परत मूलाधार और स्वाधिष्ठान के पास बिल्कुल जमा न रहे।

सग्राम जिन्दगी है

सग्राम जिन्दगी है, लड़ना उसे पड़ेगा !जो लड़ नहीं सकेगा, आगे नहीं बढ़ेगा !
इतिहास कुछ नहीं है, संघर्ष की कहानी ! राणा, शिवा, भगत सिंह, झांसी की वीर रानी
कोई भी कायरों का इतिहास क्यों पढ़ेगा ! जो लड़ नहीं सकेगा; आगे नहीं बढ़ेगा !
आओ लड़े स्वयं से, कलुषों के कल्मषों से ! भोगों की वासना से, रोगों के राक्षसों से !
कुन्दन वही बनेगा, जो आग पर चढ़ेगा ! जो लड़ नहीं सकेगा, आगे नहीं बढ़ेगा !
घेरा समाज को है, कुण्ठा, कुरीतियों ने ! ब्यसनों ने, रूढ़ियो ने, निर्मम अनीतियों ने !
इसकी चुनौतियों से, कौन जो भिरेगा ! जो लड़ नहीं सकेगा, आगे नहीं बढ़ेगा !
चिन्तन चरित्र में अब, विकृति बढ़ी हुई है ! चहुँ ओर कौरबों की खेमा खड़ी हुई है !
क्या पार्थ इन क्षणों भी, क्या मोह में पड़ेगा ? जो लड़ नहीं सकेगा, आगे नहीं बढ़ेगा !

कुण्डलिनी

कुण्डलिनी - जैसे यज्ञ वेदी में विभिन्न देवताओं के आवाह्न के लिए विभिन्न कोणों का कुण्ड बनाया जाता है वैसे ही प्रत्येक मनुष्य में गुदा मार्ग और अण्डकोष के मध्य भाग पर जहाँ पाँच नाड़ियों का गुच्छक है । जिसको मूलाधार केन्द्र बोलते हैं; उस पर अगम अथाह सागर रूपी कुण्ड है ।

जिस पर साढ़े तीन फेरा दिये समुद्र मथन के प्रतीकात्मक, इलेक्ट्रानिक स्वरूप मे सर्पनी कुण्ड मारे बैठी है । इसी कुण्ड पर मनुष्य के स्थूल शरीर संचालन का सप्तधात का निर्माण होता है । शरीर रूपी ब्रह्माण्ड के आधार में समुद्र मथन के आधार कच्छप जैसे मूलाधार की रूपरेखा ऋषियों ने दिव्य दृष्टि से देखा है ।

ब्रह्मरंध्र - कुण्डलिनी के अपरमित शक्ति को कुण्डलिनी शक्ति के रूप में जब सुषुम्ना से, त्वरित बिजली के प्रवाह जैसी ऊर्जा का संचालन होता है, तो इस पोजेटिभ पोल को थामने के लिए ब्रह्मरंध्र का निगेटिभ पोल; बह्माण्डीय त्वरित बिजली का रूप लेकर सर्किट (परिधि) पूरा करता है ।

यह ब्रह्मरंध्र मस्तिष्क के ऊपर के **कपाल कुहर** जिसको सेरेब्रल कैभिटि बोलते हैं; उसमें बाल से भी बहुत पतले नर्भ (नाड़ी) का अण्डाकार पोला 1008 फेरे में रहता है । अण्डकोष में भी नीचे भाग में पोला जैसा मीलो लम्बा सूत जैसा नर्भ (नाड़ी) होता है ।

नाभिकुण्ड और आज्ञाचक्र के केन्द्रीत होने पर मूलाधार पर कुण्डलिनी के सर्प और ब्रह्मरंध्र पर विष्णु के सरसैया के ऊपर शेषनाग जैसे प्रतीकात्मक सर्प का साम्यरस में मिलन होता हैं तो साधक एक अपूर्व आनन्द की स्थिति प्राप्त करता है और परमानन्द की प्राप्ति में स्थितप्रज्ञ हो जाता है ।

अपने को मनुष्य बनाने का प्रयत्न करो।
यदि इसमें सफल हो गये, तो प्रत्येक काम में सफलता मिलेगी !

शैक्षणिक

ऊर्जा

क्या हम जानते हैं ! कि विश्व ब्रह्माण्ड में फैली हुई कम्पन्न क्षेत्र जो हमारे बैखरी, मध्यमा, पश्यन्ति, परावाणी का भी कम्पन्न क्षेत्र है, जो ईथर और न्यूट्रॉन के रूप में ब्रह्माण्ड व्यापी है। हमारे शरीर के चक्रों एवं नस नाड़ियों द्वारा मनुष्य के कम्पन्न क्षेत्र में है !

मनुष्य में भी प्राणऊर्जा सूर्यचक्र के नियंत्रण से बंटवारा होता है। वह ऊर्जा, मनःशक्ति बैखरी वाणी मन को अन्नमय कोष द्वारा, मध्यमा वाणी चित्त को प्राणमय कोष द्वारा, पश्यन्ति वाणी बुद्धि और विवेक को मनोमय कोष द्वारा, परावाणी विज्ञानमय कोष द्वारा आत्मशक्ति प्रदान करती रहती है।

जब निर्विज समाधि की प्राप्ति होती है तो आत्मऊर्जा भी रूपान्तरित होकर निर्वाण की स्थिति पैदा कर, विश्व ब्रह्माण्ड के ऊर्जा क्षेत्र में विलिन होकर, ब्रह्मण्डीय क्षेत्र का कम्पन्न पैदा करता है एवं आनन्दमय कोष सक्रिय होता है।

मन की ही सभी गतियाँ रूपान्तरित होती चली जाती है। मन जब वासना और कामना के प्रति आकर्षित होता है, तो चित की स्थिति पैदा करता है। जब हमें अपने **"मैं"** का बोध होता है, तो उस मन से अहंकार की स्थिति पैदा होती है एवं जब मन में चिन्तन-मनन पैदा होती है, तो बुद्धि और विवेक का रूप ले लेती है।

इसलिए मानव शरीर में चौरासी लाख योनि में भ्रमण के लिए मनुष्य का मन ही उत्तरदायी है। मन हमारे दोनों विभु का राजा है। एक मन जो परिधि में है। जो चेतन है, जीवन-मरण की श्रृंखला पैदा किये हुए हैं। दूसरा मन जो अवचेतन है, ईश्वर की तरह हमारे कील में स्थिर है।

जो विश्व ब्रह्माण्ड के कम्पन्न क्षेत्र को नियंत्रित किये हुए हैं। परिधि का मन हमेशा हमारी वासनाओं का मन है, जो मृत्यु के बाद भी हमारी अतृप्त वासनाओं को दूसरे के स्थूल शरीर का आश्रय लेकर तृप्त करने का प्रयास करती रहती है। तबतक! जबतक उसे चौरासी लाख योनि में भी उसके कील का अवचेतन भाग, आत्मा के साथ मिलकर आत्मलिन नहीं हो जाता।

हमारी मुख्य आत्मा के अन्दर अरबों आत्मा का क्षेत्र हमारे शरीर में कोषा अथवा सेल के रूप में विभिन्न कार्य को सम्हाले, विभिन्न ऊर्जा का क्षेत्र पैदा किये हुए व्याप्त है।

जिसका बाह्यरूप का प्रकाश हमारे मुखमंडल का ओरामंडल है, जो एक फीट से लेकर ब्रह्माण्डीय स्तर तक हो सकता है। एवं सम्पूर्ण शरीर से ओरामंडल का विकिरण होता रहता है, जो छह ईंच से लेकर ब्रह्माण्डीय स्तर का हो सकता है।

मनुष्य के कम्पन्न ऊर्जा का क्षेत्र ॐ की तरह छत्तीस कम्पन्न क्षेत्र (फ्रिक्वेन्शी) के लोको की तरह चौंसठ लोको के मंडल में असंख्य लोको से संबंध का कम्पन क्षेत्र तैयार रखता है। जो मनुष्य की साधना के अनुरूप उसके ओरामंडल पर देखा जा सकता है।

ऊर्जा का कभी और कहीं भी बिनष्टिकरण नहीं है। ऊर्जा हमेशा रूपान्तरित होती रहती हैं। जैसे समुद्र का पानी सूर्य के ताप में वाष्प बनकर बादल बन जाता है।

बादल फिर पानी में रूपान्तरित होकर, पृथ्वी पर बरस जाता है। पानी नदी नालों द्वारा या पृथ्वी द्वारा अवशोषित होकर फिर समुद्र में मिल जाता है।

वैसे ही ब्रह्माण्ड में कोई भी ऊर्जा बिनष्ट करने के उपाय नहीं हैं। एक रेत का कण भी हम बिनष्ट नहीं कर सकते हैं। चाहे एटम के बिसफोट से ही नष्ट करना चाहे तो, टुटकर ऊर्जा में रूपान्त्रित हो जाएगा ।

अगर ब्रह्माण्ड में सूर्य, तारे, नक्षत्र टूटते रहते हैं, तो उनका रूपान्तरित निर्माण भी ब्रह्माण्ड के किसी कोने में होता रहता है। सूर्य की किरणें अगर हमेशा ब्रह्माण्ड में फैलती रहती है, तो किसी भी पिण्ड में आकर अवशोषित होकर अपना रूप बदलती रहती है।

उसी तरह हम जप, तप, ध्यान, पूजा, कर्म, कुकर्म, जो भी करते हैं, उसकी ऊर्जा घनिभूत होकर हमारे कर्मबंधन की गांठो पर केन्द्रीत हो जाती है।

हमारे मनिषियों ने मंत्र विज्ञान को बहुत प्रखरता से उसकी ऊँचाई के कम्पन्न क्षेत्र को जाना। जो महाभारत के संग्राम काल तक काफी प्रखरता से प्रयोग किया गया।

उस समय का विज्ञान अध्यात्म के आधार पर मनःशक्ति के केन्द्रीभूत ऊर्जा का प्रयोग था। अभी के विज्ञान में यांत्रिकी पद्धति से ब्रह्माण्ड तक के ऊर्जा के प्रयोग को जाना गया। अंतरिक्ष विज्ञान भी ऊर्जा के प्रयोग का सफलतम अनुसंधान है।

ऊर्जा तो हमारे शरीर के बाहर भी अणु-अणु में फैली है। हमारा यंत्र रूपी शरीर भी सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर के रूप में अपार ऊर्जा का स्रोत थामे हुए

है। लेकिन हमारा मानसिक एवं शारीरिक क्षेत्र इतना कलुषित हो रहा है, कि हम अपनी ऊर्जा को सही दिशा में केन्द्रीत नहीं कर पा रहे हैं। यंत्र द्वारा हम कम्प्यूटर, मोबाईल, टेलीविजन, उपग्रह एवं असंख्य यांत्रिकी उपलब्धि से विकास तो कर रहे हैं ! लेकिन हमारा अध्यात्मिक विकास अधोगति की ओर जा रहा है।

रामकृष्ण परमहंस की एक शैक्षणिक कहानी आती है, कि शिष्य ने रामकृष्ण से पूछा कि "हम नित्य श्रद्धावान होकर साधना करते हैं, गुरूकूल में रहकर गुरू आज्ञा में अध्यात्म की ऊँचाई को छूते हुए, जप, तप, पूजा, साधना, अर्चना करते हैं। तो उसका उचित प्रतिफल मुझे उचित समय पर क्यों नहीं मिल पा रहा?"

रामकृष्ण परमहंस ने तत्काल कोई भी उत्तर नहीं दिया। लेकिन ब्रह्ममुहुर्त में जब सभी शिष्यों के साथ नदी में स्नान को गये, तो साथ लाये सरसों के दाने के पोटली को नदी किनारे पर खोलकर बालू में बिखरा दिया एवं शिष्यों को बोले "सरसों के दाने को बिना बालू के चुनकर लावें!" लेकिन कोई भी शिष्य बालू रहित अलग सरसों के दाने को चुनकर नहीं ला पाये।

रामकृष्ण ने बताया कि इसी सरसों के दाने की तरह हमारी सभी साधनाओं की ऊर्जा हमारी मानसिकता की अधोगति होने से धूमिल हो रही है। आस पास का सामाजिक, शैक्षणिक, अध्यात्मिक वातावरण बालू के कण की तरह हमारे ऊर्जा क्षेत्र को अव्यवस्थित किये हुए है। "जरूरत है! हमारी मानसिकता को अधोगति से उर्ध्वगति में ले जाने की। सफलता आज भी हमारे कदम चूमने को तैयार हैं।"

मंत्र विज्ञान में सभी मंत्रों की ऊर्जा की व्याख्या अलग-अलग वर्णानुसार हो जाने से, आज्ञाचक्र का टंकार जो निगेटिभ एवं पोजेटिभ ऊर्जा की सर्किल कम्पलीट करती है। उसके कम्पन्न क्षेत्र में आकर सौरमंडल के कई देवी-देवता, यक्ष, किन्नर, लोको की दिव्य शक्तियां हमारे आमंत्रण क्षेत्र में आ जाती है।

जैसे शिव मंत्र **"ऊँ नमः शिवाय"**, गायत्री मंत्र, **ऊँ भूः भूर्वः, स्वः**।, मूलाधार पर डाकनी मंत्र-ऊँ, वं, षं, शं, सं इत्यादि तैंतीस करोड़ देवी देवताओं के आवाहन के मंत्र हैं। लेकिन इस अनन्त आकाश में सभी मंत्रों के ऊर्जा क्षेत्र अलग-अलग है एवं उपलब्धियाँ भी अलग-अलग हैं। जैसे दुर्गा के मंत्र में **ऊँ, ऐं, ह्रीं, क्लीं, चामुण्डायै, बिच्चै**, में नौ देवी के स्पंदन के मंत्र अलंकार के साथ हैं।

जो ॐ में एकाकार होकर एक अलग ऊर्जा क्षेत्र बनाती है।

सभी मंत्रों की जाप संख्या, आसन एवं चौबीस घंटे के समय का क्षण उपयुक्त होने पर ही उन देवी देवताओं के ऊर्जा क्षेत्र में हम आ पाते हैं, एवं सम्पर्क स्थापित कर पाते हैं। जिस तरह टी०भी० एवं मोबाईल में ब्रोडकास्टिंग एवं रीसिभिंग का फ्रिक्वेंशी एक होता है, तभी हम आवाज और पिक्चर देख पाते हैं।

ऊर्जा का बिनष्टिकरण नहीं है। हैमियोपैथ की दवा में हथेली पर जितना ठोकर (स्ट्रोक) मारते हैं, दवा का पावर उतना निश्चित हो जाता है। मंत्रों में भी देवी देवताओं के केन्द्रीत ऊर्जा पर जितने मंत्रों के जाप, लाख या करोड़ में (स्ट्रोक) ठोकर की तरह जपकर हम ऊर्जा एकत्रित करते हैं, तो जिस देवी, देवता का प्रारूप तैयार होता है एवं वैसी देवी देवता हमें दर्शन या सिद्धियां प्रदान करते हैं।

कहा जाता है कि एकादश श्राध्य में जो श्रद्धा का दान अपने प्रियजन द्वारा होता है। उसमें दस दिन में श्रद्धा का अर्पण पिण्डदान के रूप में करने से, प्रेत का दस अंग का निर्माण पूरा कर उन्हें सूक्ष्मशरीर में पितर के रूप में जो देवता का रूप है। उस सूक्ष्म शरीर में श्रद्धा के आवाहन द्वारा स्थापित कर, अपने माता पिता के पूण्यात्मा होने में सहभागी हो जाते हैं।

उसी तरह देवता का भी जब अपने मंत्र द्वारा उचित ठोकर, उचित आसन, एवं उचित समय में ऊर्जा के प्रवाह में आवाहन करते हैं। तो मंत्रों के उच्चारण के ठोकर से सूक्ष्म शरीर से उनके अंगों का निर्माण होने लगता है। निश्चित-निश्चित मंत्रों के ठोकर पर हर एक अंग का निर्माण होकर, देवी-देवता अपने पूर्ण स्वरूप को पाकर दर्शन देते हैं एवं हमें सिद्धियां प्रदान करते हैं।

अतः किस देवी-देवता का कौन मंत्र है एवं उनके कितने (स्ट्रौक) ठोकर पर किन किन अंगों का निर्माण होकर सूक्ष्म शरीर में आवाहित होते हैं, इसका ज्ञान साधक को होना आवश्यक हैं

पृथ्वी तो अपने कील पर चौबीस घंटा में एक चक्कर घूम जाती है और 364)) दिन में सूर्य का एक चक्कर लगा लेती है। लेकिन इसी घूमने में पृथ्वी के किस अंश से कितने डिग्री का कोण बनाती है, उसी तरह से उसके डिग्री के अनुपात एवं कोण में अल्फा रे, डेल्टा रे, गामा रे, बीटा रे, थीटा रे वगैरह निकलती रहती है। इसलिए किस देवी-देवता को हम आवाहन कर रहे हैं।

उसका समय भी हमारे मनिषियों ने अपने दिव्यदृष्टि एवं अनुभव द्वारा जानकर तय कर रखा है। इसलिए साधना में मंत्र, जप, आसन, समय, माला भी हमारे सिद्धि की सफलता की मूलभित्ति है।

हम कुण्डलिनी जागृत करते हैं तो हमारी ऊर्जा मूलाधार से संकलित होकर मेरूडण्ड में, सुषुम्ना द्वारा ब्रह्मरंध्र की ओर प्रवाहित होती है। ऊर्जा अग्निरूप है। अग्नि की हमेशा प्रवृत ऊपर की ओर प्रवाह का है। लेकिन जब भी शक्ति का अवतरण होता है, तो ब्रह्मरंध से होता है। मृत्यु भी अवतरण की तरह ब्रह्मरंध्र से आती है।

इसलिए अपने पिछले लेख में लिखा है कि हमारा जीवन मरण भी ऊर्जा का रूपान्तरित रूप लेकर चौरासी लाख योनि की भ्रमण यात्रा पर हमारे आत्मा को रखे हुए हैं।

अगर हम ऊपर -नीचे की योनियों में यात्रा करें, तो इसके लिए मध्य की योनि, मनुष्य योनि है। जहाँ हम अपने ऊर्जा का संकलन कर अपने अधोगति को रोक सकते हैं। इसी ऊर्जा का संकलन ही तो **कुण्डलिनी जागरण** है !

जब हमारी कुण्डलिनी जागती है, तो हमारे मूलाधार पर जहां से स्पाईनल कौड शुरू होती है एवं जहां चार पतली नाड़ी एवं एक मोटी नाड़ी का गुच्छक है, एक अग्नि पैदा हो जाती है। जिसका प्रवाह सुषुम्ना पर होने से, हमें सातवां केन्द्र तक जाकर, समाधि से आगे निर्वाण की गति तक दे देती है। इसी अग्नि को जब हम सोनार के ब्लोअरपाइप की तरह अपने मंत्र विज्ञान से जिधर को फूंकते हैं। उन्हीं मंत्रों के लोकों से संबन्धित देवी-देवताओं की सिद्धियाँ एवं उपलब्धियाँ प्राप्त होती है।

जितने वर्ण अक्षर हैं, वह हमारे शरीर में चक्रों के दल के रूप में मनिषियों ने वर्णित किया है। जब उसी पर आज्ञाचक्र का अनुस्वार जो शिवलोक के टंकार का प्रतीक है। उसकी ऊर्जा की चोट (स्ट्रोक) पड़ती है, तो सभी वर्णाक्षर देवी-देवताओं के आमंत्रण एवं आवाहन का बीज मंत्र हो जाता है।

उन्हीं बीज मंत्रों को अन्य शब्दों से अलंकारित कर, हम एक पूर्ण मंत्र की व्याख्या कर लेते हैं। जब उन्हीं मंत्रों का ठोकर मंत्र-जाप द्वारा हम देते रहते हैं।

वह भी ऊर्जा का रूप लेकर बिधिवत अंगों का निर्माण करती रहती है एवं हमें संकल्पित देवी-देवताओं के कम्पन्न क्षेत्र की शक्तियों के अनुरूप मनःशक्ति, चित्त्शक्ति एवं आत्मशक्ति देती रहती है।

हमारे अंदर, दया, प्रेम, करूणा, मैत्री, मुदिता भी हमारे द्वारा संकल्पित ऊर्जा का प्रतिफल हैं। हमारे शरीर के ग्राह्य क्षमता अनुरूप ग्लैण्ड (कोषा) हमारे द्वारा संकल्पित ऊर्जा का संकलन करती रहती है ।

हमारे साधना के अनुरूप प्रतिक्रियात्मक होकर, हमें प्रतिफल देती रहती है। इन्ही शरीर के ग्लैन्ड (कोषा) से प्राकृतिक रूप के नियमित उत्सर्जन से, हमारे जीवन-मरण का व्यापार चलता रहता है।

हमने अपने पुस्तक में सात शरीर की चर्चा की है। इन सात शरीरों का विकास क्रम प्रति सात वर्ष पर प्रकृति प्रदत ऊर्जा का उत्सर्जन ही, उनके विकास का क्रम है। प्रति सात साल पर वह अपना विकास क्रम बदलती रहती है। इन्हीं के क्रमिक विकास के रूप में स्त्रियों का मासिक धर्म प्रायः 42 वर्ष से लेकर 48 वर्ष तक बन्द होने की प्राकृतिक दशा है।

बन्द होने के अन्तराल में स्त्रियां में एक बार जीवन और परिवार से विरक्ति की भावना पैदा होने लगती है। उनमें झल्लाहट की भावना एवं निराशा की भावना ज्यादा उभर कर आती है।

इस समय इनकी मानसिकता को अगर नहीं समझा जाता है, तो उनकी झल्लाहट एवं नाकारात्मक प्रवृत स्थाई रूप से बुढ़ापा के अन्तिम क्षण तक उन्हें परेशान करती है। यह प्रवृत केवल छः माह तक बनी रहती है।

ठीक इसी तरह पुरूष में भी मिनोपाज की तरह 48 से 55 वर्ष तक झल्लाहट एवं नाकारात्मक प्रवृत पैदा होती है, केवल छः माह तक के लिए। कितने लोग इन्हीं मानसिकता में परिवार से, धन से विरक्त होकर सन्यास लेना चाहते हैं। उस समय इनकी मानसिकता को भी समझ, परिवार के सदस्य को सद्‌यभाव रखना चाहिए।

प्रकृति भी हमें शारीरिक एवं मानसिक विकास के बिन्दु पर सचेत करती रहती है। इन्हीं बिन्दुओं के ऊपर अपने साधना द्वारा संकलित ऊर्जा हमें ऊर्जावान कर ऊर्ध्वगति की ऊर्जा प्रदान करती है।

इन्हीं प्राकृतिक उर्जा का संकलन 16 वर्ष में नारी को पूर्ण नारितत्व एवं पुरूष को 21 वर्ष में पूर्ण पुरूषत्व से पूर्ण ओतप्रेत कर देती है। इन्हीं प्राकृतिक ऊर्जा का अतिक्रमित वेग किसी भी साधक के नाभिकुण्ड से जुड़ें रज्जूतन्तू द्वारा समाधि में जाने

पर, नाभिकुण्ड पर नारी के अँगुठा के स्पर्श से, उन्हें अनन्त आकाश के कम्पन्न क्षेत्र से वापस ले आती है।

अगर आकाल मृत्यु प्राप्त पुरूष को भी, अगर शरीर के तन्तु प्राणऊर्जा सम्हालने लायक हों तो, पुरूष का स्त्री द्वारा नाभिकुण्ड का स्पर्श संकल्पवान होकर किया जाय तो, सूक्ष्म शरीर, फिर स्थूल शरीर में प्रवेश कर सकती है। मृत्यु प्राप्त मनुष्य भी फिर जीवित हो सकता है।

चूंकि धनंजय प्राण दो घंटे तक मृत्यु के बाद भी मस्तिष्क के मुख्य भाग में टिका रहता है एवं सूक्ष्म शरीर में व्याप्त सभी प्राणों को संकलित कर बागडोर नाभिकुण्ड के रज्जू तन्तु द्वारा थामे रहता है। मृत्यु प्राप्त व्यक्ति का प्राण भी लिप्सावस अपने स्थूल शरीर के आसपास ही वायुवत होकर मंडराता रहता है।

जब कुण्डलिनी जागृत करते हैं, तो हमारी ऊर्जा मूलाधार से प्रवाहित होकर मेरूडण्ड में सुषुम्ना द्वारा ब्रह्मरंध्र की ओर प्रवाहित होती है। लेख में लिखा गया है कि ''मृत्यु जीवन का प्रारम्भ है, अन्त नही!'' क्योकि मृत्यु तो हमें पूनर्जन्म के लिए नवीकरण कर जाती है।

हम अपने ईश्वरीय प्रकृतिरूपा शक्ति के बेटे हैं। भला अपने सपूत का कौन विनाश चाहता है। जन्म-जन्मान्तर के अशुद्ध कृतियों को जन्म-मरण के दावानल में जलाकर, हमें बिल्कुल शुद्धतम रूप देकर, अपने में एकाकार करना चाहती है। लेकिन हम बेहोशी की जिन्दगी जीकर अपने अन्दर के कील में बैठे शक्तिरूपा ईश्वरीय रूप का उपहास करते चले जा रहें हैं।

हमें हमारी आदिशक्ति रूपा माँ, हमारे विवेक को थपकी देकर जगा रही है! लेकिन उस थपकी को हम नींद की थपकी समझ कर बेहोश जिन्दगी जीये चले जा रहे हैं! काम-कामेश्वरी तो आदिशक्ति रूपा, शक्ति की ही थपकी है। लेकिन हम करोड़ों वर्ष से ओलंपिक खेल में मशाल की तरह एक दूसरे को वंशानुसार वासना का मशाल थमाये चले जा रहे हैं।

अपने शक्तिरूपा ऊर्जा द्वारा उत्सर्जित ममता एवं लोरी के ऊर्जा स्रोत को केवल तंन्द्रामय निद्रा में सोने का सुखमय आधार मान लिया है। हमने अपने अन्दर उठते इस महान ऊर्जा के स्रोत को कलुषित कर लिया

है। जरूरत है! सतज् भाव से भरे गुरु की जो हमारी ऊर्जा को सही दिशा दिखाकर अपने में एकाकार कर हमें ईश्वरीय कील तक पहुँचा दें।

हमारे दैनिक जीवन में भी प्राणऊर्जा प्राण संचालन के लिए प्रकृति से ऊर्जा का प्रवाह प्राप्तकर, हमें ऊर्जावान किये रहती है। जब हम ज्यादा बोलते हैं, तो भी उर्जा ज्यादा खप जाती है, सपना देखते हें, तो उसमें भी ऊर्जा खपती रहती है । ज्यादा सुनते रहते हैं, तो श्रवण ऊर्जा का ह्रास होता रहता है।

हम सपना के ऊर्जा को तो बचा नहीं सकते, लेकिन कम बोलकर एवं कम सुनकर वाक् ऊर्जा एवं श्रवण ऊर्जा को बचा सकते हैं। जो योग साधक के लिए अतिआवश्यक है। हम जो भी सोच विचार करते हैं वाणी के रूप में आने से पहले हमारी मनःस्थिति में विचार श्रृंखला कायम किये रहती है,

जितना हम सोच विचार करते हैं उसका 10 प्रतिशत ही वाणी के रूप में जिन्ह्वां पर आ पाता है। प्रेम, दया, क्रोध हिंसा, हत्या जो भी हम कर पाते हैं, सब हमारे सोच में विचार श्रृंखला में पहले ही अव्यक्त रूप से घटित हो चुका होता है। जो मेरा भूतकाल है, जिह्वां से निकलते वक्त तक वर्तमान है एवं जब निकल जाती है, तो निकलते-निकलते भूतकाल हो जाता है।

हमारे पास वर्तमान का क्षण बहुत छोटा है। वही छोटा क्षण योग की साम्यावस्था लाती है, या हमें सहजता प्रदान करती है। भौतिक जगत में जो कुछ घट रहा है वह प्रकृति के सूक्ष्मलोक में पहले ही घटित हो जाता है। वह घटना हमारे जीवन की वर्तमान की तरह है।

कृष्ण ने गीता में अर्जुन को उपदेश देते वक्त कहा है, कि ये सब पहले ही मर चुके हैं, केवल तुम्हे युद्ध का अंजाम देकर इन्हें मारना है। तुम श्रष्टा नहीं हो, द्रष्टा हो! इसलिए हमारी सोच भूतकाल में नहीं चलनी चाहिए! हमें वर्तमान का क्षणिक छोटा पल भी नहीं गवाना चाहिए! वही छोटा पल हमारे और ईश्वर के बीच झीने मलमल जैसे परदे को हमें साम्यावस्था एवं सहजता में लाकर गिरा सकती है।

अहिंसा

अहिंसा शब्द भी सुनने में बहुत प्यारा लगता है। इसका शब्दार्थ भी है कि, जीव हत्या न करो, किसी को दुखः मत दो, युद्ध से बचो ! अहिंसा की मूलभित्ति में जोड़ा गया है कि सत्य ही बोलो!

शाब्दिक अर्थ का ही प्रयोग कर हम अपने आपको अहिंसक की श्रेणी में ले आते हैं! क्या कभी हमने सोचा है कि प्रकृति को साम्यावस्था में आने के लिए कितनी हिंसा करनी पड़ती है? हम मनुष्य ही अपने प्राण शक्ति को बचाने के लिए दैनिक रूप में कितनी हिंसा करते हैं! इसका अन्दाजा क्या हमें है?

जब हम साँस लेते हैं, तो करोड़ों जीवाणु की हत्या हमें प्राण शक्ति देने में हो जाती है। साँस द्वारा कितने ऐसे जीवाणु है, जो चौबीस घंटे में ही जन्म, बचपन, जवानी बुढ़ापा अपने कर्मबंधन के अनुसार झेलकर हमें स्वशनक्रिया द्वारा प्राणशक्ति देते रहते हैं।

हमारे शरीर में लाल रक्तकण चार महीने एवं श्वेत रक्तकण - बीस दिन में अपना बलिदान देते रहते हैं एवं फिर नये कोषों के भरण-पोषण में काम आते हैं। पाँच हजार न्यूरान सेल अपना बलिदान देकर एक बुन्द अमृत बनाते हैं एवं नाभिकुण्ड के सूर्यरूपा ताप में जलकर हमें दैनिक प्राणऊर्जा देते रहते हैं।

स्वच्छ रूप से पूजा करने में रेशमी वस्त्र धारण का विधान है। रेशमी वस्त्र आन्तरिक ऊर्जा को रोककर बाहरी ऋनात्मक (निगेटिव) ऊर्जा को भीतर नहीं जाने देती। लेकिन उस रेशमी वस्त्र के निर्माण में भी करोड़ों जिवाणुओं की हत्या हो जाती है। जो हम, अन्न, फल खाते हैं।

उसमें भी तो प्राणऊर्जा रहती है; जो अपना बलिदान देकर हमें प्राणऊर्जा प्रदान करती रहती है। जब दूध पीते हैं, तो लेक्टोजन नामक करोड़ों जीव की हत्या हो जाती है। पानी पीते हैं, तो करोड़ों जीवाणु अपना बलिदान दे देते हैं।

जब हम किसी बीमारी से अस्वस्थ होते हैं, तो चाली की दवा हो, या कैन्सर की, या मलेरिया की या सर्दी जुकाम की या किसी संक्रामक रोग (भाईरस इन्फेक्शन) की, तो अपनी प्राणरक्षा के लिए दवा खाकर करोड़ों जीवाणुओं की हत्या कर डालते हैं, अपनी प्राणऊर्जा बचाने के लिए। जब हम मल त्याग करते हैं, तो हमारे मल-मूत्र में करोड़ों जीवाणु अपने कर्मबंधन को झेलकर अपना बलिदान दे देते हैं।

जब हम पैदल चले या किसी मोटरसाईकिल से चलें, या कार से चले प्रकृति प्रदत्त कर्मबंधन को झेलते हुए, करोड़ों-खरबों जीवाणु का नाश हो जाता है।

दूध पीते हैं, तो बछड़े को बलात अलग कर, उसके हिस्से से अपनी प्राण रक्षा करते हैं। जब हम साधु, संत, ऋषि, मुनि, होकर घर छोड़ते हैं, तो सारे परिवार और समाज को दुख के सागर में छोड़कर हिंसा ही तो करते हैं।

हमारे जितने अवतार हुए हैं, सभी हिंसक रूप में अहिंसा और सत्य कायम करने के लिए हिंसा ही तो करते आये हैं। लेकिन एक आश्चर्य की बात सामने आती है।

डारविन के सिद्धान्त की तरह ही हमारे जितने अवतार हुए हैं, सभी का एम्बीबा जैसे एक कोशीय जीव की अवतारों का विकास, युग के परिवर्तन एवं उनकी सभ्यता के विकाश की तरह है।

मतस्य अवतार - जब पृथ्वी जलमग्न थी।

कच्छप अवतार - जल में पृथ्वी ने मिट्टी का भौतिक रूप लिया।

बराह अवतार - जब पृथ्वी ने कीचर और मिट्टी का रूप लिया।

नरसिंहा अवतार - प्रकृति में सिंह और मनुष्य के समागम के रूप से निकले और मानव का मिश्रित रूप जो विकास का प्रतीक है।

बामन अवतार - तीन पग में धरती, आकाश पाताल नाप लेना मतलब मनुष्य के ब्रह्मरंध्र के विकास से अनन्त आकाश तत्व का भी विकसित रूप जान लेना, यहाँ तक तो सतयुग के विकास का क्रम रहा। **इसके बाद त्रेता युग में।**

रामावतार - मानवता के चारित्रिक गठन के साथ अन्याय के विरूद्ध शस्त्र उठाने, आध्यात्मिक, अस्त्र-शस्त्रों के विकासवाद का सिद्धान्त। बारह कला के रूप में।

परसुराम अवतार - अनैतिकता को विनाश कर, धर्म स्थापना का विकासवाद।

कृष्णा अवतार - अध्यात्मिक एवं अस्त्र शस्त्रों का अतिविकसित रूप का दिगदर्शन एवं एक ही रूप में तमस्, रजस् एवं सतज् के रूप में साम्यावस्था की स्थिति लाकर, परमब्रह्म की अनन्त श्रृंखला का विकासवाद का प्रतीक। परम उत्कर्ष पर सोलह कला के रूप में।

गौतम और महावीर - समाज के अतिपतन के तमस्, रजस् रूप को अपने अहिंसा, प्रेम के अस्त्र से करुणा, मैत्री, एवं मुदिता के विकाश वाद का प्रतीक। **चारो युगों का विकास कथा डारविन के सिद्धान्त को प्रतिपादित नहीं करता क्या ?** सभी अवतार तो किसी न किसी रूप में हिंसा करते हुए ही दया, प्रेम, करूणा, मैत्री एवं मुदिता का समाजवाद तैयार कर पाये।

हम मनुष्य भी जहाँ खड़े हैं। वहाँ तक पहुँचने के लिए व्यालिस लाख योनियों जैसा कि पीछे चर्चा की गई है। वैसी योनियों को भी अपने कर्मबंधन पर झेलते हुए आज निर्मल काया एवं तन पाया है। अपने को अनन्त परमानन्द में शामिल कर कैवल्य रूप प्राप्त करने के लिए !

अब हमें कुल चौरासी लाख योनियों को पूरा करने के लिए व्यालिस लाख योनियों की उच्चतम श्रृंखला के पायदान पर अपने को अग्रसित करना हैं, या अधोगति प्राप्त कर फिर नीचे के कीट, पतंगों की योनियों के कर्मबंधन में जाना है !

तो क्या कभी हम सोचने को मजबूर हुए हैं? ऊपर के कैवल्य तक जाने के लिए हम अहिंसा, सत्य का चादर ओढ़कर, संतों, ऋषियों के श्रेणी में जाने के लिए केवल रूढ़िगत संस्कार तो पैदा नहीं कर रहे?

मनुष्य योनि कर्मबंधन के पायदान पर केवल सात बार मिलेगें। जिसमें हम अधोगति के पायदान पर व्यालिस लाख नीचे की योनि में जाय, या उर्ध्वगति के पायदान पर व्यालिस लाख ऊपर की योनि में जाय।

कर्मबंधन काटने का शस्त्र तो हमें इन्हीं सात मनुष्य योनियों में कुण्डलिनी जागरण द्वारा ही सम्भव है। चाहे कुण्डलिनी अष्टांग योग, पिपालिका मार्ग, या विहंगम योग, जो कर्मयोग की हठयोग की श्रेणी में है। या भक्ति योग- प्रेम और आस्था का पथ, या सत्य, अहिंसा का योग - जो करुणा, मैत्री, कैवल्य प्राप्त करने का योग है।

ईश्वर को सृष्टि चलानी है। इसलिए हमारी प्राणऊर्जा का अधिकतम भाग अधोगति में है। सूर्य हमारे आकाश गंगा में चतुर्थ आयाम पर हैं। केवल ऊँ का ही **स्पंदन क्षेत्र सप्त आयाम में है।** सूर्य का चतुर्थ आयाम काल राज्य में है।

जिसका मृत्यु निश्चित है, चाहे वो देवता, सिद्ध या ऋषि मंडल लोक के हों या ग्रह-नक्षत्र के रूप में हों! हमारे अनाहत तक चार चक्र हैं, जहाँ तक द्वैत है। हमारे षट्चक्र पर कहीं भी आत्मा का निवाश नहीं है।

वह तो हृदय गहवर के क्षेत्र में है, जो केवल शरीर का पम्प स्टेशन संमझ में आता है। इसलिए हमारी साधारण स्थिति में आत्मा भी द्वैत क्षेत्र में हैं।

प्राणऊर्जा का क्षेत्र प्राणचक्र माना गया है, जो अनाहत से नीचे बायें पिल्ही के पास चन्द्र चक्र एवं दाहिने पिल्ही के पास सूर्य चक्र के रूप में मौजुद हैं। जो हमारे शरीरगत एंव अध्यात्मिक ऊर्जा का बंटवारा सभी ग्लैण्ड एवं कर्मबंधन की गाँठ पर करती है। लेकिन है तो द्वैत क्षेत्र में ही !

ब्रह्मरंध्र में विष्णु को सर्पसैया पर सोये काम, क्रोध, लोभ, मोह का प्रतीक लिए शंख, चक्र, गद्ा और पद्‌म लिए दिखलाया गया है। लक्ष्मी जो आत्मा का रूप है, पैर के पास बैठी दिखलाई गई है।

लेकिन जब साधक द्वैत से अद्धैत क्षेत्र में अनाहत के क्षेत्र से ऊपर जाता है, तो अद्धनारीश्वर का रूप यानी स्त्री पुरूष का भेद मिट जाता है। केवल ऊँकार शब्दनाद के बाद निराकार हो कैवल्य की स्थिति में आने पर सूर्य के चतुर्थ आयामी क्षेत्र, जो स्वास्तिक के रूप में दिखलाया गया है, उससे ऊपर दिव्यराज में प्रवेश कर जाता है। जो निर्वाण से ऊपर की स्थिति है एवं ओंकार शब्द का क्षेत्र सप्त आयामी है, उस क्षेत्र में प्रवेश कर जाता है।

गायत्री साधना भी द्वैत क्षेत्र में समझ में आती है। चूंकि उसके दो रूप का वर्णन सावित्री और गायत्री के रूप में है। जिसका उदगित क्षेत्र सूर्य का चतुर्थ आयामी क्षेत्र है और आठ दल पर दिखलाया गया है,

षट्चक्र पर अष्टदल कहीं नहीं दिखलाया गया है। इसलिए गायत्री का उदभव प्राणचक्र यानी सूर्यचक्र जो दाहिने पिल्हे के पास है एवं सावित्री जो चन्द्रचक्र बायें पिल्हे के पास है, उन्हीं क्षेत्रों में समझ में आती है, जो द्वैत क्षेत्र में है।

किसी भी बिन्दु को कितना भी काटा जाय, इलेक्ट्राँन, प्रोटाँन और बीच में न्यूट्रॉन का स्पंदन क्षेत्र तो नजर आयगा ! मनुष्य का शरीर हो या शुद्धतम एटम हो।

कवान्टम के सिद्धान्त में न्यूट्रान पर निगेटिव एवं पोजेटिव ऊर्जा का मिश्रित

रूप अर्द्धनारीश्वर की स्थिति में आ जाने का प्रतीक है। जो न्यूट्रॉन के हजारों भाग कर देने पर भी ऋण विद्युत एवं धन विद्युत साम्यावस्था में ही फिर न्यूट्रॉन के रूप में प्राप्त होगा।

जिसमें महारेणु के अन्दर सृष्टिकर्ता का निवास है, जहाँ तक मनुष्य योनि में पहुँचना असंभव है। जितनी चर्चा की गई है। वो अहिंसा शब्द के नाद रूप को प्रस्तुत करने के लिए किया गया है। **अहिंसा क्षेत्र में**

मूलाधार पर - करुणा।

स्वाध्ष्ठिान पर - मैत्री

नाभिकुण्ड पर - मुदिता का क्षेत्र है।

करुणा - अगर हम किसी पर दया करते तो क्रोधवश कुदया भी कर सकते हैं। करूणा का क्षेत्र विश्वव्यापी है, जो ऊँ के सप्त आयामी क्षेत्र तक जा सकता है। वहाँ दया, और कुदया का भेद नहीं रह जाता है। वह न्यूट्रॉन कि तरह ऐलेक्ट्रोन और प्रोटोन शक्तिशाली रूप न्यूट्रॉन पर अवस्थित होकर, निष्क्रिय अवस्था में आ जाती है।

मैत्री - अगर हम किसी पर प्रेम बरसाते हों तों, घृणा भी वर्षा सकते हैं। मैत्री की अवस्था आने पर प्रेम, घृणा एकाकार होकर ऊपर के सिद्धान्त की तरह सप्तआयामी हो सकती है।

मुदिता - मुदिता में प्रसन्न और अप्रसन्नता का भेद मिट जाता है एवं हम चिदानन्द स्वरूपा होकर सप्तआयामी हो जाते हैं। न किसी के दुख से दुखी होते है और न अपने दुख से दुखी होते हैं।

व्यासदेव ने जब अठारह पुराण लिख लिया तो शंकर जो आज्ञाक्षेत्र का केन्द्र है, उस पर उनकी व्याख्या है, कि अठारहों पुराणों का सार है कि, किसी के पीड़ा को दूर करो! लेकिन अपनी मुदिता अवस्था को मत खोओ!

लेकिन हमारी सारी ऊर्जा नीचे की ओर बह रही है एवं करोड़ों जन्मों का कर्मबंधन किस तरह कायम कर रही है, इसका वर्णन पीछे भी करते आये हैं।

जापान के रेकी चिकित्सक जो प्राण चिकित्सा की तरह ही है। उनका कहना है कि, अगर बाएँ हाथ को इन्द्री के आगे मूलाधार क्षेत्र के सामने रखा जाय और दाहिना हाथ ब्रह्मरंध्र के ऊपर जो सहस्रदल चार अँगुल ऊपर है, उसके

सीध में चार अंगुल ऊपर रखा जाय, तो दोनों हाथों में ऊर्जा का प्रवाह बहुत प्रबल हो सकता है। चूंकि कामक्षेत्र प्राणऊर्जा का ज्यादा से ज्यादा भाग ले रही है, जो हमारे इन्द्रीय क्षेत्र से बहुत प्रबल रूप से निकल रही है।

लेकिन महावीर को नग्न अवस्था में दिखलाया गया है। क्या हमने कभी सोचा है कि महावीर ने वस्त्र गिराये नहीं, वस्त्र तो स्वयं गिर गये। क्योंकि करुणा, मैत्री, मुदिता की अवस्था आ जाने पर किसी चक्र की साधना की जरूरत नहीं रही। सूर्यस्वर एवं चन्द्रस्वर तो द्वैत में है।

सुषुम्ना से जब करुणा, मैत्री और मुदिता की ऊर्जा का प्रवाह उर्ध्वगामी हो जाता है, तो उधोगति का आकर्षण कैसा! अधोगति के क्षेत्र से भी विश्वव्यापी कम्पन्न क्षेत्र की उर्ध्वगति की अनन्त परिधि से ऊर्जा निकलने लगती है। महावीर की सम्पूर्ण ऊर्जा का क्षेत्र मूलाधार. से ब्रह्मरंध्र तक विश्वस्तरीय हो गया। मूर्तियों एवं फोटों में उनके चेहरे पर करुणा, मैत्री, मुदिता के अलावे तो कुछ दृष्टिगोचर ही नहीं होता।

क्या हमारे साधु-संत इन क्षेत्रों से ऊपर आ पा रहे हैं? या रूढ़िवादिता का चादर तो नहीं ओढ़े हैं?

कृष्ण के पुरुष भक्त भी अपने को गोपी के रूप में मानते हैं एवं औरत धर्म के तरह मासिक धर्म का ढकोसला करते हैं। क्या यह कृष्ण जैसे तमस्, रजस्, सतज् के स्वरूप का उपहास नहीं कर रहे हैं। ?

पीछे विहंगम योग की कुण्डलिनी साधना में, केवल मूलाधार और आज्ञाचक्र की प्रधानता की व्याख्या की है। लेकिन यह तो करुणा, मैत्री, मुदिता के स्वरूप में आ जाने पर ही सम्भव है। षट्चक्र दर्शन में ब्रह्मनाड़ी की चर्चा की गयी है। वह तो दिव्यराज में प्रवेश पाने की नाड़ी गति है।

कृष्ण को आज हम सांतवे नर्क में डाल रहे हैं। चूंकि महाभारत में अर्जुन को उकसाकर महाभारत जैसे महान संग्राम को अन्जाम दिया। जिसमें अठारह अक्षौनी सेना की नरबलि हो गयी।

लेकिन कृष्ण जैसे व्यक्तिव के ऊँचाई के सतज् स्वभाव को तार्किक व्याख्या से हमारे मुनिजन नहीं टाल पाये। मनिषियों की विवेचना है कि प्रलय के बाद प्रथम तीर्थंकर के रूप में कृष्ण ही जन्म लेगें।

लेकिन हम क्या, कृष्ण भी किसी के कर्मबंधन को नहीं काट पाये!

वो तो कटेगा तभी, चाहे जिस रास्ते से भी हो, हमारी दिव्य अग्नि प्रज्वलित होकर ब्रह्मरंध्र से मिलेगी। महावीर को अपने देवत्व एवं मानव जन्म के कर्मबंधन को काटने में चौबिस जन्म लग गये।

कहा जाता है कि जब महावीर ने ज्ञान के ब्रह्माण्डीय स्तर को प्राप्त किया, तो देवताओं ने नतमस्तक होकर पुष्पवर्षा की। क्योंकि देवता भी अपने कर्मबंधन को इतने ऊँचाई के सतज् क्षितिज पर नहीं ला पाये। चाहे पौराणिक कथाओं के ब्रम्हा, विष्णु, महेश या देवताओं के राजा इन्द्र, ही क्यों न हो, मनुष्य के ब्रह्मरंध्र के नीचे गुहानी नाड़ी से ऊपर नजर नहीं आते!

षटचक्र पर डाकनी राकनी, लाकनी, काकनी भी द्वैत के क्षेत्र में नजर आते हैं। लेकिन शाकनी, हाकिनी अद्वैत के क्षेत्र में नजर आते हैं। क्योंकि हमेशा वर्णन किया गया है, कि यह जगत मैथुनी है एवं बिना स्त्री पुरूष के संकेत के जो निगेटिव-पोजेटिभ के मिश्रित रूप में न्यूट्रॉन में नजर आते हैं। जो एकाकार होकर परमब्रह्म स्वरूपा होकर, शिव - शक्ति का मिश्रित रूप ही सृष्टि का कारण है।

अनाहत एवं चित्त्शक्ति, स्त्री में निगेटिव पोल पर ज्यादा मजबूत एवं सक्रिय है। इसलिए षट्चक्र के हर दल के हर कम्पन क्षेत्र में देवी स्वरूपा शक्ति के होने का संकेत हैं। जो ममतामयी शक्तिशालनी देवी के करुणा, मैत्री एवं मुदिता के प्रतीक में हर मानव में बीज रूप में मौजूद है।

अपने अन्दर के बीज के तमस्, रजस्, एवं सतज् के आनन्दस्वरूपा चिदानन्द के अमृतमय स्रोत के झारना को, क्यों नहीं सिंचित कर पा रहें? हमारे अन्दर प्राकृतिक रूप से करुणा, मैत्री, मुदिता का बीज, तमस्, रजस् एवं सतज् के उच्चतम् शिखर तक की कम्पन्न क्षेत्र को लिए हुए है।

व्यवहारिक रूप से हम जो भी काम अत्यधिक या शारीरिक चेतन अचेतन रूप में करते हैं। उसका बंटवारा प्राणऊर्जा के रूप में हमारे शरीर के करोड़ों सेल को देते हुए, हमारे शारीरिक एवं मानसिक ओरामंडल के प्रकाश के रूप में अभिव्यक्त होने लगता है।

उदाहरण के लिए हम तीन ऐसे व्यक्ति का चुनाव करें। जिसमें एक डाकू जिसने जघन्य अपराध किया हो ! दूसरा जिसने कामुक्ता प्रधान खेल को ही जिन्दगी

का उच्चतम शिखर माना हो ! एक साधु जिसने दया, प्रेम, करुणा, मैत्री में जीया हो। हम सबकों उनके विपरीत स्वभाव का वस्त्र एवं विपरीत स्वभाव का सारा मेकअप कर दे। लेकिन जब उसके शारीरिक एवं मानसिक ओरामंडल को ध्यानस्थ भाव से देखेंगे, तो सबों की मानसिक स्थिति का स्पष्ट ओरामंडल नजर आएगा।

इतना ही नहीं, प्राणऊर्जा का निस्तरण स्वभाव के अनुरूप देखने के लिए हम अपने उर्वरित खेत या बागवानी में तीन क्यारी बना लें ! तीनों के हाथ से बहुत अच्छे ढंग से तैयार किये गये सिंचित क्यारी में, अलग-अलग बीज डालने को बोलें एवं प्रतिदिन तीनों व्यक्तियों को अपने-अपने क्यारी को सिंचित करने को बोलें !

केवल इक्कीस दिन के प्रयोग में देखेंगे की, जो डाकू प्रवृत का जघन्य अपराध करने वाला है, उसका बीज कहीं-कहीं पीलापन लिए पैदा लेगा। कामी पुरूष का बीज पैदा तो लेगा, लेकिन न हरापन होगा न लहलहाता होगा। लेकिन एक साधु जो क्यारी में बीज डालकर सिंचित करता रहा, उसका क्यारी हरा-भरा एवं मनमोहक होगा।

इसलिए इस उदाहरण को पेश किया गया है, कि हमारे अन्दर करुणा, मैत्री, मुदिता, दया, प्रेम, का बीज तो है! लेकिन उसको जबतक उचित भूमि एवं उचित मौसम का संयोग साधु, संत, दिव्य तीर्थस्थल, के ओरामंडल में सिंचित नहीं किया जायगा, तबतक हम अपने तमस्, रजस् एवं सतज् स्वभाव को उच्चतम शिखर तक नहीं ले जा पायेगें।

जिन साधु संतों का प्राणऊर्जा ऊर्ध्वगति को पकड़ लिया है, उनका ओरामंडल भी विशुद्धतम रूप ले लिया होता है। जो हमारे सत्य अहिंसा, करुणा मैत्री के भावों के बीज के प्राणऊर्जा को सिंचित कर रहे हैं एवं हम उनके शुद्धतम ओरामंडल में अपना ओरामंडल मिलाकर विश्वस्तरीय कम्पन्न क्षेत्र में आने का सौभाग्य प्राप्त कर रहे हैं।

क्रियारूप के वर्णन में चर्चा किया गया है, कि गुरु जिस समय ध्यानस्थ हों तो उनका ओरामंडल का विस्तार बहुत बड़ा हो जाता है। उनकी परिधि में अगर हम करुणा, मैत्री, मुदिता का ध्यानस्थ अभ्यास करते हैं, तो हमारे अन्दर के प्रकृति प्रदत्त बीज को उचित मौसम और उचित सिंचित भूमि मिल जाता है एवं हम भी तमस्, रजस्, एवं सतज् के ओरामंडल के विकास क्षेत्र में विश्वस्तरीय हो जाते हैं।

आत्मगति तो 186000 मील प्रति सेकेण्ड है। लेकिन कुण्डलिनी गति 345000 मिल प्रति सेकेण्ड है।

अहिंसा की मूलभित्ति करुणा, मैत्री और मुदिता है, जो अपान क्षेत्र में है। जब कुण्डलिनी करुणा, मैत्री और मुदिता के सतज् भाव में ब्रह्मरंध्र के 1008 फेरे पर बैठे उत्तरी ध्रुवीय गुहानी नाड़ी में प्रवेश करती है, तो आत्मा भी चित्रणी नाड़ी के द्वारा अपनी गति से गुहानी नाड़ी में समाहित होकर एकाकार हो जाती है।

दक्षिणी और उत्तरी ध्रुव का प्रतीक विष्णु रूपा ब्रह्मरंध्र में समाहित हो, निराकार की स्थिति में आकर ब्रह्मलीन होकर, ब्रह्मनाड़ी जो दिब्यराज में जाने का अन्धबिन्दु(ब्लैकहोल) का दरवाजा है, निर्वाण की स्थिति पाकर षट्चक्र की सारी सिद्धियां प्राप्त कर लेती है। दिव्याराज में प्रवेश मतलब जन्म-मृत्यु से पूर्ण मुक्ति। लेकिन ये ब्रह्मनाड़ी भी तो मूलाधार के अपान क्षेत्र से ही निकली है। जहाँ अहिंसा की मूल भित्ति करूणा .मैत्री, मुदिता का झरना बह रहा है।

अपान क्षेत्र का मूलाधार ही भावलोक में प्रवेश का मुख्य द्वार है। जो अनन्त ब्रह्माण्ड का स्पदंनक्षेत्र लिए सुषुम्ना द्वारा ब्रह्मरंध्र में मिलकर ब्रह्माण्डीय स्तर का हो जाता है।

इसलिए अहिंसा के गंगोत्री से निकलने वाली, करुणा, मैत्री, मुदिता की त्रिधारा गंगा, षट्चक्रों के हिमालय से निकलने वाली दिव्य उपलब्धियाँ- अनिमा, गरिमा, श्री विद्या, षोडशी विद्या, हादि विद्या, कादी विद्या, कहादी विद्या, जो त्रिपुर सुन्दरी की तुर्यावस्था तक की वाचक स्वरूपा है।

जिसकी उपासना इन्द्र, कामदेव, ऋषियों में दुर्वाशा, अगस्त्य, विश्वामित्र, ने भी की। (चित्र संख्या-16) इन सिद्धियों का सिद्धांत जंगल पहाड़ों को तोड़ती-फोड़ती ''कुण्डलिनी जागरण द्वार है गृहस्थी'' के साधकों को ब्रह्माण्ड के अनन्त कम्पन्न क्षेत्र के महासागर में मिलाकर महारेणु में बैठे ब्रह्मानन्द के परिधि में ले आती है ।

साधक महावीर के निर्वाण एवं सप्त ऋषियों के नक्षत्रमंडल के कम्पन्न क्षेत्र में आकर विराट में समायोजित हो जाते हैं।

सहजता

योग का क्षेत्र कुण्डलिनी साधना या तांत्रिक-मांत्रिक साधना या बैध, डाक्टर, वैज्ञानिक, संगीतज्ञ, कवि, व्यापारी इत्यादि। जितनी भी साधना या व्यवहारिक जीवन का क्षेत्र है, सहजता के भाव में आये वगैर, किसी में सफलता नहीं है।

सफल होने के लिए प्रत्येक क्षेत्र के हर बिन्दु पर सहजता, हमें सफलता के उँच्चतर शिखर पर ले जायेगी। हम अहिंसा एवं सत्यभाव की स्थिति को उँचा मानते हैं। लेकिन हम अहिंसा के नाम पर जीव-रक्षा की ओर ही ध्यान देते रहेगें, या सत्य के नाम पर वचनों का बोझ अपनी वाणी पर डालते रहेगें, तो अति का गांठ तो पड़ेगा ही! जो हमे सहज होने में बाधक होगा।

अहिंसा का उँच्चतर शिखर है कि "मैं न किसी के दुख से दूखी होंऊ और न किसी के सुख से सुखी होऊ ! दुख और सुख का व्यापार अपने पर हो या दूसरे पर तराजू जब समतुल्य में आयगी, तो ही करुणा का भाव लेकर सचिदानन्द स्वरूपा हो पायगें !"

दान, पूजा, यज्ञ कोई शुभकर्म ही कर रहे हैं। लेकिन करने के फल की अंहकार की गाँठ तो हमे बाँधेगी ही! जो सहजता के तराजू को समतुल्य नहीं होने देगी।

आज के वातावरण में इतना सामाजिक एवं प्राकृतिक अशुद्धता है, कि हम अपनी शुद्धता को बिल्कुल खो गये हैं। महाभारत काल में इतनी सरलता, सौम्यता, संकल्पवान एवं ध्यानस्थ होने की कला प्रखर थी कि क्षण-मिनट में युद्ध जैसे कोलाहल भरे मैदान में भी योद्धा मंत्र द्वारा आवाहन कर भयंकर से भयंकर विभीषिका की स्थिति पैदा कर देते थें।

वे उतने सामरीक स्थिति में भी अपने को सहज कर लेते थें। संकल्पवान ध्यान सधने पर ही समाधि लग सकती है।

सहजता के व्याख्या में एक कथा आती है, कि एक साधक हिमालय की कंदरा में तीन साल तक तपस्या कर, जब कुछ नहीं पाये, तो निराश होकर एक पेड़ के नीचे बैठे थें।

बन्दर ने पेड़ पर मकड़ी का जाल तोड़ दिया और मकड़ी ने फिर जाल बुन लिया। यह देखकर प्रोत्साहित हुए एवं फिर तपस्या में लग गये।

जब तीन साल तक फिर कुछ नहीं प्राप्त हो पाया, तो तपस्या छोड़कर बाहर निकलकर फिर पेड़ के पास बैठ थे। तो चींटी को बार-बार चढ़कर गिरते-चढ़ते देखकर फिर प्रोत्साहित हुए और तपस्या करने लगे।

नौ वर्ष की तपस्या से विफल होकर वापस समतल में गाँव की ओर लौट रहे थें, कि एक कुत्ते को पीब और पिल्लू से बिलबिलाते बैठे देखा। मन में करुणा का भाव जागा और वे बैठकर कुत्ते को सहलाकर उसके पीब से पिल्लू को बीछकर निकालने लगे।

करूणा में सहजता का भाव आने से उनपर अंतरिक्ष का आकाश उतर आया एवं उन कुछ क्षणों के सहजता में उन्हें ब्रह्माण्डीय ऊर्जा का प्रवाह प्राप्त हो गया एवं ज्ञान के अगम अथाह सागर से उन्हें भर दिया।

जैनियों में शिष्य जब किसी अध्यात्मिक उपलब्धि की चर्चा गुरु से करते हैं, तो गुरू अचानक उन्हें खिड़की या दरवाजे से भी बाहर फेंक देते हैं। जिससे चोट के अलावे हाथ-पैर टूटने की भी सम्भावना रहती है। इसका कारण है कि, शिष्य अहंकार में अपनी सहजता न खो दे।

संकल्पनवल एंव सहजता योग की मूलमित्ति है। प्रकृति में या मनुष्य में ऊर्जा का बिनष्टिकरण कभी नहीं होता, रूपांतरण होता है।

माँतगी योग में जब साधक की उँच मनोवृति काम-कामेश्वरी के उँचतम स्थिति में नग्न स्त्री को भी सामने रख अराधना करते हैं, तो वासनात्मक ऊर्जा काम-कामेश्वरी का विशुद्ध रूप लेकर रूपान्तरित ऊर्जा के रूप में हमारे स्त्रैन प्रधान केन्द्रो पर प्रवाहित हो, हमें तराजू के समतुल्य होने की तरह पुरूषत्व एवं स्त्रैन के केन्द्र के शक्ति प्रवाह को साम्यावस्था में ले आती है ।

हम सहज होकर समाधि की स्थिति में चले जाते हैं। मन्दगति की साँस भी संकल्पवान होने एवं सहजता का भाव आने में सहयोगी होता है। चूँकि तीव्रगति की साँस हमारे मनोवृत्ति की श्रृंखला को बनाये रखती है।

विष्णु, ब्रह्मरंध्र का प्रतीक

विष्णु के चित्र का चिंतन मनन करने से ऐसा प्रतीत होता है, जैसे वह मानवीय मस्तिष्क के ब्रह्मरंध्र में पीच्युटरी ग्लैण्ड का चित्रण किया गया है। क्षीरसागर में सौ फन वाले शेषनाग की सर्प शैया पर विष्णु भगवान, आनन्द एवं सहजता की मुद्रा में सोये हैं। लक्ष्मी पैर दबाती बैठी है। विष्णु के चारो हाथों में शंख, चक्र, गदा, पदम् का दर्शनीय चित्रण है।

ब्रह्मरंध्र के ऊपर का सिरा चार अंगुल ऊपर स्पदंन क्षेत्र बनाने वाले सुषुम्ना से जूड़ी होती है।

नीचे का सिरा गुहानी नाड़ी को जो सुषुम्ना नाड़ी से लिपट कर आत्मा रूपी लक्ष्मी और विष्णु रूपी ब्रहमरंध्र से एकाकार हो, शिव रूपी अर्धनारीश्वर का रूप लेकर, आज्ञाचक्र पर तीसरे आँख के प्रतीक से निकलते हुए, ईंगला पिंगला स्वशन नाड़ी से रस्से के लपेटे की तरह लिपटी हुई, दो भागों में दोनों आँख की कौरनियाँ में फैल जाती है।

सुषुम्ना द्वारा कंठचक्र के पास से दो भागो में बिभक्त होकर एक आज्ञाचक्र पर पिनियल ग्लैन्ड (कोषा) से एवं दूसरा शेषनाग की जीभ की तरह मेरूडण्ड से गुजरती हुई ब्रह्मरंध्र के ऊपरी सिरे से जुड़ती है।

अपनी ऊर्जा का सौरमंडल, सर से चार अंगुल ऊपर बनाए रखती है।

मस्तिष्क में दो काली पट्टी कनपट्टी से चार अंगुल भीतर, मस्तिष्क के चारो ओर शेषनाग के लपेटा मारे विष्णु की सर्पशैया की तरह, हजारो जन्म आगे-पीछे का चित्रगुप्त की तरह लेखा-जोखा रखती है।

ग्रे मैटर का गाढ़ा तरल पदार्थ, समुद्र के रूप में विष्णु की सर्पशैया पर सोने का दिग्दर्शन है।

उसमें सेरेब्रल नाम का लगभग 7 करोड़ सेल जो तीन सूक्ष्मतम वाल के कम्पन्न से भूत, भविष्य, वर्तमान की तरह, दैनिक सम्पूर्ण जीवन एवं हजारों योनियो का लेखा-जोखा अपने कम्पन्न से सैयारूपी कालीपट्टी में दर्ज करता रहता है।

चारो हाथ में शंख, चक्र, गदा, पदम्, काम, क्रोध, लोभ, मोह का प्रतीकात्मक है। शंख की ध्वनि एंव चक्र का चक्रवात प्रतीकात्मक है, हजारो लाखो ध्वनि तरंग की।

जो मध्यमा और पश्यन्ति वाणी के स्पंदन तरंग में- काम, क्रोध, लोभ, मोह के चक्रवता को काटते हुए परावाणी के स्पंदन तरंग में प्रवेश कर जाने का। प्राणऊर्जा का चक्रवात, चक्र और गदा के प्रतीक में मोह, माया, अन्याय, एवं अनीति का साम्राज्य भंग कर, सत्य, अहिंसा एवं धर्म स्थापना के लिए पौरूष के स्थाईत्व में दृष्टिगोचर होते हैं।

कमलपुष्प, विश्व प्रेम, त्याग, सत्य, अहिंसा फैलाकर करुणा, मैत्री और मुदिता के कमलपंखुरी के सुगंध से प्राणी मात्र को उद्धार कर, अपने में एकाकार करने के लिए द्रष्टाभाव में आकर, कैवल्य प्राप्त करने के स्वरूप में दृष्टिगोचर होते हैं। कथानक है कि विष्णु का द्वारपाल जय-विजय ही श्रापित होकर, सतयुग में हिरण्यकश्यप एवं हिरणाक्ष, त्रेता में रावण और कुम्भकरण, द्वापर में कंश एवं शिशुपाल, के रूप में पैदा लिए।

जिनके उद्धार के लिए क्रमशः **नरसिंहा, राम एवं कृष्ण** के रूप में विष्णु को जन्म लेना पड़ा। तीन युग में लाखों वर्ष के चक्रवात में इस श्राप की गति सम्पन्न हुई। यहाँ समय और दूरी का कोई महत्व नहीं रह जाता है।

इसी तरह हम मनुष्य में सुर्दशन चक्र की तरह, प्राणऊर्जा हमारे श्रापित कर्मबंधन को काटकर, हमारे कुण्डलिनी जागरण द्वारा उर्ध्वगति पकड़ लेने पर, ब्ररमरंध्र में पहुँच कर, दिव्यभाव में चली आती है **एवं हम स्वयं राम, कृष्ण और विष्णु के श्रेणी में चले आते हैं।**

विष्णु के ओरामंडल का चित्रण, मनुष्य के चार शरीर से ऊपर जाने पर सुनहला एवं उजला के समिश्ररण से ओरामंडल का प्रकाश परिधि दिखलाया गया है।

काम-काला एवं नीला, क्रोध-लाल, लोभ-हरा, और मोह-पीला की परिधि में मनुष्य के चौथे शरीर तक की स्थिति हैं जो आवरण चित्र में दिखलाया गया है।

चौथे शरीर के ऊपर द्रष्टाभाव में विष्णु की तरह एकाकार होने पर ओरामंडल सुनहला सफेद के समिश्ररण के रूप में दिखलाया गया है।

स्वर्ग-नर्क

स्वर्ग और नर्क की सारी सम्भावनाएँ मनुष्य योनि की व्यवस्था है। ब्यालिस लाख नीचे की योनि के तरफ का दरबाजा तो जानवर, कीट, पतंग की ओर का दरबाजा है। जिधर नर्क तो है, लेकिन नर्क का एहसास नहीं है।

बकरे, बकरी, गाय, भैंस, मुर्गा के रूप में हम ही कट रहें होते हैं। कटते वक्त दूसरे को कटते देखकर हमें एहसास नहीं होता कि, हमें भी कटना है।

लेकिन कटते वक्त मृत्यु भय तो होता ही हैं, और हम चिल्लाते भी हैं। नर्क की जो कल्पना की गयी है की, वहाँ जलते कराही में हमें डाला जाता है। पीव के नदी में नरकंकाल जैसे जीव कष्ट से चिल्ला रहे हैं। समागम काल में हमें लाहे से दागा जा रहा है।

ये सारी कष्ट की परिस्थितियाँ हमारे दैनिक जीवन शैली का चित्रण है। हमारे शरीर में कैन्सर, टी० वी०, कुष्ट, एड्स, सिफलीश, वगैरह जो है। यही तो नर्क के रूप में हमें दंडित कर रहा है।

सच देखा जाय, तो हमारा विवेक और ज्ञान का स्पंदन तो स्वर्ग है। जहाँ प्रकाश का ही दिव्यराज्य का फैलाव है। मूर्खता अविवेकता अज्ञान का स्पंदन ही नर्क है। जहाँ अंधेरे का कालराज्य फैलाव है।

हमारा विवेक और अविवेक ही प्रतिपल हमें, स्वर्ग-नर्क के एहसास से गुजारता रहता है। जब हम क्रोध में होते हैं, तो सिंह और सर्प की तरह पशुता प्राप्त कर लेते है। जब प्रेम, दया, क्षमा में होते हैं, तो संत ऋषि की तरह प्रभूसत्ता प्राप्त कर लेते हैं।

क्रोध-घृणा, हत्या अपराध एवं क्षमा, प्रेम, दया, करुणा में प्राणी मात्र का कल्याण कर हम अपने कर्मबंधन में स्वर्ग -नर्क को बाँध लेते हैं। प्रतिपल सारा जीवन, हमारे जीवन-मरण, स्वर्ग-नर्क के एहसास से गुजरता रहता है।

गाड़ी, घोड़ा, बंगला, सुन्दर पत्नी प्रतिभावान बच्चे, धार्मिक प्रवृत, धर्म के प्रति आस्था, गुरु में सद्र्यभाव यही तो हमें स्वर्ग का एहसास दिलाता है।

मृत्यु के उपरान्त इन्हीं-सुख-दुख का प्रबल वेग हमें प्रेतयोनि में भोगना पड़ता है। मृत्यु के बाद जब हमें वैश्वानरलोक, मनसलोक, आत्मपरकलोक मिलता है। तो वही स्वर्ग का, भोग ही तो है!

अपान प्राण श्वाँस द्वारा ग्रहण कर जीवित होते हैं एवं **प्राण** श्वाँस को छोड़कर मरते रहते हैं। इसी क्रम में हमारी सोच में विवेक और अविवेक की श्रृखला, हमें स्वर्ग और नर्क का एहसास दिलाती रहती है।

क्रोध और द्वेष की ज्वाला तो किसी दूसरे को जलाने से पहले हमें स्वयं को जलाती है एवं दया, प्रेम, करूणा मैत्री का पृष्पकमल जब हृदय में खिलता है, तो उसके सुगंध से हम स्वयं सुवासित होते है एवं पूर्ण मानवजाति को सुवासित करते हैं।

प्रेतयोनि हमारे लिप्सा की योनि है। हम मनुष्य जीवन में क्रोध, घृणा, ईर्श्या द्वेष, कामुकता में एवं प्रेम, दया, क्षमा, करूणा, मैत्री या काम-कामेश्वरी का दिव्यभाव लेकर जिस पारीस्थिति में अपने जीवनशैली को गुजारते हैं।

वही स्वर्ग और नर्क के रूप में हमें प्रेतयोनि में भी भोगना पड़ता है। चौबीस तत्व में बारह तत्व लेकर मृत्यु के समय सूक्ष्म शरीर प्रेतयोनि को प्राप्त करता है।

आत्मशरीर उन बारह तत्व में एस्ट्रल कण में समाहित होकर मनुष्य योनि से भी ज्यादा ऊर्जावान होकर आत्मवेग एवं कुण्डलिनी गति से सूक्ष्म शरीर में प्रवेश करती है और स्वर्ग-नर्क का ज्यादा ही प्रबलवेग लम्बी आयु तक, भोग की स्थिति में हमें भोगना पड़ता है।

अगर हम मनुष्य जीवन में ही अपने धर्म एवं अधर्म के लिप्सा को शान्त कर **"पुरनी के पात पर रहकर जलवत बुन्द की तरह"** जीवन जीते हैं। तो सूक्ष्म शरीर में स्थित कारण शरीर जिसमें आत्मा विराजती है एवं अपने को दश इन्द्रीय के जेलखाने से मुक्त पाती है।

हम सिद्धलोक, ऋषिलोक जो सूर्यवलय के परिधि में है। इससे भी ऊपर अगर कुण्डलिनी ने उर्ध्वगति पकड़ लिया है, तो दिव्यभाव में जाने के लिए साम्यावस्था में आकर कैवल्य प्राप्त कर निर्वाण की गति में आकर, दिव्यराज में जाने के अधिकारी हो जाते हैं।

जहाँ अमर प्रकाश ही उद्‌गित हैं एवं पृथ्वी के जन्म-मरण स्पंदन के चुम्बकीय क्षेत्र से बाहर है।

रूढ़िवादिता

प्रतिपल, सूर्य, पृथ्वी, नक्षत्रों का बदलता, अक्षांश एवं समय गति जो कभी रुकता नहीं हमें नये आयामों में जन्म देता है एवं नया व्यक्तित्व पैदा करता है।

लेकिन हम कुछ बीते संस्कारगत आयामों में एवं विवेक की अज्ञानता में अपने समाज अपने परिवार, दिवंगत संत महात्माओं एवं आडम्बरी साधुओं के रूढ़िगत रिवाजों में आस्था रख, अपने व्यक्तित्व पर भी आडम्बर का खोल चढ़ा लेते हैं। जो कभी हमें अपने ईश्वर के केन्द्र बिन्दु तक नहीं पहुँचने देगा। हमें तो अपने अन्दर उठते भावनाओं, प्रेम, दया, करुणा, मैत्री, मुदिता के अथाह सागर में स्पंदित होकर एकाग्र होना है। तभी हमें अपने आत्मस्वरूपा, ईश्वरीय कील का दर्शन होगा।

हम अपने पुराणों, गीता, मद्भागवत, रामायण धम्म्पद्, महाभारत वगैरह धर्म ग्रन्थों को सीने से लगाये, उसी के कवित्वमय भक्तिरस में डूबना चाहते हैं।

क्या हम सोच पाते हैं, वह तो अतीत की व्याख्या है! हमारा प्राकृतिक मानवीय व्याख्या तो वर्त्तमान के परिवेश में है। ठीक है ! हमारे संस्कारगत बीज को अंकुरित होने के लिए उपर्युक्त वेद-पुराणों एवं साधु संतो के सूत्र एवं विचारधारा का सींचन अतिआवश्यक है। क्या हम उनके चिंतन एवं सूत्रों पर चल पाते हैं !

हम तो अपना मंजिल अपने अंदर के संस्कारगत ग्लैन्डस (कोषा) के श्राव से उत्पन्न रस-रसायन के प्राणऊर्जा द्वारा ही प्राप्त कर सकते हैं। राजा दशरथ भगवान के पिता थे। लेकिन शादियाँ तीन की और अपनी तीसरी पत्नी के बहकावें में आकर, राम जैसे पुत्र को वनवास दे दिया। धर्मराज पत्नी को जुए में हार बैठे। विष्णु भगवान, प्रतिव्रता बिन्दा को अपवित्र कर हमारे ब्रह्मरंध्र में बैठे हैं। ये रूढ़िवादिता के द्योतक नहीं तो और क्या है ?

भक्तजन प्रेमवश अपने वाँछित भगवान का गुणगान केवल महिमा के बखान में, अतिश्योक्ति में करते आये हैं। रामायण वाल्मिकी के संस्कृत संस्करण में होता तो कौन पढ़ पाता ! तुलसीदास ने इसको लौकिक भाषा में लिखकर सबके हृदय को छूने वाले कवित्वमय भक्तिरस से अहलादित किया। सारे वर्णन तो मानव स्वरूप राजा राम के ही हैं एवं भक्तिरस में डूबने के कारण कवित्वमय रूढ़वादिता से बंधे हैं।

कबीरदास ने अपने व्यवहारिक शब्दों में संस्कारगत जलते मशाल के अमृतवाणी को सामने रखा, तो उसे उच्चवर्गीय रूढ़िगत समाज ने स्वीकार ही नहीं

किया। महावीर के प्रेममय भक्तों ने ऐसा बखान किया कि, महावीर के रगों में उनके करुणा, मैत्री, मुदिता, के साम्यरस में आने के कारण दूध प्रवाहित होने लगा। भला मनुष्य शरीर में रक्त प्रवाह से दूध ही बड़ा हो सकता है ? यह कैसे सम्भव है? जबकि दूध बछड़े के हिस्से से छिनकर हिसां के श्रेणी में आता है

कोई कवि चाँद को देखता है, तो किसी प्रेयसी का मुखड़ा चाँद सा, आँख हिरण सा होने का वर्णन करता है। वास्तविक में चाँद तो बिल्कुल पथरीला है, एवं हिरण तो जानवर है, जो मनुष्य से ऊपर हो ही नहीं सकता ! यह तो कवि की केवल कल्पना है। जो उसके हृदय में उठते हिलोरे में अपने भावना के केन्द्र बिन्दु से वास्तविक रूप में देखने लगता है। उसी तरह हमारे शास्त्रों, व्याख्यानों में रूढ़िवादिता आ गयी एवं उनके अतिशय प्रेम औरं रूढ़िवादिता के कारण उनका स्वरूप बदल गया। इस रूढ़िवादिता का द्वन्द्व हमारे मस्तिष्क में राम-राबण के युद्ध की तरह विवेक-अविवेक के रूप में, दिव्यज्योति एवं अंधकार के रूप में पैदा होती रहती है।

लेकिन हम जब ध्यान और समाधि में अपने केन्द्र बिन्दु पर केन्द्रीत होंगे, तो कोई शब्द, कोई रूढ़िवादिता एवं कोई धार्मिक ग्रंथ एवं तंत्र-मंत्र सामने नहीं रह जायगा। हम निर्विचार, निर्विकार होकर परमतत्व में समाहित होकर एकाकार हो ईश्वरतत्व में मिल जायेगें ।

रूढ़िवादिता हमारे समाज, हमारे व्यक्तित्व को कुछ इस तरह जकड़े हुए है, कि हमारे विवेक और हमारे स्वाभिमान को कुचल कर रख दिया है। रूढ़िवादिता के चहार दीवारी में ज्ञान की मशाल को जलाने वाले को सूली पर चढ़ा दिया गया या प्रताड़ित, अपमानित किया गया। हम रूढ़िवादिता के घुटन भरी कुरीतियों से अपने आपके, साफ-सुथरे व्यक्तित्व को भी धूमिल कर लेते हैं।

कोई संत-महात्मा ने अपने ज्ञानगंगा को प्रवाहित कर, समाज को तृप्त करना चाहा! तो समाज ने ज्ञानगंगा से चूल्लू भर पानी पीकर, उस ज्ञानगंगा की अपरमित धारा को, अपने व्यक्तित्व व छोटे पात्र में समेट लेना चाहा। उसको धार्मिक रूप देकर एक संकीर्ण परिधि खींच दी। इस संकीर्णता ने मानवधर्म को हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, बौध, जैन, जैसे धर्मों में बाँध कर हमारे संस्कार को कूपमंडुक की छोटी परिधि में बाँध दिया। संत महात्माओं में तो, मानवता का खुला आकाश होता है।

साक्षीभाव

द्रष्टाभाव ही साक्षी भावदशा है। मन के खोने पर "मैं हूँ" तो रहेगा। मन के खोने का मतलव है "माया" खो जाना। माया खोने का मतलब साक्षी भावदशा में आ जाना। देखने वाला ही साक्षी भावदशा में आ जाय, तो हम आप जिसको देख रहे हैं,छोटा पड़ जायगा। इसलिए आपका आत्मा ही परमात्मा है, जो साक्षीभाव में है। मेरा अस्तित्व तो खो जाता है ।

लेकिन आत्मा स्थिर रहती है जो चैतन्य है, एवं चैतन्य अवस्था ही ईश्वर का रूप है। जो तुम्हारे भीतर छुपा है, और तुमसे बड़ा तो हो ही नहीं सकता! क्योंकि तुम "प्रारम्भ भी हो और अन्त भी"! मृत्यु तो चक्रवात है, आत्मा तो अमर है केवल चोला बदलती रहती है।

त्याग को भी छोड़ना नहीं कह सकते चूँकि छोड़ने की भिभिक्षा भी तो अहंकार पैदा करती है। कुछ छोड़ने के बाद भी हम कुछ पकड़ तो लेते ही हैं। चाहे स्वर्ग पकड़े या नर्क पकड़े, या ईश्वर के रूप को ही पकड़ लें।

लेकिन ईश्वर तो तुम्ही हो ! चूँकि तुम्हारा आत्मस्वरूपा होना ही ईश्वर का रूप है। वेद, कुरान तो निःशब्द से आई हैं, जिसे हमने शब्द में बाँधने का प्रयत्न किया है।

तीर्थ तो वही है, जहाँ से कोई आत्मस्वरूपा हो पाया। बोधगया बुद्ध की तपस्या करने से एवं पावापुरी महावीर के तपस्या करने से तीर्थ हो गया।

जहाँ तुम भी आत्मास्वरूपा हो पाओगे! वह तो तीर्थ ही हो जायगा एवं संसार का पथपत्तर्वतक होकर अमृत रूपा कलश स्थापित कर पाओगे!

तीर्थ के कारण तुम मुक्त नहीं हुए हो! नदी किनारे एवं पहाड़ों पर ज्यादा तीर्थ तुम्हारे आत्मस्वरूपा हो जाने के कारण साक्षीभाव आ जाने से तीर्थ हो गया। वहाँ तुम्हारी सुगन्ध अनन्तकाल तक फैली रहेगी और आत्मस्वरूपा होने बाले की चेतना में, प्रारम्भिक चेतना का बीज डालती रहेगी।

"मैं" का बोध- मिट जाने पर ही हम साक्षीभाव में आ जायेगें और पूर्णानन्द में एकाकार हो जायेगें। मन के तरंग के शान्त होने पर ही ब्रह्माण्ड रूपी सागर का हम साक्षीभाव हो पायेगें।

धर्म

हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, बौध, जैन- सभी धर्म को अपने प्रारूप में बाँधकर सीमांकरण करना चाहते हैं। वे परिधि से बाहर धर्म के संस्कार को स्वीकार ही नही कर पा रहे। इतिहास गवाह है, धर्म के नाम पर बराबर हिंसा होती रही है। कट्टरवादिता के कारण हिन्दू-मुस्लिम के दंगे तो आज भी बराबर होते रहे हैं। मंदिर और मस्जिद का द्वन्द तो भारतीय समाज क्या पूरे विश्व की मानसिकता को अलग-थलग किये रहता है। हमेशा आवाज उठती है, कि इस्लाम खतरे में है! हिन्दुत्व खतरे में है! लेकिन वैसा धर्म ही क्या जो खतरे में आ जाय ?

धर्म तो निरपेक्ष समाजवाद के सिद्धान्त पर आधारित है। सभी धर्म तो प्रार्थनामय एकाग्र होकर ईश्वरीय कील तक पहुँचना चाहते हैं, तो सभी की अलग-अलग चाहरदिवारी की किलाबन्दी कैसे हो सकती है। यह किलाबन्दी की प्रवृति तो केवल हमें धार्मिक बना रही है।

धर्म और धार्मिक होने में जमीन-आसमान का फर्क है। धर्म एक शान्त हवा का रूप है जो पूरे विश्व में एक ही हो सकता है, मानवता का धर्म। जिसतरह हर मनुष्य को, साँस देकर हवा अपना धर्म निभाती है। उसी तरह हर मानव में करुणा, मैत्री, मुदिता निरपेक्ष भाव से प्राणी मात्र के कल्याण के लिए धर्म का विस्तार सागर जैसा है। जैसे सागर में लहरे उठती है !

लेकिन फिर शान्त होते-होते सागर में ही विलीन हो जाती है। उसी तरह धर्म हमें जीवन-मरण के सभी लहरो को झेलती, तोड़ती हुई सागर में एकाकार होकर ईश्वरीय कील तक पहुँचाती है।

जहाँ धार्मिकता की कोई दिवार नही है। निरपेक्ष भाव से बिचारधारा की उन्मुक्ता में साँस लेने में कोई परिधि बाधक नहीं है। धर्म तो निलाभ आकाश की तरह खुला एवं स्वछंद ईश्वरीय परिवेश है। जहाँ जातिवाद, धर्मवाद की कट्टरता की कोई परिधि नहीं है।

विश्व में लगभग तीन हजार मुख्य धर्म हैं। लेकिन सबने ने अपनी अलग धार्मिकता का परिवेश बनाकर ईश्वर तक पहुँचने का रास्ता संकीण कर दिया है।

भारतवर्ष में ही उपदेश एवं व्याख्यानों के लिए प्रतिदिन लाखों पंडाल लगाये जाते हैं। जहाँ से हम मन के लुभावने भावुकता छूने के अपने भावनात्मक रस के

अनुरूप कुछ शान्तिदायक उपदेश को पल्लू में बाँधकर ले आते हैं एवं पाँच-दस दिन बीतते-बीतते उसे भुलाकर अपने मूल स्वाभाव में चले आते हैं। अगर इन पान्डालों की उच्च शिखर की भुमिका होती, तो क्या तीन हजार वर्षों में केवल दर्जन भर ही जगे पुरूप होते! जो हमें हमारे व्यक्तिव को उजागर कर, हमें ईश्वरीय कील तक पहुँचने के लिए झकझोर पाएँ।

हम तो आडम्बरीय साधु महात्माओं का पैर पकड़कर बैठ जाते है एवं अपने अतृप्त मनोकामना की पूर्ति के लिए सर्वस्व लुटा देना चाहते हैं। भला वो जो स्वयं अतृप्त एवं अवांछित है, हमें क्या तृप्त कर सकते हैं ! हमें तो हमारा भावनात्मक कर्तव्य एवं कर्म ही तृप्त कर सकता है।

जिसके लिए हमारी चेतना में सुलगती प्राणऊर्जा की चिंगारी ही हमें स्वध्याय एवं ध्यानस्थ केन्द्रीत होने पर पूर्ण ऊर्जावान कर हमें तृप्त कर सकता है।

हमारी धार्मिकता तो एक छोटी परिधि खींच देता है। जहाँ हमारा स्वक्षंद विचारधारा घुटकर दम तोरने लगता है एवं ईश्वरीय कील से दूर फेंक डालता है।

अतः हमें मानवता के धर्म में आकर करुणा, मैत्री, मुदिता का आकाश की तरह हो जाना चाहिए। ताकि मानव समाज का कल्याण कर, हम भी आकाश की तरह ईश्वर में एकाकार हो पावें।

धर्म के नाम पर जितने कत्ल और अन्याय हुए हैं, ऊतने किसी विनाशक बम से भी नहीं हुए। धर्म हमारे मनीषियों के सात्विक कृति पर ही बना। लेकिन उनके अनुयायिओं ने उन्हें अपने छोटे पात्र में समेट कर, बिल्कुल उसकी परिधि को छोटा कर दिया। **भला सत्य, अहिंसा, करुणा, का धार्मिक परिवेश भी छोटा हो सकता है?**

वह तो ईश्वर की परिधि की कील से जुड़ा एक स्वछंद आकाश है। हम धार्मिक होकर अपने धर्म और आत्मा की आवाज को नहीं सुन पा रहे हैं। जबकि हमारे विवेक हमें ज्ञान के खुले आकाश का पंछी बनाना चाहता है। धार्मिकता हमारे विवेक की ज्ञानगंगा को इस तरह गंदा कर रहा है, कि हमारी विशाल गंगा छोटी-छोटी नदियों और तालाबों में बँट कर अपनी स्मिता खो रही है।

आत्मखण्ड

प्रकृति, शक्ति से उत्पन्न बतायी गयी है, जो स्त्रीतत्व रूपा है। धरती पर जब अवतरीत पुरूष जन्म लेते हैं तो अर्द्धनारीश्वर रूपी रेणु से स्त्रीत्व, शक्तिरूपा खण्ड अलग होकर पृथ्वी पर प्रेमिका या पत्नी के रूप में जन्म लेती है। पुरूषतत्व स्वयं अवतारीय रूप लेकर जन्म लेते हैं। जो संकल्पित मानव कल्याण करते हुए दुनिया को अपना संदेश देकर, एक नया कीर्तिमान तैयार करते हैं। जैसे गौरी-शंकर, सीता-राम, राधा-कृष्ण इत्यादि । उनका गर्भाधान से लेकर बाल्यावस्था, युवावस्था सभी एक अदभूत लीला लिए हुए अलग-थलग व्यक्तित्व प्रदर्शित करता है।

हम मनुष्य भी सृष्टि के निर्माण में अपने अर्द्धनारीश्वर रेणु से ही अपने आत्मखण्ड से अलग होकर व्यालिख लाख योनि को झेलते हुए मानव तन पाया है। अगर हमारा ही आत्मखण्ड हमें पत्नी या प्रेमिका के रूप में मिल जाता है, तो उनका प्रेममय पुज्यारूप, फिर हमें स्वयं अपने में एकाकार कर अर्द्धनारीश्वर का रूप दे देती है। हम अपने ब्रह्मरंध्र में बैठे आत्मस्वरूपा दिव्यज्योति में समाहित होकर सच्चिदानन्द हो जाते हैं।

अपने ही आत्मखण्ड मिलने की कहानी लैला-मजनू सिरी-फहराद, हीर-रांझा इत्यादि प्रेमीजन दोहराते रहे हैं। प्रकृति हमारे पूर्वजन्म के, पूर्वसंस्कारगत कमबंधन के कारण बिस्मृत कर देती है। क्योंकि किसका आत्मखण्ड किसके साथ हो गया, यह हमारे लिए अवुझ पहेली ही रहना उचित है। राजा भरथरी के कथानक में आता है, कि पूर्वजन्म की माता ही उनको पत्नी के रूप में प्राप्त हुआ। उच्चसंस्कारगत अपने दिव्यज्ञान से अपनी माता के पूर्वजन्म को जान, स्वयं सन्यासी हो गये एवं अपनी पत्नी से माता का संबोधन कर भिक्षा माँगने लगे।

मनुष्य का मन भी आत्मखण्ड की तरह टूटकर शरीर और आत्मा का मिलनकर, मन के राज सिंहासन पर विराज रही है। शरीर और आत्मा को जोड़ने वाला मन ही इस जगत संचालन का कील है एवं एक दूसरे का आत्मखण्ड है।

हमारे मूलाधार का आत्मखंड ही ब्रह्मरंध है। जो कुण्डलिनी की सर्पनी, ब्रह्मरंध के सर्प से मिलकर एकाकार हो अर्द्धनारीश्वर हो जाती है। कुण्डलिनी जागरण की स्थिति में कुण्डलिनी रूपी सर्पनी एवं सर्प का नैसर्गित मिलन ही हमें चिदानन्द बना देता है।

अपरमित शक्ति

काम-कामेश्वरी की लीला एवं उसकी अपरमित शक्ति तो प्रत्येक मनुष्य क्या ! सम्पूर्ण प्राणी मात्र में व्याप्त है। लेकिन हम उसकी शक्ति से बिल्कुल अपरिचित हैं। जिस तरह परमाणु तो हर अणु में व्याप्त है, जिसकी सीमा अनन्त है।

लेकिन जब आईन्सटीन ने इसके सिद्धान्त को जाना, तो आज परमाणु बम से भी ज्यादा शक्तिशाली परमाणु को तोड़कर, न्यूट्रॉन बम के सिद्धान्त को जानने की तैयारी वैज्ञानिक कर रहे हैं। जिसमें विध्वंस की शक्ति से ज्यादा, कहीं सृजन की क्षमता है। महाभारत काल में पशुपास्त्र और ब्रह्मास्त्र तो अणु-परमाणु के विखण्डन को ही दर्शाता है।

पहले टेलीपैथी का प्रयोग कर सिद्ध पुरूष एवं योगी ही अपने मनःशक्ति को केन्द्रीत कर मध्यमा वाणी एवं परा वाणी के कम्पन्न द्वारा दूरस्थ देश-प्रदेश तक अपने संवाद को पहुँचा पाते थे।

लेकिन आज, मोबाइल एवं इन्टरनेट के आविष्कार से, बहुत कम मूल्य पर, हम इस टेलीपैथी यंत्र द्वारा पृथ्वी के किसी कोने में अपने संवाद का प्रसारण कर, आदान-प्रदान कर रहे हैं।

पृथ्वी क्या !

वैज्ञानिक तो अंतरिक्ष में भी अपने सेटेलाइट एवं उपग्रह को, दूसरे ग्रह पर भेजकर यहीं से नियंत्रण कर रहे हैं। हम घर में बिजली का मोटर चलाने के लिए इलेक्ट्रॉनिक शक्ति, उत्पादन द्वारा प्राप्त कर रहे हैं। लेकिन यह बिजली की शक्ति तो प्रत्येक अणु-परमाणु में प्रकृति के अनन्त छोर तक व्याप्त है।

उसी तरह यह काम-कामेश्वरी की अपरमित शक्ति तो हर मनुष्य की अमूल्य निधि है, जो सृष्टि को चलायमान और जीवन्त रख प्राणीमात्र को गतिशील रखते हुए इस नियन्ता के कील के चारों ओर चौरासी लाख योनि में भ्रमण कर रही है।

बन्धुओं !

इसी शक्ति को ''कुण्डलिनी जागरण द्वार है गृहस्थी'' में कुण्डलिनी की अपरमित और अनन्त शक्ति को, न्यूक्लियर (नाभिक) सिद्धान्त की तरह, आपके सामने प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

प्रत्येक नर-नारी में यह व्याप्त होकर अधोगति प्रवाह में प्राणी मात्र का संचालन कर रही है। इसी शक्ति को रिफक्सोलोजी (उलटा प्रवाह) के सिद्धान्त द्वारा मूलाधार पर कुण्डलिनी को जागृत कर उर्ध्वगति देना है।

इस अपरमित अनन्त शक्ति प्रवाह को काम-कामेश्वरी के लीला के रूप में-ऊँ, ध्यान एवं सहजता के प्रारूप में आकर, अपने अपरमित शक्ति द्वारा स्वयं ईश्वरीय-कील की ओर बढ़ जाते हैं ।

पशु भावदशा से वीर भावदशा की श्रृंखला पार करते हुए, परमानन्द, चिदानन्द का स्वरूप ले; दिव्य भावदशा में आते हुए, नर-नारी के प्राण शक्ति का एकाकार स्वरूप लेकर, अर्द्धनारीश्वर होकर, शिव-शक्ति की भैरवी लीला प्राप्त कर लेना है।

कुण्डलिनी जागरण की व्याख्या एवं चित्रों में चित्रित कथानक से यह पता चलता है कि आधा नाभिकुण्ड कामक्षेत्र में आता है। चौथे अनाहत केन्द्र से नीचे, जिसकी परिधि में प्राण शक्ति है, ज्ञान क्षेत्र में आता है।

वहाँ तक मानव की प्राण ऊर्जा का कम्पन्न क्षेत्र है एवं जहाँ तक बैखरी और मध्यमा वाणी की परिधि है। वहां तक अपनी विद्वता और ज्ञान-विज्ञान की जानकारियाँ लेखनी से दी जा सकती है। उससे ऊपर तो परा और पश्चयन्ति वाणी का क्षेत्र है, जो शब्दों में नहीं बाँधा जा सकता।

कृष्ण ने गीता की व्याख्या में इन्हें शब्दों में बाँधने का प्रयास किया है, जो मनुष्य योनि की सीमा तक की ही व्याख्या है। कुण्डलिनी जागरण की व्याख्या में, कुछ चित्रों एवं कथानक की व्याख्या से समझ में आता है, कि निर्वाण और मुक्ति शब्द, केवल मनुष्यगत कर्मफल की परिधि है।

शंकर की साधना भी काम-कला एवं काम-कामेश्वरी की साधना है। जो कथानक के रूप में मार्डकेण्डेय मुनि, चाँगदेव, काक भुसुण्डी बगैरह ऋषियों के अमरत्व प्राप्त करने की कथा है।

शंकर के त्रिनेत्र ताप से कामदेव का जलना, तो कुण्डलिनी जागृत प्रत्येक महामना के चौथे शरीर अनाहत की साधना से ऊपर आ जाने का प्रतीक है। ऐसे साधक में तो कामदेव भी विवश होकर शिथिल पड़ जाते हैं।
कामदेव तो मनुष्य के स्वगृह तक का ही आकर्षण है। पाँचवें शरीर विशुद्धाय में तो

काम-कामेश्वरी एकाकार होकर, अर्द्धनारीश्वर का रूप ले लेती है।

कभर पेज के मुख्य पृष्ठ पर काली को साम्भवी मुद्रा में, काम-कामेश्वरी के ऊँ के ध्यानस्थ मुद्रा में साधक पर, आरूढ़ दिखलाया गया है। जो मानवतन के मूलाधार चक्र के कम्पन्न क्षेत्र से ऊपर उठने का प्रतीक है।

जहाँ तक नाभि चक्र तक करुणा, मैत्री, मुदिता के नींव पर ही मानव जीवन से उच्च्य योनि की गति है एवं साधना को उच्चतम् गति देकर ही, सिद्धि प्राप्त कर सकते हैं।

ऊँ का भी शब्दब्रह्म का स्वभाव, चौथे शरीर मनस शरीर पर शून्य की स्थिति में आकर, अर्द्धनारीश्वर का रूप ले लेता है। अनाहत चक्र तक ही, ब्रह्मचर्य एवं काम-कामेश्वरी के समागम का महत्व है।

इसके बाद तो स्त्रित्व एवं पुरूषत्व का एकाकार रूप एक बिन्दु में समाहित हो, आगे दीपशिखा की लौ की तरह प्रज्वलित रहती है।

इससे आगे ऊँ शब्द का भी बैखरी और मध्यमा वाणी का कम्पन्न गौण होकर, निःशब्द हो जाता है एवं ब्रह्मचर्य का भी कोई महत्व नहीं रह जाता है। सारे कम्पन्न परा वाणी में चले जाते हैं।

शिव स्वरूप में तीसरे नेत्र का जो दिग्दर्शन किया गया है; वह तीसरा नेत्र प्रत्येक मानव स्वरूप नर-नारी में व्याप्त है। जिसको चित्रों और व्याख्या द्वारा प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

यह तीसरा नेत्र, आज्ञा चक्र एवं मूलाधार के कामकेन्द्र के दो छोर, धनुष की डोर की तरह नाभिकुण्ड के टंकार पर ध्यानस्थ होने पर, प्रकृति के किसी भी सिद्धान्त को भेद सकती है । आपका स्वरूप विश्वव्यापी होकर, परमानन्द का रूप ले सकता है।

इसलिए बन्धुओं जागो ! अपने स्वरूप को समझो !

इस काम-कामेश्वरी के सिद्धान्त को जानते हुए, इस सहजता के उपाय को, जो आपके हृदय गह्वर में प्रेम रूपी हिंडोले पर अवस्थित होकर, सुखमय गृहस्थ जीवन के संचालन में शक्तिरूपा पत्नी, दिव्यज्योति से प्रकाशवान हो रही है! उनके सहयोग से आह्लादित, आनन्दित सुखमय जीवन जीते हुए !

तोड़ डालो!

सारी अधोगति के कर्मबंधन को !

स्वयं राधा-कृष्ण, सीता-राम की श्रृंखला में अपने आप को अवस्थित कर डालो !

हमेशा कालीरात के बाद तो सूर्योदय होता ही है। जो संसार पर अपनी स्वर्णिम प्रकाश की आभा बिखेर कर जन-जन में जीवन डाल देता है।

अत्याचार, अन्याय, युद्ध, बलात्कार, की विभीषिका अब कुण्डलिनी जागरण के सूर्योदय से मिटने वाली है! तभी तो इस कुण्डलिनी जागरण का सिद्धान्त आपलोगों के बीच आत्मप्रकाश को फैलाने के लिए प्रेम और आस्था द्वारा जागरण का संदेश लेकर आया है !

युग परिवर्तन होने वाला है!

आप प्रज्ञावान नर-नारी में चेतना का प्रवाह हो चुका है!

अब तो राष्ट्र में वही स्वर्णिम युग आने वाला है!

''जहाँ डाल-डाल पर सोने की चिड़ियाँ करती हैं बसेरा!

यह भारत देश है मेरा'' का नारा ही नहीं गूँजने वाला है!

बल्कि पूरा राष्ट्र आत्मप्रकाशित नर-नारियों से भरने वाला है!

भागो ! भागो !

भागो ! भागो !

लेकिन भागकर जाओगे कहाँ? उत्तर में हिमालय रास्ता रोके खड़ा है। दो देशो का दुश्मन आतंकी हुए ''लेसर किरण'' दागने को तैयार है! दक्षिण में समुद्र की शोर भरी उत्ताल लहरें किनारे को तोड़े डाल रही है! हमारे तीर्थ सोमनाथ को आक्रमणकारी ध्वस कर चले गये और राजा दिन और मुहुर्त देखने में आक्रमणकारी के गुलाम हो गये।

क्या इसी तरह जीवन में दिन और मुहुर्त देखते हुए, तुम भी वासना में विवश होकर, क्रोध और हिंसा करते रहोगे ? हिमालय और समुद्र की तरह तुम्हारे जीवन के भी दोनों छोर जन्म और मृत्यु की परिधि में तुम्हें ईश्वर, साधक का जीवन बिताकर, तुम्हें अमर करने को उत्सुक हैं !

जिस तरह भारत माँ के सपूत रक्षा के लिए प्राण न्योछावर करते आये हैं। उसी तरह तुम्हारा, विवेक, तुम्हारा आत्मविश्वास, तुम्हारा दृढ़संकल्प बल, तुम्हारी

जीवननैया को उत्ताल तरंगों के तूफान से लड़ते हुए, शान्ति, करुणा, मैत्री के क्षीरसागर में ले जायेगी !

कभी अधिक मीठा खा लेने से भी हम जहरीला हो जाते हैं । उसी तरह क्षमा, दया का पाठ पढ़ते-2 हम बारह सौ साल से गुलाम हुए पड़े हैं । हमने आजादी तो पा ली है। लेकिन अपनी मानसिकता से भी आजादी पा ली है क्या ?

हम अपने समाज, अपने राज्य, अपने परिवार को स्वयं शोषित कर रहे हैं और लोलुप नेताओं के पीछे स्वयं भी शोषित हो रहे हैं।

हमें भी जापान की तरह "नागासाकी और हिरोसिमा" जैसे विनाशलीला के बाद भी विश्व के शिरमौर्य के रूप में अपने आपको एवं समाज, परिवार को अवस्थित करना है !

जिस तरह अर्जुन एक हाथ में तलवार और दूसरे हाथ में गीता संवाद की प्रखर ज्योति लिए, महाभारत संग्राम का महानायक धुरन्धर योद्धा था। उसी तरह हमें, हम जहाँ भी खड़े हैं, वहाँ से ही अपनी विद्वता, अपनी प्रखरता, अपना विवेक, अपना धन, अपने शौर्य का उचित उपयोग कर- देश, समाज, परिवार का सम्मानित एवं प्रखर अभिनेता हो जाना है।

"जापानी समूराय्" की तरह, हमारे एक हाथ में रक्षा का कवच लिए क्रान्ति की तलवार है, तो दूसरे हाथ में ज्ञान का दीया का स्वर्णीम प्रकाश लिए हमारा विवेक, हमारी क्षमा, हमारी मैत्री हमें अवतारीये पुरूष के रूप में, सूर्य किरण की प्रखरता एवं गंगाजल की शीतलता की तरह, हमें विश्व कल्याण एवं प्रेम का संदेश देने को अवतरीत कर रही है।

क्यों मूढ़ बने बैठे हैं ? सूर्य स्वयं ताप सहकर विश्व का निर्माण एवं कल्याण कर रही है। गंगाजल पीकर जन-जन शीतल हो रहा है। ज्ञान की प्रखरता एवं प्रेम की शीतलता हमारे संस्कार में बीज रूप में पड़े हैं, जिनके विकास की पूर्ण संभावना है ! जरूरत है उच्च गुरू एवं उच्च मनीषियों के निर्देशन की तो क्यों नहीं हम अपने ज्ञान का एवं विवेक का डोर थामकर, आकाश की ऊँचाई को थाम लें

भागो मत!

लौटो! पनपने दो अपने संस्कार और विवेक के बीज को और साधनामय जीवन जीकर, पा लो अपने जीवन के परम उत्कर्ष को!

ध्यान है ब्रह्मास्त्र

ध्यान हमें मृत्यु सिखाती है। ध्यान है मन की मौत। मूलाधार तो शक्तिरूपा सृष्टि चलाने के लिए प्रकृतिप्रदत केन्द्र बिन्दु है। लेकिन उसपर भी केन्द्रीत होना ध्यान सधने पर ही सम्भव है। आज्ञाचक्र रूपी गाण्डिव धनुष पर ध्यान ही ब्रह्मास्त्र है, प्रकृति के प्रत्येक अणुओ को वेध डालने की।

सभी देवताओं में केवल शिव स्वरूप को पारिवारिक रूप में दर्शाया गया है। जो प्रतीकात्मक है, हमारे गृहस्थ जीवन की अन्तरिम झाँकी की। गणेश जो हाथी का शिर लिए, ऋद्धि-सिद्धि, ईगला- पिंगला स्वशनक्रिया के प्रतीक में है।

कार्तिकेय छः शिर लिए षटचक्र दर्शन के प्रतीक में निर्भयता, वीरता, लिए नाभिकुन्ड के केन्द्र बिन्दु से शिव के अनुसाँर बिन्दु जो ऊँ के टंकार से, छहो चक्र को भेद डालने के प्रतीक में दृष्टीगोचर होते हैं।

भैरव माध्यम हैं हमारे शक्ति के प्रर्दशन की, जो ध्यान विद्या से प्राप्त ऊर्जा के केन्द्र बिन्दु द्वारा सृष्टि में कोई भी कौतुक या असम्भव दिखने वाले-भौतिक अभौतिक शक्ति को सम्भव कर दिखा देने की। कच्छप हमारे संयम के रूप में प्रतीकात्मक है।

शिव और पार्वती जो स्वयं काम कामेश्वरी का विशुद्धतम रूप है, हमारे गृहस्थ जीवन के सफलतम उत्कर्ष की। चार पैर वाला बसहा प्रतीकात्मक है, हमारे - काम, क्रोध, लोभ, मोह को मित्रवत् बस में करके शिव की तरह साम्भवी मुद्रा में आकर, ध्यानस्थ होकर परमतत्व के केन्द्र में कील में मिल जाने की।

इसलिए आज्ञाचक्र को शिवलोक कहा गया है। जहाँ हमारा निगेटिव एवं पोजेटिव पोल एकाकार होकर अर्द्धनारीश्वर का रूप ले लेती है।

अष्टांग योग में ध्यान, समाधि की पहली सिढ़ी है। ध्यान विद्या है, सबकुछ भौतिकवादी सुख-सुविधा को छोड़कर परमतत्व के कील के परिधि में आ जाने की।

ध्यान सधने पर ही समाधि साधना हो सकता है। समाधि तो आयोजित मृत्यु है। प्राकृतिक मृत्यु में जाकर हम कभी शरीर में नहीं लौट कर वापस आ सकते !

लेकिन समाधि में जाकर हम होशपूर्वक मृत्यु का दर्शन एवं अनुभव कर पाते हैं एवं प्रकृति के अनन्त ज्ञान विज्ञान को समेटे, फिर अपने शरीर में वापस आ जाते हैं।

ध्यान द्वारा ही हम सूक्ष्म शरीर को असीम ऊर्जावान कर सकते हैं एवं कारण शरीर को भेदते हुए आत्मस्वरूपा हो सकते हैं ।

आज्ञाचक्र के केन्द्र बिन्दु पर ही जब हमारा ध्यान सधता है, तो शिव का तीसरा नेत्र यानी आपका तीसरा नेत्र दिव्यदृष्टि के रूप में खुलता है एवं हम-आप-त्रिकालदर्शी हो जाते है। जिसको "जवाँ" सिद्धि बोलते हैं।

सम्मोहन में जब दृढ़ संकल्प होकर आज्ञाचक्र पर ही हमारा ध्यान सधता है तो हममें असीम आत्मिक बल पैदा हो जाता है। जो किसी का भी प्राण ऊर्जा हमारे आदेश क्षेत्र में चला आता है एवं अगले का सारा सकल्पबल छिन्न हो जाता है।

अलग से अनुस्वार बिन्दु डाले तो कोई महत्व का नहीं है। लेकिन वही ध्यान विधि में जब आज्ञाचक्र पर डालते हैं, तो तैतीस करोड़ देवता में जिस देवता को केन्द्र बिन्दु पर ध्यान का ब्रह्मास्त्र केन्द्रीत करते हैं, तो वही देवता आपको आशिर्वाद एवं दूनिया की शक्तिरूपा विभिन्न शक्तियाँ एवं उपलब्धि देने को मजबूर हो जाते हैं।

स्त्रियाँ में अनाहत मजबूत है, लेकिन ध्यान तो आज्ञचक्र के केन्द्रीत करने से ही होगा। स्त्रियों में कुण्डलिनी तो होती नहीं है। कुण्डलिनी का प्रतिनिधत्व गर्भाशय् करती है एवं सेक्सऔर्गन तो गर्भाशय के ऊपरीमूल में है। ब्रह्माण्ड के कील का मूल बिन्दु होने के लिए ध्यान ही सफल्तम बिन्दु है।

वासनामय लोक से ऊपर उर्ध्वगति के सतह में वैश्वानर लोक, मनसलोक, आत्मलोक के सूक्ष्म शरीरधारी आत्माओं को इच्छानुसार समृद्ध एवं ज्ञानपरख सुविधा प्राप्ति की शक्ति है। वे बार-बार उनलोकों के कर्मबंधन कटने पर, मनुष्य कोख में जन्म लेकर, जनहित एवं कल्याण का कार्य कर सकते हैं।

वैसे मनुष्य योनि लगातार कर्मवंधन के अनुसार सात बार से ज्यादा नहीं मिलती। लेकिन अधोगति में जाने पर कर्मबंधन अनुसार व्यालिस लाख योनि को भोगकर ही मनुष्य योनि के अंधबिन्दु पर आ सकते हैं। जो लाखो वर्ष के दुखदायी कर्मबंधन को झेलना है।

मन के तल पर कभी सुख नही है, केवल मृगत्रृष्णा है। आनन्द तो आत्मा के तल का विषय है और आत्मस्वरूपा होने के लिए ध्यान ही ब्रह्मास्त्र है। ध्यान साधना में, साधना के दो प्रारूप हैं।

एक तो अन्तर्मुखि साधना प्रवाह नाभिकुण्ड से ब्रह्मरंध्र तक की परमगती में एवं दूसरा बहिर्मुखी होकर सम्मोहन की प्रकृया में नाभिकुण्ड से आज्ञाचक्र होकर बाहर ध्यान को क्रेन्दीत करना। दोनों ही बिन्दु ध्यान साधना की उपलब्धि है।

लेकिन एक हमारे केन्द्रीत होने पर ब्रहरंध्र में परमगति पाकर कैवल्य देती है एवं दूसरा त्राटक में मास्तिष्क का मैगनेटिक फिल्ड प्रखर कर मानव कल्याण का वास्तविक रूप सम्मोहन विद्या द्वारा प्राप्त कराती है।

दोनों ध्यानस्थ बिन्दु से तुर्यावस्था की उपलब्धि प्राप्त हो सकती है। क्योंकि दोनों ही साधना में ध्यानस्थ बिन्दु अन्तरमन एंव बहिरमन के संधिकाल यानी साम्यावस्था में आने पर ही ध्यान का ब्रह्मास्त्र केन्द्र बिन्दु पर लगने से तुर्यावस्था को प्राप्त होती है।

दोनों में ही नाभिचक्र एवं आज्ञाचक्र के धनुष पर सुषुम्ना में त्वरित वेग से प्रार्णऊर्जा के प्रवाह से कुण्डलिनी के ऊर्जा स्रोत के प्रतंचा डोर पर ध्यान का ब्रह्मास्त्र रूपी बाण के केन्द्रीत करने पर ही हमें ईश्वारीय या अवतारीय रूप दे सकता है।

ध्यान कर रहें हो या चक्रो के सर्किल पर "ऊँ" का माला जप रहे हों, हमेशा सहजता का भावदशा लिए हुए, आँख साम्भवी मुद्रा में रहे या ज्ञान मुद्रा या किसी भी मुद्रा में हों, तनाव, न जबड़े पर हो, न अंगुली पर हो और न आँख के पलको पर हो !

ध्यान केन्द्र से ध्यान हटने पर सहजता समाप्त होने लगती है, एवं मानसिक एवं शारीरिक तनाव इन मुद्राओ द्वारा उपरोक्त बिन्दु पर अनुभव होने लगता है।

सुधिजन

इसलिए ध्यान रूपी ब्रह्मास्त्र से काम-कामेश्वरी की साधन कर, कुण्डलिनी जागरण को प्राप्त कर, बार-बार विश्व कल्याण हेतु मानव जीवन प्राप्त करने की साधना करें !

उपसंहार

इस छोटी पुस्तक के दूसरे भाग के प्राणिक ऊर्जा में प्रवाहित ऋषितुल्य संत, महात्मा अवधुत की श्रेणी में प्रकृति से आये सूत्रों के अवतरण एवं व्याख्या में इन प्राणवान महामना को भी नहीं भुलाया जा सकता है ।

जिसमें अग्रणी श्रेणी में-

(1) स्वामी योगेश्वर नन्द सरस्वती (2) पंडित अरूण कुमार शर्मा

(3) आचार्य श्री राम शर्मा (4) भगवान रजनीश

(5) नारायण दत्त श्रीमाली एवं (6) सुरेन्द्र नाथ सक्सेना

की विचार श्रृंखला की भी अभिव्यक्ति है । बहुत सारे लेखक, ज्ञानज्ञ एवं जाने अनजाने आत्माओं का विचार प्रवाह भी इस लेख को मूल्यवान बना सकता है ।

जयपुर के गुरुदेव संत सुशील वैद्य एवं प्राण चिकित्सक के प्रेरणादायक उत्साहवर्द्धक प्रेममय थपकी को भी अग्रणी श्रेणी में रखा जा सकता है । जिनके संकल्पबल में यह पुस्तक दोनों भागों में लिखी गयी है एवं "कुण्डलिनी जागरण उपहार है दिव्यभाव " भाग-तृतीय के लेखन के प्रणयदाता में भी उनको अग्रणी श्रेणी में रखा जा सकता है।

दिव्य शक्ति स्वरूपा पत्नी गीता देवी के आत्मीय सहयोग की तो बिल्कुल उपेक्षा नहीं की जा सकती, जिनके सैंतीस साल के गायत्री जाप का साधनारत स्वरूप, सहयोग में आस्था और विश्वास का संबल पकड़ यह तीनों भाग पुस्तक लिखी गयी है । जो उनके आत्मीय एवं प्रेममय ईश्वरीय विश्वास का प्रतिफल है ।

इस पुस्तक की सफलता का सारा श्रेय नारी शक्ति में अग्रणी किसी भी प्रेममय एवं दिव्यता का स्वरूप लिए शान्ति और करूणा का निर्भर स्रोत लिए, दाम्पत्य जीवन का है ।

जिनके अखण्ड प्रेममय दीपयज्ञ से सारा संसार उज्जवल ज्ञान एवं ज्योति प्रकाश से भरने वाला है ।

हम आज जिस नारी शक्ति को जगाने के लिए उद्घोष पर उद्घोष लिये जा रहे हैं एवं अपने संकल्पबल एवं साधना का सारा केन्द्र बिन्दु स्त्रीतत्व को मानते है; उसको हमारे इतिहास ने कितना रौदा है, उसकी कल्पना क्या हम कर सकते हैं ?

जिस तरह बंदर, हाथ में साँप को लपेटकर उसकी मूंडी पकड़ उसके लपलपाते उल्टे जीभ को तबतक रगड़ता रहता है, जबतक साँप मरनासन्न नहीं हो जाता । उसी तरह प्रकृतिरूपा नारी शक्ति को रगड़-रगड़ कर मरनासन्न कर दिया गया है ।

हम इतिहास के पीछे की ओर मुड़े तो हमारे अवतारीय पुरुष राम ने ही हमारी मिथिला की सुकुमार, सती रानी सीता को कितना रौंदा ! रघुकूल वंश में वचन निभाने की परम्परा, राजा हरिश्चन्द्र के समय से ही देखने को मिलती है ।

लेकिन विवाह मंडप में विवाह के समय जो सात कसमें, इहलोक और परलोक तक निभाने की खाई गयी, उन वचनों को उनके लीला स्वरूप में बता, नारी जाति के सम्मान की धज्जियाँ उड़ती दिखाई देती है । सीता और उर्मिला दोनों राम और लक्षमन के कठोर वानप्रस्थ जीवन को कितनी प्रेम, श्रद्धा और विश्वास के साथ निभाया, यह रामायण के मूलबिन्दु में दृष्टिगोचर होती है ।

लेकिन इस श्रद्धा और विश्वास की धज्जियाँ उड़ाते हुए राम ने सीता की अग्नि परीक्षा, धधकते अग्नि में जलाकर ली । इस अग्नि परीक्षा के बावजूद केवल एक धोबी के उलाहना पर गर्भिनी सीता को राजमहल से निकाल बनवासी कर दिया । अगर सीता पृथ्वी में न समा जाये, तो क्या करें ! श्रद्धा और विश्वास में प्रगाढ़ प्रेमबंधन को तो नहीं तोड़ सकती !

लेकिन हमारे राम के अवतारीय पुरुष होने से समाज और राष्ट्र ने, इस संगीन जूर्म को भी भुला दिया और आज जन-जन में राम भक्ति के रूप में राम, हृदय में विराज रहे हैं ।

हम कृष्ण की लीला गाथा को ही लें, तो सोलह हजार एक सौ नारी को तो हम योगीराज कृष्ण के श्वसन क्रिया द्वारा मुख्य नाड़ी संस्थान पर नियंत्रण की गति में देख सकते हैं । लेकिन एक रानी रूक्मणी और सात पटरानी तो थी ही ! कृष्ण तो अवतारी पुरुष थे ही ! लेकिन समाज द्वारा प्रचलित इस कुरीतियों को, वे भी नहीं तोड़ पाये ।

उनकी सारी प्रेममय बाल लीला नन्दगाँव वर्षाना तक, किशोरावस्था तक ही थी । जहाँ कामवासना की कोई सम्भावना नहीं होती है । लेकिन उसी किशोरावस्था के समय की मुख्य प्रेमिका राधा के विरह की गाथा हमेशा उनके

प्रेममय जीवन पर सवाल उठाती रही।

राधा के सवाल उठाने पर "कृष्ण ने राधा से शादी क्यों नहीं की !" तो कृष्ण का जबाव था "कि शरीर से शरीर के मिलन के लिए शादियों की आवश्यकता है ।

आत्मा जहाँ एकाकार हो जाती है तो इस सांसारिक विधि-विधान की क्या आवश्यकता है !" आत्मखंड से टूटी राधिका, फिर कृष्ण के आत्मखंड में समाहित हो, एकाकार हो गोलोकवासी हो गयी । जिस गोलोक की स्थिति अंतरिक्ष में सूर्य से ऊपर बाएँ अंतरिक्ष में बतायी जाती है ।

द्रौपदी जो महाभारत की मुख्य नायिका थी, उसका भरे दरबार में भट्ट योद्धाओं एवं ज्ञानज्ञ तत्ववेताओं के बीच बस्त्र हरण कर नग्न करने का प्रयास भी नारी शक्ति के कुचलते मनोबल का उदाहरण है ।

कृष्ण अवतारीत पुरुष होकर भी महाभारत की विनाश लीला को नहीं रोक पाये ! चूँकि प्रकृति को अपने विधान के अनुरूप किसी के जीवन-मरण और दुख-सुख से कहीं कुछ लेना देना नहीं है । उसे तो अवाध गति से अपना कर्तव्य पालन करना है । इसलिए प्रकृति स्वरूपा नारायण स्वरूप में, कृष्ण भी प्रकृति के किसी वैधानिक गति को नहीं रोक पाये ।

महाभारत काल के महायुद्ध के बाद विधवाओं से भरे महान भारतवर्ष में नारी सम्मान एवं आत्म सम्मान ने एक सवालिया निशान छोड़, सामाजिक व्यवस्था के संस्कार के टूटते गढ़ में, नारी शक्ति के मनोबल को टूटते हुए देखा गया । युद्ध में तो नारी जाति को ही दुख भोगना पड़ता है ।

यथा- किसी का पति मरा था, किसी का बेटा मरा था, प्रियतम मरा था, बन्धु और समाज मरे थे । सभी तरफ से नारी शक्ति को ही यह गंभीर चोट सहनी पड़ी थी । पुरुष राजाओं में तो केवल दंभ की तुष्टि ही देखने को मिलती है! जो नरसंहार से कभी सम्भव नहीं है ।

नारी शक्ति को कुछ इस तरह दबाया गया कि वह ज्वालामुखी हो चुंकि हैं। मानसिक व्यक्तिरेक में आज पुरुष का कालर नहीं फाड़े तो और क्या करें ?

जिस सामाजिक परिवेश में उनकी धधकती अग्नि शान्त हो एवं फिर से शान्ति, प्रेम, अपने बच्चे अपने समाज को शक्तिरूपा नारी स्वरूप में फिर से ऊर्जावान हो पाये, इसकी रूपरेखा आज के राजनायक एवं राजनायिका ने अपने संकल्पबल में लेकर एक सुसंस्कृत समाज के परिवेश तैयार करने के लिए करवट ले लिया है ।

वैसे जब भी कोई अवतार- संत, महात्मा, अवदूत मानव रूप में जन्म लेंगे; तो मानवीय सिद्धान्त के प्राकृतिक प्रारूप में शारीरिक एवं मानसिक सारे कर्मबंधन एवं कर्मफल तो भोगने ही पड़ेंगे !

हमारे अवतारीय परशुराम और कृष्ण, महावीर, गौतम, अरबिन्द, रामकृष्ण, सभी परमपद से जुड़ने के बाद अपनी शारीरिक बीमारी, कष्ट एवं विरह को नहीं रोक पाये । सभी को अपना कर्मफल भोगना पड़ा ! कोई भी काल की गति को नहीं रोक पाये ! रामायण को तो रामचरित्र से पहले ही, दिव्य दृष्टि से देखकर वाल्मिकी ने लिख डाली ।

सिक्के के दो पहलू की तरह दुख-सुख, मान-अपमान, हिंशा-द्वेष का सामना तो करना ही पड़ेगा ! क्योंकि रोशनी के साथ उसका अंधेरा पक्ष तो रहता ही है । द्वैत को मिटाया नहीं जा सकता ! उसको एकाकार कर स्वीकार किया जा सकता है !

स्त्रीतत्व नारी शक्ति प्राकृतिक रूप से शिवरूपा पुरुष तत्व से हमेशा ज्यादा ऊर्जावान रही है । क्योंकि प्रकृति स्त्रैन रहस्य से भरा पड़ा है । इसलिए इनके स्त्रैन शक्ति को पुरुष ने कुचलकर अपना वर्चश्व कायम रखने की सामाजिक व्यवस्था बनायी ।

अगर शक्ति रूपा स्त्रैन तत्व को आज भी दबाकर नहीं रखा जाय, तो नारी जाति हमेशा अग्रणी श्रेणी में रहेगी । जितने धार्मिक एवं सामाजिक परिवेश हैं, सब नारी संस्कृति पर टिके हैं । मंदिर, मस्जिद, गुरूद्वारा सभी नारी की आस्था पर टिके हैं ।

महावीर के समय में पचास हजार शिष्यों में महिला शिष्य की भागीदारी तैतीस हजार थी । इनका अभिमत था कि स्त्री-संस्कृति जितनी समशीतोष्ण है, वह पुरुष की नहीं है ।

स्त्री तुरंत ध्यानावस्था की भावदशा में आ सकती है एवं प्रकृति के अनुपम स्रोत से जुड़ी हुई, सामाजिक एवं व्यवहारिक निस्पतियाँ, बिना सोचे समझे तुरंत दे सकती है ।

लेकिन पुरुषत्व प्राप्त शक्तियाँ बुद्धि से काम लेती है, जो बहिर्मन की चेतन अवस्था है । उनका निर्णय, बुद्धि और विवेक का चिंतन-मथन है ।

गौतम बुद्ध तो अपने भिक्षु के श्रेणी में स्त्री को शिष्यों के रूप में दीक्षा देने से कतराते ही रहे । चूँकि किसी भी धर्म को चलाने के लिए आक्रमक गति चाहिए और स्त्रियाँ बहुत जल्द समतुल्य हो जाती हैं एवं प्रकृति के एकाकार होने के सिद्धान्त पर चली जाती है । इसलिए उनके द्वारा चलाये धर्म ज्यादा अन्तराल तक टिकाऊ नहीं हो सकता है ।

आज भी बहुत सारी साहसी एवं संत स्त्रियाँ तो हैं! लेकिन धर्म की कोई व्यवस्थित नींव न पहले डाली गयी न आज डाली जा पा रही है । जबकि सभी राष्ट्रों, परिवारों एवं पति परायणता का धर्म स्त्रियों द्वारा निष्ठावान होकर नियोजित की जाता है ।

बल्कि सारी मानसिक और आत्मीय योजनाएँ स्त्री-धर्म पर टिकी है । सारे मंदिर, मस्जिद एवं गिरजाघर की बुलंदियों का धार्मिक परिवेश स्त्रीतत्व के ऊपर आधारित है ।

हमेशा प्राकृतिक गति देखी गयी है कि प्रकृति के सारे क्रिया-कलाप ही नहीं; प्रकृति भी पूरे ब्रह्माण्डीय परिवेश में परिधि में घूमती है । इसी के अण्वेसन में हिन्दु मत रहा है कि कुछ निश्चित अन्तराल पर सामाजिक एवं राज्य की विधि-व्यवस्था के अनुरूप महान आत्माएँ पृथ्वी पर उचित समय आने पर जन्म लेती रहती है ।

जैसे हम अपने वार्षिक मौसम के चक्रिय बिन्दु को देखें, तो रोहिनी नक्षत्र कृषि कार्य हेतु एवं स्वाती नक्षत्र की बुन्दें सीप में मोती के गर्भाधान के लिए उपयुक्त मानी गयी है ।

जिस तरह पृथ्वी भी प्रति छियालिस वर्ष पर सूर्य से अण्डाकार गति में गति बनाते हुए दूरी पर चली जाती है एवं छियालिस वर्ष में उसी अण्डाकार गति में सूर्य के पास की परिधि में चली आती हैं ।

कुल बिरानवे वर्ष पर सूर्य अपनी इस परिक्रमा गति को पृथ्वी के साथ स्वीकार करती है । उसी तरह महान आत्माओं की जन्म परिधि भी कुछ इसी तरह के सैद्धांतिक सापेक्ष व्यवस्था में समझ में आती है । द्वापरकाल के अन्त में बहुत सारे महारथी, ऋषि, मनीषि एवं संत ने जन्म लिया था ।

फिर पच्चीस सौ वर्ष के अन्तराल से महावीर, गौतम, लाओत्से, अरस्तू, बैद्य लूकमान, मोहम्मद, जिसेस-काइस्ट, जैसे अनेकानेक महान आत्माओं ने जन्म लेकर विश्व को ज्ञानगंगा प्रवाह एवं आविष्कारों की सैद्धान्तिक थाती की रूपरेखा इस मानव जाति को दी ।

फिर वहीं सैद्धान्तिक प्राकृतिक अन्तराल पच्चीस सौ वर्ष बाद आ चुकी है । इसके छींटे, कबीर, आईन्टीन, गाँधी, रजनीश, श्रीराम शर्मा के रूप में पड़ने शुरू हो गये हैं । प्रकृति के वारिस के छींटे की तरह कई ऋषि महात्माओं एवं राजनायिकों एवं राजनायिका ने - संत, महात्मा, राजनेता, राजनायिका, वैज्ञानिक, कवि, गायक के रूप में जन्म लेना शुरू कर दिया है ।

पातंजली योग का सिद्धान्त, आर्ट आफ लिभिंग की जीवन शैली में प्रायोगिक विधि, विज्ञान के क्षेत्र में बहुत सारे वैज्ञानिक, चिकित्सा क्षेत्र में उच्च कोटि के चिकित्सक एवं बैद्य, हृदय को झंकृत कर देने वाले गायक, वाद्यवादक, आत्मावान राजनायक, एवं राजनायिका जैसे उत्कृत आत्मावान नर-नारी का जन्म लेकर !

संकल्पवान जीवन शैली चलने की गति बता रही है; कि फिर से महान आत्माओं ने जन्म लेने की अपनी भिभिष्क्षा में उचित कोख ढढ़ना शुरू कर दिया है एवं सौ वर्ष के अन्दर बहुत सारी महान आत्माओं ने जन्म लेकर अपने आगमन की श्रृंखला कायम कर ली है ।

बिहार ही क्या !

आज शान्तिदूत में अग्रणी भारतवर्ष भी पूरे विश्व के संतप्त दावानल को मिटाने का संकल्प ले, क्रियांवयन रूप ले मैदान में कूद पड़ा हैं । हरित क्रांति एवं ज्ञान क्रान्ति का सैलाव आने वाला है ।

आज नारी शक्ति का शक्ति स्वरूपा अन्तर हृदय, फिर प्रेम और आस्था में विश्व कल्याण करने वाला है । इसी स्वर्णीम अन्तराल में यह तीन भाग पुस्तक (1) कुण्डलिनी जागरण द्वार है गृहस्थी भाग-प्रथम (2) कुण्डलिनी जागरण आधार है, प्राणशक्ति एवं सम्मोहन भाग-द्वितीय एवं (3) कुण्डलिनी जागरण उपहार है, दिव्य भावदशा भाग-तृतीय लिखी जा रही है ।

इन ऊर्जावान आत्माओं को जन्म लेने के लिए, शक्तिरूपा माँ का गर्भ उनके उच्चतर चक्रों के अनुरूप, शिव के जटा में गंगा प्रवाह को झेलने की तरह आत्मबल लिए हुए होना चाहिए ।

कुण्डलिनी जागरण तो पूरा स्त्रैण शक्ति पर टिका है । इसकी पवित्र कुण्डलिनी शक्ति का प्रवाह तो कामिनी और कंचन की व्यवस्था जाने-समझे बगैर तो सम्भव नहीं है ! क्योंकि कोख की ऊँचाई तो बगैर साधनामय प्रेममय जीवन उत्कर्ष के सम्भव नहीं है !

काम, क्रोध, लोभ, मोह तो प्राकृतिक भावदशा है, जो दूसरे सूक्ष्म शरीर एवं तीसरे कारण शरीर से आती है । जिसका ईश्वरीय शक्ति, शक्ति स्रोत के ऊर्जा स्रोत से इस स्थूल काया द्वारा अवतरण है एवं स्त्रैन रहस्य में पूरी मानव जाति को, माँ स्वरूपा में रहकर ही सृष्टि का निर्माण करती रही है ।

प्रकृति में कोई भी बीज नष्ट नहीं किया जा सकता है । इसी सिद्धान्त के सापेक्ष में सप्त ऋषियों की वंशावली आधार पर ही, पूरे भारत वर्ष में मूल और गोत्र की वर्ण व्यवस्था को जानी जाती है । जो हमारे संस्कारपूर्ण जीवन शैली को चलाने में इन सप्तऋषियों का आदिम समय का संस्कार बीज तो उपस्थित ही है ।

जरूरत है उचित मौसम एवं उचित वातावरण में शक्तिरूपा माँ के गर्भ की ! इसी उचित अन्तराल पर हमारे शौर्य भरे राजनेता, संत, महात्मा एवं वैज्ञानिकों के रूप में जन्म लेकर, मानसिक एवं सामाजिक परिवेश में राज्य, राष्ट्र के विकास के रूप में दस्तक दे दिया है ।

इस पुस्तक में कुण्डलिनी शक्ति, काम ऊर्जा, प्राण ऊर्जा, प्राणवायु एवं सम्मोहन की कम से कम शब्दों में व्याख्या चित्र एवं सिद्धान्तों के प्रारूप में, विचार-प्रवाह के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है ।

हम मानव तो प्रकृति की अनुपम कृति हैं। अपने सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक स्त्रैन शक्ति को समझ कर अपने पुरुषार्थ को समझें ! इसका प्रायोगिक स्वरूप समझ संकल्पवान नर-नारी का स्वरूप पकड़ अपने भोगवाद के सिद्धान्तों को विशुद्ध रूप में, अपने काम-कामेश्वरी के प्रेममय निस्वार्थ भाव एवं सहजता की भावदशा में आकर साधना करें !

यह तो महान आत्माओं के जन्म लेने का स्वर्णीम अन्तराल आया प्रतीत होता है । उनकी गति में अपने गर्भाधान के लिए रज् और वीर्य का शोधन करें! एवं हो जाय ! थलचर-जलचर नभचर एवं मनुष्यों के, सारे व्यालिस लाख योनियों से ऊपर की गति में ! ताकी बारम्बार इस पच्चीस सौ वर्ष का अन्तराल हमें इन महान आत्माओं के रूप में जन्म दे, विश्व को अनुगृहीत करें !

लेकिन प्रकृति के लिए इस अन्तराल का कोई महत्व नहीं है । यह तो इनकी प्राकृतिक गति है, जो आता जाता रहता है । कहते हैं ! कि ब्रह्मा के लिए पलक मुँदने और पलक खुलने तक में सृष्टि के कई युग बीत जाते हैं एवं कितनी बार प्रलय एवं सृष्टि का सृजन हो जाता है । यह स्वरूप हमारे आपके सांसारिक योगमाया के रूप में ही वर्णन किया गया है ।

कुण्डलिनी शक्ति तो ब्रह्माण्डीय ऊर्जा स्रोत से चलने वाली प्राण ऊर्जा का स्रोत है । इस प्रकृतिप्रदत्त ऊर्जा प्रवाह के लिए किसी देश, किसी राज्य, किसी धर्म, किसी समुदाय विशेष का प्रतिबन्ध नहीं है । ,

वैसे तो चौदह साधना के स्तर कुण्डलिनी प्रवाह को कायम करने की विधि में पुस्तक में वर्णित की गयी है । लेकिन काम ऊर्जा, प्राण ऊर्जा का प्रवाह ज्ञान ऊर्जा में कर प्राणवायु वो सहजता एवं सरलता का स्वभाव प्राप्त कर लेने पर यह प्राकृतिक कुण्डलिनी प्रवाह सहज एवं सरल है, एवं ज्ञानगंगा का ऊर्जा स्रोत स्वतः ही फूट पड़ता है ।

इसमें कोई शब्दभार या मंत्रभार की आवश्यकता नहीं है । केवल अपने दामपत्य जीवन की सरसता को समझ, अपने आत्मीय मालिकत्व को समझ, साम्यरस में विलय होने की सहजता प्राप्त करनी है । साक्षीभाव में अपने निजता को स्वीकार कर लेना ही हमारा स्व धर्म है । चाहे काम की निजता हो या क्रोध की ! और यही हमारा मालिकत्व है ।

प्राण ऊर्जा स्रोत का संचरण तो प्राकृतिक रूप से योनिगत संस्कार में हम मानव एवं प्राणीमात्र में कर्मफल की ईश्वरीय गति की संचरण व्यवस्था है । जब हम इस प्राण ऊर्जा स्रोत को अपने योग के माध्यम से अपने स्वरूप में नियंत्रित करने लगते हैं; तो वही प्राण शक्ति मानवीय कल्याण के लिए, किसी भी प्राणी में प्रवेश कर हमारे ही ऊर्जा स्रोत पर संघात करती है ।

अव्यवस्थित हमारे ऊर्जा स्रोत का केन्द्र नियंत्रित होने लगता है । यह अन्तरमन की चेतन अवस्था में सम्भव हो पाता है, जो कुण्डलिनी जागरण के बाद ही सम्भव है !

सम्मोहन हमारे बहिर्मन के गति को नियंत्रण कर हमारी प्राण ऊर्जा का संकलन, आज्ञा चक्र के केन्द्रीभूत बिन्दु समग्रता में संकलित हो, जब अगले प्राणी के प्राण बिन्दु पर उतरती है, तो अवचेतन मन भी इससे प्रभावित होता है ।

इस सम्मोहन के केन्द्रीभूत ऊर्जा से भी, हर मानवेत्तर प्राणी को अपने संकल्पबल के केन्द्रीभूत ऊर्जा द्वारा उत्प्रेरित कर सकते हैं एवं अपने मस्तिष्कीय कोशा के केन्द्रीभूत ऊर्जा में मन द्वारा उद्वेलित तरंग को नियंत्रित कर विश्व कल्याण की मिशाल कायम की जा सकती है ।

कुण्डलिनी जागरण के ब्रह्माण्डीय गति में, हम कृष्ण के नारायण एवं अर्जुन के नर का ईश्वरीय रूप ले सकते हैं । यह कुण्डलिनी तो विभिन्न रूपों में महाभारत काल में चरम उत्कर्ष पर था एवं सहज और साध्य था ।

कृष्ण की एक रानी रूकमिणी एवं सात पटरानी की श्रृंखला कौलमार्ग के साधना की पारिवारिक व्यवस्था कामिनी, कंचन के सौजन्य से कुण्डलिनी शक्ति के प्राप्ति के मार्ग में दर्शायी जा सकती है । जो हमारी आपकी भावदशा है एवं पशु भावदशा की स्थिति में है ।

राधा जो गोलोक से उतरी आत्मखंड के रूप में प्रेम दर्शन में दिखलाई जा रही है! वह योग के विहंगम् मार्ग की प्रतीति में समझ में आती है ।

चूँकि जहाँ प्रेम में काम और वासना नहीं हो ! तो, स्त्रैण और पुरुषत्व शक्ति ही एकाकार हो, शिव और शक्ति के रूप में समतुल्य स्त्रैण शक्ति को उजागर करती है ।

प्रेम तो काम-क्रोध के समतुल्यता की भावदशा है । जो काम-क्रोध, प्रकृतिप्रदत्त शक्तियों में सूक्ष्म शरीर से होते हुए स्थूल शरीर पर प्रेम की भावदशा में उतर जाती है ।

वहाँ आत्मा भी दो नहीं रह जाती । केवल शरीर विलग-विलग दिखते हैं। प्रेम तो वासना और काम का स्वरूप है ही नहीं ! काम और वासना तो, प्रकृति प्रदत्त योनिगत व्यवस्था है, जहाँ ईश्वर को सृष्टि चलानी है ।

इसलिए कृष्ण को एकाकार होने के ब्रह्म बिन्दु पर अनाहत की बाँसुरी वादक के रूप में दिखलाया गया है । मुकुट, राजयोग एवं मुकुट में सुशोभित मयूरपंख कामिनी की वासना रहित प्रेम की प्रतीति में दर्शाया गया है ।

क्योंकि मयूर के नर और मादा में शारीरिक मैथुन नहीं होता है । प्रकृति के साथ आह्लादित प्रेम प्रसंग होता है एवं वासना रहित राधा-कृष्ण के प्रेम को विहंगम योग से उनके सम्बन्ध को परिभाषित किया जा सकता है, एवं वीर भावदशा के प्रतीति में हैं ।

इन्हीं प्रेममय एवं करुणा स्वरूप में कृष्ण या महावीर या गौतम को बिना दाढ़ी-मूँछ के चित्रों एवं व्याख्यानों में दिखलाई गयी है । चूँकि प्रेम तो प्रकृति के समतुल्य होने पर स्त्रैण की भावदशा है ।

स्त्रैण शक्ति जब ही पुरुषत्व पर उतर कर उसे समतुल्य करेगी, तो प्राण ऊर्जा का प्रवाह, प्रेम का संबल पकड़ मानव जीवन पर करुण और मैत्री में उतर जायगी एवं जो वीर भावदशा के द्योतक में होगी। जो चौथे शरीर की भावदशा है और द्वैत में है ।

कृष्ण की गीता अद्वैत से द्वैतभाव में अनाहत के ऊपर से उतरी है । जिसमें कर्मयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग सभी का समावेश किया गया है एवं त्रिकालदर्शी कृष्ण में सभी योग का समावेश भी है ।

कृष्ण की माननीय जन्म प्रक्रिया तो लीला नहीं थी ! वह हमारा आप का आत्मदर्शन था ! जो कृष्ण के द्वारा गीता की अभिव्यक्ति में मानव समाज पर उतर गया ।

हमारे पास कोई भी ऐसा ग्रन्थ नहीं है, जो अदृश्य ब्रह्म को सामने रख इस स्थूल शरीर द्वारा बोली गयी है । सभी ग्रन्थों में दूसरे के द्वारा संवाद है ।

अनाहत के ऊपर से आये संवाद को कृष्ण के कच्छप मार्ग के दिव्य भावदशा के श्रेणी में देखा जा सकता है। इन्हीं दिव्य भाव में निर्वाण की स्थिति में महावीर को बतलाया जा सकता है ! जो युग-युग के अन्तराल पर सम्भव है !

इन्हीं कौलमार्ग के विहंगम मार्ग एवं कच्छप मार्ग की दिव्यता को आधार मान, श्याम और वामा मार्ग के विशुद्धतम रूप में यह दो भाग पुस्तक लिखी जा चुकी है एवं तीसरे भाग की लिखने की प्रेरणा आप सुधिजन पाठक के प्राण ऊर्जा संकलन के संकल्प पर निर्भर करती है ।

यह कुण्डलिनी विज्ञान जो पाँच हजार वर्ष पहले बहुत फल-फूल रही थी ! उसी के मिटते सूत्रों का संबल पकड़ यह तीनों भाग पुस्तक लिखी जा रही है ।

जो अपने आप में रोहिणी और स्वाती के बुन्द की तरह पड़ रहे; अमृत बुन्द की तरह ज्ञानज्ञ आत्मावान नर-नारी के अवतरण में सहायक हो, एक नवीन शोध संबन्ध प्रक्रिया (थेसिस) साबित करेगी ।

मातंगी योग को तो सबसे उच्चतम् श्रेणी में रखा जा सकता है । चूँकि काम का उद्वेग सृष्टि संचालन की गति में है एवं पुरुष तरंग की अभिव्यक्ति में है । स्त्री तरंग तो समुद्र की गहराई है; वो शान्त और शीतल एवं स्निग्ध प्रवाह में है एवं प्रेम की तरह प्रकृतिप्रदत्त आह्लादित है ।

लेकिन समुद्र के ऊपर की लहरें शोर मचाती हुई किनारे से टकराकर नष्ट हो, अपनी आहूति दे देती है और पुरुष प्रेम के द्वारा मधुर प्रेम की प्रतीति में है ।

स्त्री प्रेम अगर दीपक की लौ की तरह निर्विकार, निर्विचार प्रकाश विखेर रही हैं ! तो पुरुष-प्रेम फतींगे की तरह उसपर अपना सर्वस्व निछावार कर अपना अस्तित्व मिटाने को आतुर है ! दोनों की अभिव्यक्ति अलग-अलग है ।

इसी तरह मातंगी योग में नग्न स्त्री भी माँ स्वरूपा दिखाई देती है । कामात्मक एवं वासनात्मक सारी भावदशा तिरोहित हो, माँ के अहलादित आँचल में समा जाने की उत्कंठा साधक को प्राण ऊर्जा के अनन्त आयाम में ले जाती है । इन्हीं के स्वरूप में देवियों को माँ के सम्बोधन में ही नहीं ! माँ स्वरूप में देखा जाता है, एवं साधना का अस्तर आह्लादित एवं प्रेममय होता है ।

कुण्डलिनी प्रक्रिया साधन है, सूक्ष्म शरीर द्वारा प्राण संचरण की गति में !

काम-कामेश्वरी की प्रेममय अह्लादित लीला तंत्र है एवं 'ऊँ' की ध्यानस्थ एकाग्रित सहजता का भाव मंत्र है !

थलचर, जलचर, नभचर एवं मनुष्य योनि के असंतृप्त योनि से सदा के लिए छूटकारा इसकी निष्पतियाँ हैं !

ब्रह्म बिन्दु पर एकाकार हो ईश्वरीय बिन्दु में समा जाना, प्राण शक्ति के प्राण ऊर्जा का निःशब्द आकार है ।

दिव्य भावदशा की स्थिति में निर्वाण गति पाना उपहार है ।

द्रष्टाभाव से स्रष्टाभाव में चला जाना सृष्टि की योगमाया से सदा के लिए निवृत हो कैवल्य प्राप्त कर लेना है।

इसलिए सुधिजन !

अपनी मानवीय काया के ब्रह्माण्डीय ऊर्जाक्षेत्र को समझ कुण्डलिनी जागरण के ब्रह्माण्डीय गंगास्रोत को समझो !

अपने कोख, रजू, वीर्य को इतनी ऊँचाई दो, कि हमारे राजनेता एवं संत महात्मा जो संदेश दे रहे हैं !

उसके प्रतिफल की गूंज सारे विजातीय हिंसा-द्वेष, घृणा-अपमान के तत्वों को बाहर निकाल 'ऊँ' ध्वनि का व्योम तैयार कर पायें !

जहाँ किसी हिंसात्मक, द्वन्द्वात्मक एवं भ्रष्टाचार की विजातीय संस्कार मंत्र नही रह जाते हैं ।

-आत्म निवेदक

ध्रुव
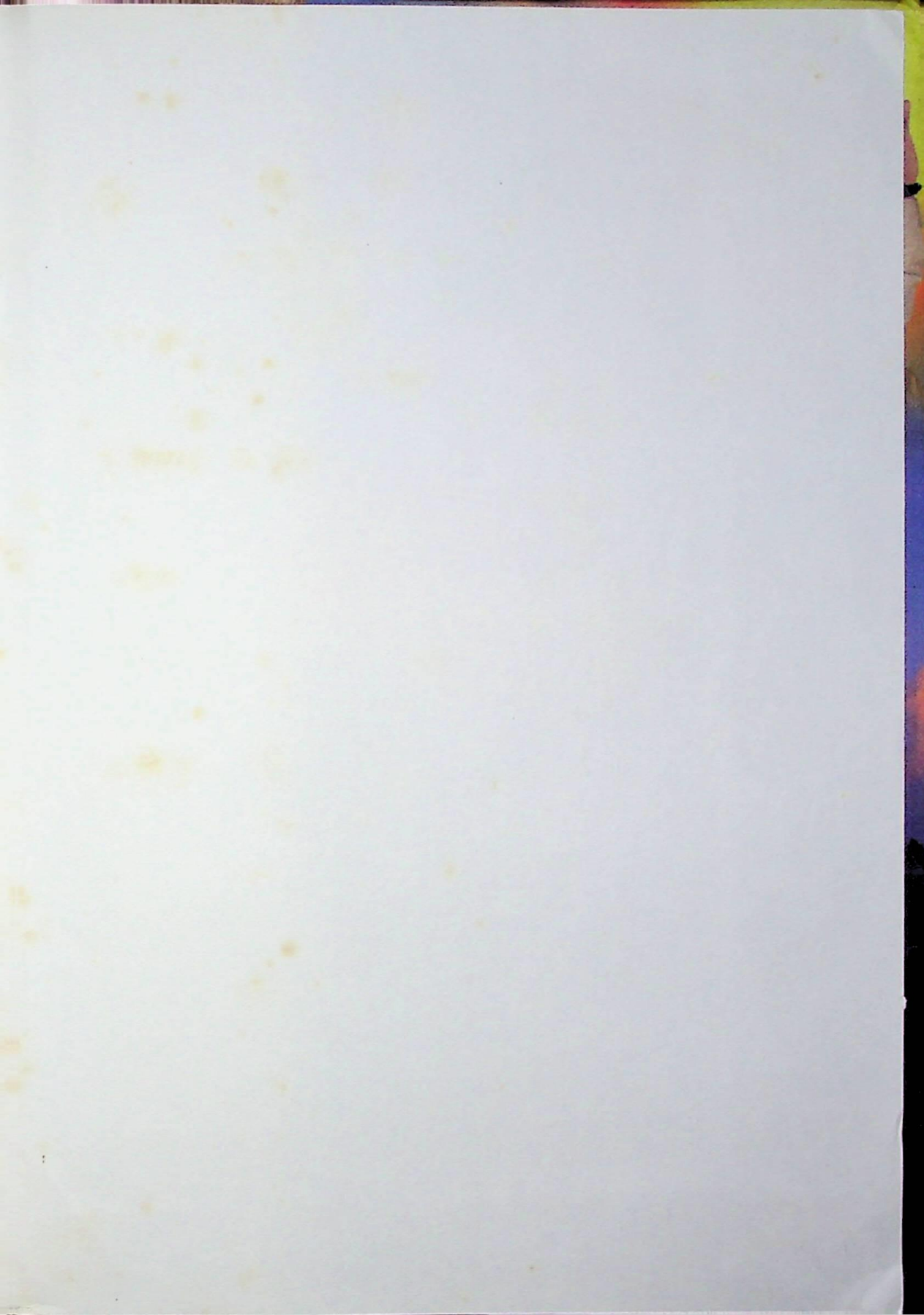
सुधिजन !

आरोग्य भारती, जयपुर के आत्मनिष्ठ प्राणोपचारक साधक, परमपूज्य गुरुदेव सुशील बैद्य की प्रेरणा एवं मेरे अनुभव , अध्ययन एवं मनन से लिखे गये इस पुस्तक में , कुण्डलिनी जागरण द्वारा हम नैतिकता प्रधान गृहस्थ भी , किस तरह साधना कर इहलोक और परलोक सुधारते हुए, दिव्यज्योतिर्मय आत्मप्रकाश जलाकर, गौतम, महावीर जिसेस, मुहम्मद, रजनीश जैसे आत्मावान पुरुष के सतज् कम्पन्न में आकर; इस साधना से थलचर, जलचर, नभचर एवं मनोमय शरीर से ऊपर जाने पर मनुष्य योनि से भी मुक्त होकर देवता एवं ऋषि के श्रेणी में अपने आप को ला पायें; कुण्डलिनी जागरण, प्राणशक्ति एवं सम्मोहन का प्रायोगिक रूप अपने में समाहित कर पायें, इसका व्यवहारिक स्वरूप प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

आशा है! आप सचरित्र एवं कर्त्तव्यनिष्ठ साधकगण इससे अपनी साधना को उच्चतर स्तर देकर आत्मनिष्ठ की श्रेणी में आकर ,हमें श्रद्धा पुष्प बरसाने का मौका देगें।

कुण्डलिनी जागरण
आधार है प्राणशक्ति
सम्मोहन एवं भाग द्वितीय